प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य [illegible] रुपये

मुद्रक
बलदेवदास
संसार प्रेस, बनारस

विषय-सूची

आमुख

'ज्ञानार्णव' का प्रवचन स्व० श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजीके समक्ष कई महीनोंसे चल रहा था। जब 'कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तुशतान्यपि' आदि श्लोकका प्रवचन करने लगा तो उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि णमोकार मन्त्र पर कुछ विशेष अन्वेषण कर पुस्तक लिखी जाय। किन्तु खेद इस बातका है, कि उनके जीवनकालमे पुस्तक लिख जानेपर भी प्रकाशित न हो सकी। उक्त बाबू साहबको इस महामन्त्रके ऊपर अपार श्रद्धा शैशवसे ही थी। उन्होंने बतलाया—"एकबार मुझे हैजेका प्रकोप हुआ। बिहटा मिल चल रहा था। वहीं पर सब कुटुम्बी और हितैषी मेरे इस दुर्दमनीय रोगसे आक्रान्त होनेके कारण घबड़ाये हुए थे। हालत उत्तरोत्तर बिगड़ती जा रही थी। किन्तु मैं णमोकार मन्त्रका चिन्तन करता हुआ प्रसन्न था। मैंने अपने हितैषियोंसे आग्रह किया कि समय निकट मालूम पड़ रहा है, अतः सल्लेखना ग्रहण करा दीजिए। मैं स्वयं णमोकारमन्त्रका चिन्तन और ध्यान करता रहूँगा। सिद्ध परमेष्ठीके ध्यानसे मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे स्वयं ही मेरे कर्म गल रहे हैं और सिद्ध पर्यायके निकटमें पहुँच रहा हूँ। महामन्त्रके अचिन्त्य प्रभावसे रोगका प्रभाव कम हुआ और शनैः शनैः मैं स्वास्थ्य लाभ करने लगा। पर इस मन्त्र पर मेरी श्रद्धा और अधिक बढ़ गयी। तब से लेकर आज तक यह मन्त्र मेरा सम्बल बना हुआ है।"

पिछले दिनों जब आरामें आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्त्तिजी महाराज पधारे तो उन्होंने इस महामन्त्रकी अमित महिमाका वर्णन कर लोगोंके हृदयमें श्रद्धाको दृढ किया। फलतः नयी बहूजी धर्मपत्नी स्व० श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजीने इस महामन्त्रका सवालाख जाप किया। यों तो इस महामन्त्रका प्रचार सर्वत्र है, समाजका बच्चा-बच्चा इसे कण्ठस्थ किये हुए है;

किन्तु इसके प्रति दृढ़ विश्वास और अटूट श्रद्धा कम ही व्यक्तियों की है। यदि सच्ची श्रद्धाके साथ इसका प्रयोग किया जाय तो सभी प्रकारके कठिन कार्य भी सुसाध्य हो सकते हैं। एक बारकी मैं अपनी निजी घटनाका भी उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। घटना मेरे विद्यार्थी जीवनकी है। मैं उन दिनों वाराणसीमें अध्ययन करता था। एकबार ग्रीष्मावकाशमें मुझे अपनी मौसीके गाँव जाना पड़ा। वहाँ एक व्यक्तिको बिच्छूने डँस लिया। बिच्छू विषैला था, अतः उस व्यक्तिको भयंकर वेदना हुई। कई मान्त्रिकोंने उस व्यक्तिके बिच्छूके विषको मन्त्र द्वारा उतारा, पर्यात झाड़-फूँक की गयी, पर वह विष उतरा नहीं। मेरे पास भी उस व्यक्तिको लाया गया और लोगोंने कहा—"आप काशीमें रहते हैं, अवश्य मन्त्र जानते होंगे, कृपया इस बिच्छूके विषको उतार दीजिए।" मैंने अपनी लाचारी अनेक प्रकारसे प्रकट की पर मेरे ज्योतिषी होनेके कारण लोगोंको मेरी अन्धविषयक अज्ञानता पर विश्वास नहीं हुआ और सभी लोग बिच्छूका विष उतार देनेके लिए सिर हो गये। मेरे मौसाजीने भी अधिकारके स्वरमें आदेश दिया। अब लाचार हो णमोकार मन्त्रका स्मरण कर मुझे ओझागिरी करनी पड़ी। नीमकी एक टहनी मँगवाई गयी और इक्कीसबार णमोकार मन्त्र पढ़कर बिच्छूको झाड़ा। मनमें अटूट विश्वास था कि विष अवश्य उतर जायगा। आश्चर्यजनक चमत्कार यह हुआ कि इस महामन्त्रके प्रभावसे बिच्छूका विष बिलकुल उतर गया। व्यथा पीड़ित व्यक्ति हँसने लगा और बोला—'आपने इतनी देरी झाड़नेमें क्यों की। क्या मुझसे किसी जन्मका वैर था? मान्त्रिकको मन्त्रको छिपाना नहीं चाहिए"। अन्य उपस्थित व्यक्ति भी प्रशंसाके स्वरमें विलम्ब करनेके कारण उलाहना देने लगे। मेरी प्रशंसाकी गन्ध सारे गाँवमें फैल गयी। भगवती भागीरथीसे प्रक्षालित वाराणसीका प्रभाव भी लोग स्मरण करने लगे तथा तरह-तरहकी मनगढ़न्त कथाएँ कहकर कई महानुभाव अपने ज्ञानकी गरिमा प्रकट करने लगे। मेरे दर्शनके लिए लोगोंकी भीड़ लग गयी तथा अनेक तरहके प्रश्न मुझसे पूछने लगे। मैं भी णमोकार

मन्त्रका आशातीत फल देखकर आश्चर्यान्वित था। यों तो जीवन-देहलीपर क़दम रखते ही णमोकार मन्त्र कण्ठ कर लिया था, पर यह पहला दिन था, जिस दिन इस महामन्त्रका चमत्कार प्रत्यक्ष गोचर हुआ। अतः इस सत्यसे कोई भी आस्तिक व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता है कि णमोकार मन्त्रमें अपूर्व प्रभाव है। इसी कारण कवि दौलतने कहा है—

"प्रात.काल मन्त्र जपो णमोकार भाई।
अक्षर पैंतीस शुद्ध हृदयमें धराई ॥टेर॥
नर भव तेरो सुफल होत पातक टर जाई।
विघन जासों दूर होत सकटमें सहाई ॥१॥
कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि जाई।
ऋद्धि सिद्धि पारस तेरो प्रकटाई ॥२॥
मन्त्र जन्त्र तन्त्र सब जाहीसे बनाई।
सम्पति भण्डार भरे अक्षय निधि आई ॥३॥
तीन लोक माहि सार वेदनमें गाई।
जगमें प्रसिद्ध धन्य मगलीक भाई ॥४॥"

मन्त्र शब्द 'मन्' धातु [दिवादि ज्ञाने] से ष्ट्रन् [त्र] प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है, इसका व्युत्पत्तिके अनुसार अर्थ होता है—'मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मन्त्र.' अर्थात् जिसके द्वारा आत्माका आदेश—निजानुभव जाना जाय, वह मन्त्र है। दूसरी तरहसे तनादिगणीय मन् धातुसे [तनादि अवबोधे to Consider] ष्ट्रन् प्रत्यय लगाकर मन्त्र शब्द बनता है, इसकी व्युत्पत्तिके अनुसार 'मन्यते विचार्यते आत्मादेशो येन स मन्त्र.' अर्थात् जिसके द्वारा आत्मादेशपर विचार किया जाय, वह मन्त्र है। तीसरे प्रकार से सम्मानार्थक मन धातुसे 'ष्ट्रन्' प्रत्यय करनेपर मन्त्र शब्द बनता है। इसका व्युत्पत्ति-अर्थ है—'मन्यन्ते सत्क्रियन्ते परमपदे स्थिता. आत्मानः वा यक्षादिशासनदेवता अनेन इति मन्त्रः' अर्थात् जिसके द्वारा

परमपदमें स्थित पञ्च उच्च आत्माओंका अथवा यक्षादि शासन देवोंका सत्कार किया जाय, वह मन्त्र है। इन तीनों व्युत्पत्तियोंके द्वारा मन्त्र शब्दका अर्थ अवगत किया जा सकता है। णमोकार मन्त्र—यह नमस्कार मन्त्र है, इसमें समस्त पाप, मल और दुष्कर्मोंको भस्म करनेकी शक्ति है। बात यह है कि णमोकार मन्त्रमें उच्चरित ध्वनियोंसे आत्मामें धन और ऋणात्मक दोनों प्रकारकी विद्युत् शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जिससे कर्म-कलङ्क भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवान् भी विरक्त होते समय सर्वप्रथम इसी महामन्त्रका उच्चारण करते हैं तथा वैराग्यभावकी वृद्धिके लिए आये हुए लौकान्तिक देव भी इसी महामन्त्रका उच्चारण करते हैं। यह अनादि मन्त्र है, प्रत्येक तीर्थंकरके कल्पकालमें इसका अस्तित्व रहता है। कालदोषसे लुप्त हो जाने पर अन्य लोगोंको तीर्थंकरकी दिव्यध्वनि द्वारा यह अवगत हो जाता है।

इस अनुचिन्तनमें यह सिद्ध करनेका प्रयास किया गया है कि णमोकार मन्त्र ही समस्त द्वादशाग जिनवाणीका सार है, इसमें समस्त श्रुतज्ञानकी अक्षर संख्या निहित है। जैन दर्शनके तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य, गुण, पर्याय, नय, निक्षेप, आश्रव, बन्ध आदि इस मन्त्रमें विद्यमान हैं। समस्त मन्त्र-शास्त्रकी उत्पत्ति इसी महामन्त्रसे हुई है। समस्त मन्त्रोंकी मूलभूत मातृकाएँ इस महामन्त्रमें निम्न प्रकार वर्तमान हैं।

मन्त्र पाठ :—

"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं॥"

विश्लेषण—

ण् + अ + म् + ओ + अ + र् + इ + ह् + अं + त् + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + स् + इ + द् + ध + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + आ + इ + र् + इ + य् + आ + ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + उ + व + अ + ज् + झ् + आ + य् + आ +

ण् + अं + ण् + अ + म् + ओ + ल् + ओ + ए + स् + अ + व् +
च् + अ + स् + आ + ह् + ऊ + ण् + अ ।

इस विश्लेषणमेंसे स्वरोंको पृथक् किया तो—

अ + ओ + अ + इ + अं + आ + अ + अ + ओ + इ + आ + अ
+ अ + ओ + आ + इ + इ + अ + अ + अ + ओ + उ + अ + आ
ऐ ई औ
+ आ + अं + अ + ओ + ओ + ए + अ + अ + आ + ऊ + अ ।
अः

पुनरुक्त स्वरोंको निकाल देनेके पश्चात् रेखाङ्कित स्वरोंको ग्रहण किया तो—

अ आ इ ई उ ऊ [र्] ऋ ॠ [ल्] ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ।

व्यञ्जन—

ण् + म् + र् + ह् + त् + ण् + ण् + म् + स् + द् + ध् + ण्
+ ण् + म् + य् + ण् + ण् + म् + व् + ज् + झ् + य् + ण्
०
+ ण् + म् + ल् + स् + व् + व् + स् + ह् + ण् ।
व

पुनरुक्त व्यञ्जनोंके निकाल देनेके पश्चात्—

ण् + म् + र् + ह् + ध् + स् + य् + र् + ल् + व + ज् + घ् + ह् ।

ध्वनिसिद्धान्तके आधार पर वर्गाक्षर वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। अतः घ् = कवर्ग, झ् = चवर्ग, ण् = टवर्ग, ध् = तवर्ग, म् = पवर्ग, य र ल व, स् = श ष स, ह्।

अतः इस महामन्त्रकी समस्त मातृका ध्वनियाँ निम्न प्रकार हुईं—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क् ख् ग् घ् ङ् च् छ् ज् झ् ञ् ट् ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ् व् भ् म् य् र् ल् व् श् प् स् ह् ।

उपर्युक्त ध्वनियाँ ही मातृका कहलाती है। जयसेन प्रतिष्ठापाठमें बतलाया गया है—

"अकारादिक्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्तास्तु मातृकाः।
सृष्टिन्यास-स्थितिन्यास-संहृतिन्यासतस्त्रिधा ॥३७६॥"

अर्थात्—अकारसे लेकर क्षकार [क् + ष् + अ] पर्यन्त मातृका-वर्ण कहलाते है। इनका तीन प्रकारका क्रम है—सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम।

णमोकार मन्त्रमे मातृका ध्वनियोंका तीनो प्रकारका क्रम सन्निविष्ट है। इसी कारण यह मन्त्र आत्मकल्याणके साथ लौकिक अभ्युदयोंको देनेवाला है। अष्टकर्मोंके विनाश करनेकी भूमिका इसी मन्त्रके द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। संहारक्रम कर्मविनाशको प्रकट करता है तथा सृष्टिक्रम और स्थितिक्रम आत्मानुभूतिके साथ लौकिक अभ्युदयोंकी प्राप्तिमें भी सहायक है। इस मन्त्रकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें मातृका-ध्वनियोका तीनो प्रकारका क्रम सन्निहित है, इसलिए इस मन्त्रसे मारण, मोहन और उच्चाटन तीनो प्रकारके मन्त्रोकी उत्पत्ति हुई है। बीजाक्षरोंकी निष्पत्तिके सम्बन्धमे बताया गया है—

"हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः"[1] ॥२७७॥

अर्थात्—ककारसे लेकर हकार पर्यन्त व्यञ्जन बीजसंज्ञक हैं और अकारादि स्वर शक्तिरूप है। मन्त्रबीजोकी निष्पत्ति बीज और शक्तिके संयोगसे होती है।

वाग्भव बीज, माया बीज, शुभनेश्वरी बीज, पृथिवी बीज, अग्निबीज, प्रणवबीज, मारुतबीज, जलबीज, आकाशबीज आदिकी उत्पत्ति उक्त हल् और अचोंके संयोगसे हुई है। यों तो बीजाक्षरो का अर्थ बीजकोश एवं बीज व्याकरण द्वारा ही ज्ञात किया जाता है, परन्तु यहाँ पर सामान्य जानकारीके लिए ध्वनियोंकी शक्तिपर प्रकाश डालना आवश्यक है।

---

१. जयसेन प्रतिष्ठापाठ श्लो० २७७।

अ=अव्यय, व्यापक, आत्माके एकत्वका सूचक, शुद्ध-बुद्ध ज्ञानरूप, शक्तिद्योतक, प्रणव बीजका जनक।

आ=अव्यय, शक्ति और बुद्धिका परिचायक, सारस्वतबीजका जनक, मायाबीजके साथ कीर्त्ति, धन और आशाका पूरक।

इ=गत्यर्थक, लक्ष्मी प्राप्तिका साधक, कोमल कार्य साधक, कठोर कर्मोंका बाधक, वह्निबीजका जनक।

ई=अमृतबीजका मूल, कार्यसाधक, अल्पशक्तिद्योतक, ज्ञानवर्द्धक, स्तम्भक, मोहक, जृम्भक।

उ=उच्चाटन बीजोका मूल, अद्भुत शक्तिशाली, श्वासनलिका द्वारा जोरका धक्का देने पर मारक।

ऊ=उच्चाटक और मोहक बीजोका मूल, विशेष शक्तिका परिचायक, कार्यध्वसके लिए शक्तिदायक।

ऋ=ऋद्धिबीज, सिद्धिदायक, शुभ कार्य सम्बन्धी बीजोका मूल, कार्य-सिद्धिका सूचक।

ऌ=सत्यका सचारक, वाणीका ध्वसक, लक्ष्मीबीजकी उत्पत्तिका कारण, आत्मसिद्धिमे कारण।

ए=निश्चल, पूर्ण, अगतिसूचक, अरिष्ट निवारक बीजोंका जनक, पोषक और सवर्द्धक।

ऐ=उदात्त, उच्चस्वरका प्रयोग करनेपर वशीकरणबीजोका जनक, पोषक और सवर्द्धक। जलबीजकी उत्पत्तिका कारण, सिद्धिप्रद कार्योंका उत्पादकबीज, शासन देवताओका आह्वानन करनेमे सहायक, क्लिष्ट और कठोर कार्योंके लिए प्रयुक्त बीजोका मूल, ऋण विद्युत्का उत्पादक।

ओ=अनुदात्त—निम्न स्वरकी अवस्थामे माया बीजका उत्पादक, लक्ष्मी और श्रीका पोषक, उदात्त—उच्च स्वरकी अवस्थामे कठोर कार्योंका उत्पादक बीज, कार्यसाधक, निर्जराका हेतु, रमणीय पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए प्रयुक्त होनेवाले बीजोमे अग्रणी, अनुस्वरान्त बीजोंका सहयोगी।

औ = मारण और उच्चाटन सम्बन्धी बीजोंमे प्रधान, शीघ्र कार्य साधक, निरपेक्षी, अनेक बीजोंका मूल।

अं = स्वतन्त्र शक्ति रहित, कर्माभावके लिए प्रयुक्त ध्यानमन्त्रोंमे प्रमुख, शून्य या अभावका सूचक, आकाश बीजोंका जनक, अनेक मृदुल शक्तियोंका उद्घाटक, लक्ष्मी बीजोंका मूल।

अः = शान्तिबीजोंमे प्रधान, निरपेक्षावस्थामे कार्य असाधक, सहयोगीका अपेक्षक।

क = शक्तिबीज, प्रभावशाली, सुखोत्पादक, सन्तानप्राप्तिकी कामनाका पूरक, कामबीजका जनक।

ख = आकाशबीज, अभावकार्योंकी सिद्धिके लिए कल्पवृक्ष, उच्चाटन बीजोंका जनक।

ग = पृथक् करनेवाले कार्योंका साधक, प्रणव और माया बीजके साथ कार्य सहायक।

घ = स्तम्भक बीज, स्तम्भन कार्योंका साधक, विघ्नविघातक, मारण और मोहक बीजोंका जनक।

ङ = शत्रुका विध्वंसक, स्वर मातृका बीजोंके सहयोगानुसार फलोत्पादक, विध्वंसक बीज जनक।

च = अंगहीन, खण्ड शक्ति द्योतक, स्वरमातृकाबीजोंके अनुसार फलोत्पादक, उच्चाटन बीजका जनक।

छ = छाया सूचक, माया बीजका सहयोगी, बन्धनकारक, आपबीजका जनक, शक्तिका विध्वंसक, पर मृदु कार्योंका साधक।

ज = नूतन कार्योंका साधक, शक्तिका वर्द्धक, आधि-व्याधिका शामक, आकर्षक बीजोंका जनक।

झ = रेफयुक्त होने पर कार्यसाधक, आधि व्याधि विनाशक, शक्तिका संचारक, श्रीबीजोंका जनक।

ञ=स्तम्भक और मोहक बीजोंका जनक, कार्यसाधक, साधनाका अवरोधक, माया बीजका जनक।

ट=वह्निबीज, आग्नेय कार्योंका प्रसारक और निस्तारक, अग्नितत्त्व युक्त, विध्वंसक कार्योंका साधक।

ठ=अशुभ सूचक बीजोंका जनक, क्लिष्ट और कठोर कार्योंका साधक, मृदुल कार्योंका विनाशक, रोदन कर्ता, अशान्तिका जनक, सापेक्ष होने पर द्विगुणित शक्तिका विकासक वह्निबीज।

ड=शासन देवताओंकी शक्तिका प्रस्फोटक, निकृष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिए अमोघ, संयोगसे पञ्चतत्त्वरूप बीजोंका-जनक, निकृष्ट आचार-विचार द्वारा साफल्योत्पादक, अचेतन क्रिया साधक।

ढ=निश्चल, मायाबीजका जनक, मारण बीजोंमें प्रधान, शान्तिका विरोधी, शक्तिवर्धक।

ण=शान्ति सूचक, आकाश बीजोंमें प्रधान, ध्वंसक बीजोंका जनक, शक्तिका स्फोटक।

त=आकर्षकबीज, शक्तिका आविष्कारक, कार्यसाधक, सारस्वत बीजके साथ सर्वसिद्धिदायक।

थ=मंगलसाधक, लक्ष्मीबीजका सहयोगी, स्वरमातृकाओंके साथ मिलनेपर मोहक।

द=कर्मनाशके लिए प्रधान बीज, आत्मशक्तिका प्रस्फोटक, वशीकरण बीजोंका जनक।

ध=श्रीं और क्लीं बीजोंका सहायक, सहयोगीके समान फलदाता, माया बीजोंका जनक।

न=आत्मसिद्धिका सूचक, जलतत्त्वका स्रष्टा, मृदुतर कार्योंका साधक, हितैषी, आत्मनियन्ता।

प=परमात्माका दर्शक, जलतत्त्वके प्राधान्य युक्त, समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिए ग्राह्य।

फ=वायु और जलतत्त्व युक्त, महत्त्वपूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिए ग्राह्य, स्वर और रेफ युक्त होने पर विध्वंसक, विघ्नविघातक, 'फट्' की ध्वनिसे युक्त होनेपर उच्चाटक, कठोरकार्य साधक।

ब=अनुसार युक्त होनेपर समस्त प्रकारके विघ्नोंका विघातक और निरोधक, सिद्धिका सूचक।

भ=साधक, विशेषतः मारण और उच्चाटनके लिए उपयोगी, सात्त्विक कार्योंका निरोधक, परिणत कार्योंका तत्काल साधक, साधनामें नाना प्रकारसे विघ्नोत्पादक, कल्याणसे दूर, कटु मधु वर्णोंसे मिश्रित होनेपर अनेक प्रकारके कार्योंका साधक, लक्ष्मी बीजोंका विरोधी।

म=सिद्धिदायक, लौकिक और पारलौकिक सिद्धियोंका प्रदाता, सन्तानकी प्राप्तिमें सहायक।

य=शान्तिका साधक, सात्विक साधनाकी सिद्धिका कारण, महत्त्वपूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिए उपयोगी, मित्र प्राप्ति या किसी अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त उपयोगी, ध्यानका साधक।

र=अग्निबीज, कार्यघासक, समस्त प्रधानबीजोंका जनक, शक्तिका प्रस्फोटक और वर्द्धक।

ल=लक्ष्मीप्राप्तिमें सहायक, श्रीं बीजका निकटतम सहयोगी और सगोत्री, कल्याणसूचक।

व=सिद्धिदायक, आकर्षक, ह्, र् और अनुस्वारके सयोगसे चमत्कारोंका उत्पादक, सारस्वतबीज, भूत-पिशाच-शाकिनी-डाकिनी आदिकी बाधाका विनाशक, रोगहर्त्ता, लौकिक कामनाओंकी पूर्त्तिके लिए अनुस्वार मातृका का सहयोगापेक्षी, मंगलसाधक, विपत्तियोंका रोधक और स्तम्भक।

श=निरर्थक, सामान्यबीजोंका जनक या हेतु, उपेक्षाधर्मयुक्त, शान्तिका पोषक।

ष=आह्वानबीजोंका जनक, सिद्धिदायक, अग्निस्तम्भक, जलस्तम्भक,

सापेक्षध्वनि ग्राहक, सहयोग या सयोग द्वारा विलक्षण कार्य साधक, आत्मोन्नतिसे शून्य, रुद्रबीजोंका जनक, भयंकर और बीभत्स कार्योंके लिए भी प्रयुक्त होनेपर कार्य साधक।

स=सर्व समीहित साधक, सभी प्रकारके बीजोंमें प्रयोग योग्य, शान्तिके लिए परम आवश्यक, पौष्टिक कार्योंके लिए परम उपयोगी, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय आदि कार्योंका विनाशक, क्लींबीजका सहयोगी, कामबीजका उत्पादक, आत्मसूचक और दर्शक।

ह=शान्ति, पौष्टिक और माङ्गलिक कार्योंका उत्पादक, साधनाके लिए परमोपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी, लक्ष्मीकी उत्पत्तिमें साधक, सन्तान प्राप्तिके लिए अनुस्वार युक्त होनेपर जाप्यमें सहायक, आकाशमें तत्त्व युक्त, कर्मनाशक, सभी प्रकारके बीजोंका जनक।
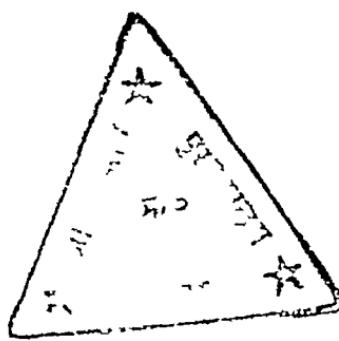
उपर्युक्त ध्वनियोंके विश्लेषणसे स्पष्ट है कि मातृका मन्त्र ध्वनियोंके स्वर और व्यञ्जनोंके सयोगसे ही समस्त बीजाक्षरोंकी उत्पत्ति हुई है तथा इन मातृका ध्वनियोंकी शक्ति ही मन्त्रोंमें आती है। णमोकार मन्त्रसे ही मातृका ध्वनियाँ निःसृत हैं। अतः समस्त मन्त्रशास्त्र इसी महामन्त्रसे प्रादुर्भूत हैं। इस विषयपर अनुचिन्तनमें विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। यतः यह युग विचार और तर्क का है, मात्र भावनासे किसी भी बातकी सिद्धि नहीं मानी जा सकती है। भावनाका प्रादुर्भाव भी तर्क और विचार द्वारा श्रद्धा उत्पन्न होनेपर होता है। अतः णमोकार महामन्त्रपर श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिए उक्त विचार आवश्यक है।

दार्शनिक दृष्टिसे इस मन्त्रकी गौरव-गरिमाका विवेचन भी अनुचिन्तनमें किया जा चुका है। चिन्तनकी अपनी दिशा है, वह कहाँ तक सही है, यह तो विचारशील पाठक ही अवगत कर सकेंगे। इस अनुचिन्तनके लिखनेमें कई प्राचीन और नवीन आचार्योंकी रचनाओंका मैंने उपयोग किया है, अतः मैं उन सभी आचार्यों और लेखकोंका आभारी हूँ। श्री जैनसिद्धान्त-

भवन आरा के विशाल ग्रन्थागारका उपयोग भी बिना किसी प्रकारकी रुकावट और बाधाके किया है, अतः उस पावन संस्थाके प्रति आभार प्रकट करना भी मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। इसे प्रकाशमें लानेका श्रेय भारतीय ज्ञानपीठ काशीके मन्त्री श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय को है, मैं आपका भी हृदयसे कृतज्ञ हूँ। प्रूफ संशोधक श्री महादेव चतुर्वेदीजीको भी धन्यवाद है।

मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा
वि० सं० २०१२　　　　—नेमिचन्द्र शास्त्री

मङ्गलमन्त्र णमोकार
एक अनुचिन्तन

"णमो अरिहताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥"

ससारावस्थामे सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा बद्ध है, इसी कारण इसके ज्ञान और सुख पराधीन है। राग, द्वेष, मोह और कषाय ही इसकी पराधीनताके कारण हैं, इन्हे आत्माके विकार कहा गया है। विकारग्रस्त आत्मा सर्वदा अशान्त रहती है, कभी भी निराकुल नहीं हो सकती। इन विकारोंके कारण ही व्यक्तिके सुखका केन्द्र बदलता रहता है, कभी व्यक्ति ऐन्द्रियिक विषयोंके प्रति आकृष्ट होता है तो कभी विकृष्ट। कभी इसे कचन सुखदायी प्रतीत होता है, तो कभी कामिनी।

विकार और तज्जन्य अशान्ति

राग और द्वेषकी भावनाओंके सश्लेषणके कारण ही मानवहृदयमे अगणित भावोकी उत्पत्ति होती है। आश्रय और आलम्बनके भेदसे ये दोनो भाव नाना प्रकारके विकारोके रूपमे परिवर्तित हो जाते हैं। जीवनके व्यवहारक्षेत्रमे व्यक्तिकी विशिष्टता, समानता एव हीनताके अनुसार इन दोनो भावोंमे मौलिक परिवर्तन होता है। साधु या गुणवान्‌के प्रति राग सम्मान हो जाता है, समानके प्रति प्रेम तथा पीडितके प्रति करुणा। इस प्रकार द्वेषभाव भी दुर्दान्त के प्रति भय, समानके प्रति क्रोध एव दीनके प्रति दर्दका रूप धारण कर लेता है।

मनुष्य रागभावके कारण ही अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्ति न होने पर क्रोध करता है, अपनेको उच्च और बड़ा समझकर दूसरोंका तिरस्कार करता है, दूसरोकी धन-सम्पदा एव ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्याभाव उत्पन्न करता है, सुन्दर रमणियोके अवलोकनसे उसके हृदयमे कामतृष्णा जागृत हो उठती है। नाना प्रकारके सुन्दर वस्त्राभूषण, अलकार और पुष्पमालाओं आदिसे अपनेको सजाता है, शरीरको सुन्दर बनानेकी चेष्टा करता है, तेलमर्दन, उत्त-

टन, साबुन आदि विभिन्न प्रकारके पदार्थों-द्वारा अपने शरीरको स्वच्छ करता है। इस प्रकार अहर्निश रागद्वेषकी अनात्मिक वैभाविक भावनाओंके कारण मानव अशान्तिका अनुभव करता रहता है।

जिस प्रकार रोगकी अवस्था और उसके निदानके मालूम हो जाने पर रोगी रोगसे निवृत्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, उसी प्रकार साधक संसार-रूपी रोगका निदान और उसकी अवस्थाको जानकर उससे छूटनेका प्रयत्न करता है। सांसारिक दुःखोंका मूल कारण प्रगाढ़ राग-द्वेष हैं, जिन्हें शास्त्रीय परिभाषामें मिथ्यात्व कहा जा सकता है। आत्माके अस्तित्व और स्वरूपमें विश्वास न कर अतत्त्वरूप—राग-द्वेष रूप श्रद्धा करनेसे मनुष्यको स्वपरका विवेक नहीं रहता है, जड़ शरीरको आत्मा समझ लेता है तथा स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, ऐश्वर्यमें रागके कारण लिप्त हो जाता है, इन्हें अपना समझकर इनके सद्भाव और अभावमें हर्ष विषाद उत्पन्न करता है। आत्माके स्वाभाविक सुखको भूलकर संसारके पदार्थों-द्वारा सुख प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है। शरीरसे भिन्न ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगमय अखण्ड अविनाशी जरामरण रहित समस्त पदार्थोंके ज्ञाता-द्रष्टा आत्माको विषय-कषाययुक्त शरीरमल समझने लगता है। मिथ्यात्वके कारण मनुष्यकी बुद्धि भ्रममय रहती है। अतः इन्द्रियोंको प्रिय लगनेवाले पुद्गल पदार्थोंके निमित्तसे उत्पन्न सुखको जो कि परपदार्थके संयोगकाल तक—क्षणभर पर्यन्त रहनेवाला होता है, वास्तविक समझता है। मिथ्यात्वके कारण यह जीव शरीरके जन्मको अपना जन्म और शरीरके नाशको अपना मरण मानता है। राग-द्वेषादि जो स्पष्टरूपसे दुःख देनेवाले हैं, उनका ही सेवन करता हुआ मिथ्या-दृष्टि आनन्दका अनुभव करता है। अपने शुद्ध स्वरूपको भूलकर शुभ कर्मोंके बन्धके फलकी प्राप्तिमें हर्ष और अशुभ कर्मोंके बन्धकी फल-प्राप्तिके समय दुःख मानता है। आत्माके हितके कारण जो वैराग्य और ज्ञान हैं, उन्हें मिथ्यादृष्टि कष्टदायक मानता है। आत्मशक्तिको भूलकर दिन-रात विषयेच्छाकी पूर्तिमें सुखानुभव करना तथा इच्छाओंको बढ़ाते जाना

मिथ्यात्वका ही फल है। इससे स्पष्ट है कि समस्त दुःखोका कारण मिथ्या-दर्शन है।

मिथ्यादर्शनके सद्भाव—आत्मविश्वासके अभावमे ज्ञान भी मिथ्या ही रहता है। मिथ्यात्व-रूपी मोहनिद्रासे अभिभूत होनेके कारण ज्ञान वस्तु-तत्त्वकी यथार्थता तक पहुँच नहीं पाता। अतः मिथ्यादृष्टिका ज्ञान आत्मकल्याणसे सदा दूर रहता है। ज्ञानके मिथ्या रहनेसे चारित्र भी मिथ्या होता है। यतः कषाय और असयमके कारण संसारमें परिभ्रमण करनेवाला आचारण ही व्यक्ति करता है, जो मिथ्या चारित्रकी कोटिमे परिगणित है। मोहनिद्रासे अभिभूत होनेके कारण विषय ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छाएँ अनन्त हैं। इनकी तृप्ति न होनेसे जीवको अशान्ति होती है। मोहाभिभूत होनेके कारण इच्छा-तृप्तिको ही मिथ्यादृष्टि सुख समझता है, पर वास्तवमे इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं। एक इच्छा तृप्त होती है, दूसरी उत्पन्न हो जाती है, दूसरीके तृप्त होने पर तीसरी उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार मोहके निमित्तसे पञ्चेन्द्रिय-सम्बन्धी इच्छाएँ निरन्तर उत्पन्न होती रहती हैं, जिससे मनुष्यको आकुलता सदा बनी रहती है।

चारित्र-मोहके उदयसे क्रोधादि कषाय रूप अथवा हास्यादि नोकषाय रूप जीवके भाव होते हैं, जिससे दुष्कृत्योमे प्रवृत्ति होती है। क्रोध उत्पन्न होनेपर अपनी और परकी शान्ति भग होती है, मान उत्पन्न होने पर अपनेको उच्च और परको नीच समझना है, माया उत्पन्न होने पर अपने तथा परको धोखा देता है एव लोभके उत्पन्न होने पर अपने तथा परको लुब्धक बनाता है। अतएव संक्षेपमे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-चारित्र आत्माके विकार हैं, ये आत्माके स्वभाव नहीं विभाव हैं। उक्त मिथ्यात्वत्रयकी उत्पत्तिका कारण राग और द्वेष ही है। इन्हीं विभावोंके कारण आत्मा स्वभाव धर्मसे च्युत है, जिससे क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य रूप अथवा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप आत्माकी प्रवृत्ति नहीं हो रही है। संसारका प्रत्येक

२

प्राणी विकारोंके अधीन होनेके कारण ही व्याकुल है, एक क्षणको भी शान्ति नहीं है। आशा, तृष्णा सतत बेचैन किये रहती हैं।

विचारक महापुरुषोंने विषय-कषायजन्य अशान्ति और बेचैनीको दूर करनेके लिए अनेक प्रकारके विधानोंका प्रतिपादन किया है। नाना-

मङ्गल-वाक्योंकी आवश्यकता

प्रकारके मङ्गल वाक्योंकी प्रतिष्ठा की है तथा जीवनमें शान्ति और सुख प्राप्त करनेके लिए ज्ञान, भक्ति, कर्म और योग आदि मार्गोंका निरूपण किया है। कुछ ऐसे सूत्र, वाक्य, गाथा और श्लोक भी बतलाये हैं, जिनके स्मरण, मनन, चिन्तन और उच्चारणसे शान्ति मिलती है, मन पवित्र होता है, आत्म-स्वरूपका श्रद्धान होता है तथा विषय-कषायोंकी आसक्तिको व्यक्ति छोड़नेके लिए बाध्य हो जाता है। विकारों पर विजय प्राप्त करनेमें ये मङ्गलवाक्य दृढ़ आलम्बन बन जाते हैं तथा आत्मकल्याणकी भावनाका परिस्फुरण होता है। विश्वके सभी मत-प्रवर्तकोंने विकारोंको जीतने एवं साधनाके मार्गमें अग्रसर होनेके लिए अपनी-अपनी मान्यतानुसार कुछ मगल-वाक्योंका प्रणयन किया है। अन्य मतप्रवर्तकों-द्वारा प्रतिपादित मङ्गलवाक्य कहाँ तक जीवनमें प्रकाश प्रदान कर सकते हैं, यह विचार करना प्रस्तुत रचनाका ध्येय नहीं है। यहाँ केवल यही बतलानेका प्रयत्न किया जायगा कि जैनाम्नायमें प्रचलित महामङ्गलवाक्य णमोकारमन्त्र किस प्रकार जीवनमें शान्ति प्रदान कर सकता है तथा दार्शनिक, मान्त्रिक एव लौकिक कल्याण-प्राप्तिकी दृष्टिसे उक्त वाक्यका क्या महत्त्व है; जिससे विकारोंको शमन करनेमें सहायता मिल सके। आत्मकल्याणका मूल साधन सम्यग्दर्शन भी उक्त मगलवाक्यके स्मरणसे किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है। द्वादशाग जिनवाणीका परिज्ञान उक्त वाक्य-द्वारा किस प्रकार किया जा सकता है तथा जीवनकी आशा-तृष्णा जन्य अशान्ति किस प्रकार दूर हो जाती है, आदि बातों पर विचार किया जायगा।

साधकको सर्वप्रथम अपनी छान-बीनकर अपने सच्चिदानन्द स्वरूपका

निश्चय करना अत्यावश्यक है। आत्मस्वरूपके निश्चय करनेपर भी जब तक अनुकरणीय आदर्श निश्चित नहीं, तब तक अपने स्वरूपको प्राप्त करनेका मार्ग अन्वेषण करना असंभव है। आदर्श शुद्ध सच्चिदानन्द रूप आत्मा ही हो सकता है। कोई भी विकारग्रस्त प्राणी विकाररहित आदर्शको सामने पाकर अपने भीतर उत्साह, दृढसंकल्प और स्फूर्ति उत्पन्न कर सकता है। चिदानन्द शान्तमुद्राका चित्र अपने हृदयमें स्थापित करनेसे विकारोंका शमन होता है। वीतरागी, शान्त, अलौकिक, दिव्यज्ञानधारी, अनुपम दिव्य आनन्द और अनन्त सामर्थ्यवान् आत्माओंका आदर्श सामने रखने से मिथ्याबुद्धि दूर हो जाती है, दृष्टिकोणमें परिवर्तन हो जाता है, राग-द्वेषकी भावनाएँ निकल जाती हैं और आध्यात्मिक विकास होने लगता है। णमोकार मन्त्र ऐसा मंगलवाक्य है, जिसमें द्वादशांग वाणीका सारभूत दिव्यात्मा पञ्चपरमेष्ठीका पावन नाम निरूपित है। इस नामके श्रवण, मनन, चिन्तन और स्मरणसे कोई भी व्यक्ति अपने राग-द्वेषरूप विकारोंको सहजमें पृथक् कर सकता है। विकारोंका परिष्कार करनेके लिए पञ्चपरमेष्ठीके आदर्शसे उत्तम अन्य कोई आदर्श नहीं हो सकता।

अशान्तिको दूर करनेका अमोघ साधन—णमोकार-मन्त्र

साधारण व्यक्तिका भी इधर-उधर वासनाओंके लिए भटकनेवाला मन इस मन्त्रके उच्चारण और चिन्तन-द्वारा स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। इस मन्त्रमें प्रतिपादित भावना प्रारम्भिक साधकसे लेकर उच्चश्रेणीके साधक तकको शान्ति और श्रेयोमार्ग प्रदान करनेवाली है। भारतीय दार्शनिकोंका ही नहीं, विश्वके सभी दार्शनिकोंका मत है कि जब तक व्यक्तिमें आस्तिक्य भाव नहीं, विशेष मङ्गल-वाक्योंके प्रति श्रद्धा नहीं; तब तक उसका मन स्थिर नहीं हो सकता है। आस्तिक व्यक्ति अपने आराध्य महापुरुषकी आराधना कर शान्ति लाभ करता है। दृढ आस्था रखकर निर्दोष आत्माओं-का आदर्श सामने रखना तथा उन वीतरागी आत्माओंके समान अपनेको बनानेका प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्त्तव्य है। जो शान्ति चाहता

है, रागद्वेषसे छुटकारा प्राप्त करना चाहता है एव अपने हृदयको शुद्ध, सबल और सरस बनाना चाहता है, उसे अपने सामने कोई आदर्श अवश्य रखना होगा तथा इस आदर्शको प्रतिपादित करनेवाले किसी मंगलवाक्यका मनन भी करना पडेगा। यहाँ आदर्श रखनेका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अपनेको हीन तथा आदर्शको उच्च समझकर दास्य-दासक भाव स्थापित किया जाय अथवा अन्य किसी रागात्मक सम्बन्धकी स्थापना कर अपनेको रागी-द्वेषी बनाया जाय, बल्कि तात्पर्य यह है कि शुद्ध और उच्च आदर्शको स्थापित कर अपनेको भी उन्हींके समान बनाया जाय। राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि दुर्बलताओ पर मङ्गलवाक्यमे वर्णित शुद्ध आत्माओंके समान विजय प्राप्त की जाय। आत्मोन्नतिके लिए आवश्यक है कि आराधना योग्य परम-शान्त, सौम्य, भव्य और वीतरागी आत्माओका चिन्तन एवं मनन करना तथा इन आत्माओके नाम और गुणोंको बतलानेवाले वाक्योंका स्मरण, पठन एव चिन्तन करना ससारके विकारोंसे ग्रस्त व्यक्ति आदर्श आत्माओं-के गुणोके स्तवन, चिन्तन और मनन द्वारा अपने जीवन पर विचार करता है। जिस प्रकार उन शुद्ध और निर्मल आत्माओंने राग, द्वेष आदि प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त कर लिया है तथा नवीन कर्मोंके आस्रवको अवरुद्ध कर सचित्त कर्मोंका क्षय—विनाश कर शुद्ध स्वरूपको प्राप्त कर लिया है, उसी प्रकार आदर्श शुद्ध आत्माओंके स्मरण, ध्यान और मननसे साधक भी निर्मल बन सकता है।

णमोकार-मन्त्रमे प्रतिपादित आत्माओंकी शरण जानेसे तात्पर्य उन्हींके समान शुद्ध स्वरूपकी प्राप्तिसे है। साधक किसी आलम्बनको पाकर ऊँचा चढ़ जाना—साधनाकी उन्नत अवस्थाको प्राप्त कर लेना चाहता है। यह आलम्बन कमजोर नहीं है, बल्कि विश्वकी समस्त आत्माओंसे उन्नत—परमात्मरूप है। इनके निकट पहुँचकर साधक उसी प्रकार शुद्ध हो जाता है, जिस प्रकार पारसमणिका सयोग पाकर लोहा स्वर्ण बन जाता है। लोहेको स्वर्ण बननेके लिए कुछ विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता, बल्कि

पारसमणिका सान्निध्य प्राप्त कर लेने मात्रसे ही उसके लौह-परमाणु स्वर्ण-परमाणुओंमें परिवर्तित हो जाते हैं। अथवा जिस प्रकार दीपकको प्रज्वलित करनेके लिए अन्य जलते हुए दीपकोंके पास रख देनेके पश्चात् नहीं जलनेवाले दीपककी बत्ती जलते हुए दीपककी लौसे लगा देने मात्रसे वह नहीं जलनेवाला दीपक प्रज्वलित हो उठता है, उसी प्रकार संसारी विषय-कषाय संलग्न आत्मा उत्कृष्ट मंगलवाक्यमें निरूपित आत्माओं, जो कि सामान्य—संग्रह नयकी अपेक्षा एक परमात्मारूप है, का सान्निध्य—शरण-भाव प्राप्तकर तत्तुल्य बन जाता है। अतएव मानव जीवनके उत्थानमें मंगलसूत्रोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन आगममें भावोंकी अपेक्षासे आत्माके तीन भेद बताये गये हैं—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। राग-द्वेषको अपना स्वरूप समझना,

आत्माके भेद और मंगल-वाक्य

पर पर्यायमें लीन शरीरादि पर वस्तुओंको अपना मानना एवं वीतराग निर्विकल्प समाधिसे उत्पन्न हुए परमानन्द सुखामृतसे वंचित रहना आत्माकी बहिरात्म अवस्था है। बताया गया है—"देह जीवको एक गिनै बहिरातम तत्त्व मुधा है।" अर्थात् शरीर और आत्माको एक समझना, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभसे युक्त होना और मिथ्याबुद्धिके कारण शारीरिक सम्बन्धोंको आत्माके सम्बन्ध मानना बहिरात्मा है। इस बहिरात्म अवस्थामें रागभाव उत्कटरूपसे वर्तमान रहता है, अत: स्वसंवेदन ज्ञान—स्वानुभवरूप सम्यग्ज्ञान इस अवस्थामें नहीं रहता।

बहिरात्मा मंगलवाक्योंके स्मरण और चिन्तनसे दूर भागता है, उसे णमोकार मन्त्र जैसे पावन मंगलवाक्यों पर श्रद्धा नहीं होती, क्योंकि राग बुद्धि उसे आस्तिक बननेसे रोकती है। जब तक आस्तिक्य वृत्ति नहीं, तब तक उन्नत आदर्श सामने नहीं आ सकेगा। कर्मोंका क्षयोपशम होने पर ही णमोकार मन्त्रके ऊपर श्रद्धा उत्पन्न होती है तथा इसके स्मरण, मनन, और चिन्तनसे अन्तरात्मा बननेकी ओर प्राणी अग्रसर होता है। अभिप्राय

यह है कि जब तक प्राणीकी इस परम माङ्गलिक महामन्त्रके प्रति श्रद्धा-भावना जाग्रत नहीं होती है, तब तक वह बहिरात्मा ही बना रहता है और विकारभावोंको अपना स्वरूप समझकर अहर्निश व्याकुलताका अनुभव करता रहता है।

भेदविज्ञान और निर्विकल्प समाधिसे आत्मामें लीन, शरीरादि पर वस्तुओंसे ममत्वबुद्धि-रहित एवं चिदानन्दस्वरूप आत्माको ही अपना समझनेवाला स्वात्मज्ञ चैतन्यस्वरूप आत्मा अन्तरात्मा है। इसके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य। समस्त परिग्रहके त्यागी, निस्पृही, शुद्धोपयोगी और आत्मध्यानी मुनीश्वर उत्तम अन्तरात्मा हैं; देशव्रती गृहस्थ और छठे गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ मुनि मध्यम अन्तरात्मा हैं तथा राग-द्वेषको अपनेसे भिन्न समझ स्वरूपका दृढ श्रद्धान करनेवाले व्रतरहित श्रावक जघन्य अन्तरात्मा हैं।

उपर्युक्त तीनों ही प्रकारके अन्तरात्मा णमोकार मन्त्र जैसे मंगलवाक्योंकी आराधना-द्वारा अपनी प्रवृत्तियोंको शुद्ध करते हैं तथा निवृत्ति मार्गकी ओर अग्रसर होते हैं। णमोकार मन्त्रका उच्चारण ही शुभोपयोगका साधन है। इसके प्रति जब भीतरी आस्था जाग्रत हो जाती है और इस मन्त्रमें कथित उच्चात्माओंके गुणोंके स्मरण, चिन्तन और मनन द्वारा स्वपरिणतिका शोधन आरम्भ हो जाता है, तो शुद्धोपयोगकी ओर व्यक्ति बढ़ता है। अतः यह मंगलवाक्य उक्त तीनों प्रकारकी अन्तरात्माओंको प्रगति प्रदान करता है। वास्तविकता यह है कि महामन्त्र विकारभावोंको दूर कर आत्माको अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर प्रेरित करता है। सांसारिक पदार्थोंके प्रति आसक्ति तथा आसक्तिसे होनेवाली अशान्ति अन्तरात्माको बेचैन नहीं करती। यद्यपि कर्मोंके उदयके कारण विकार उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनका प्रभाव अन्तरात्मा पर नहीं पड़ता। णमोकार-मन्त्र अन्तरात्माओंके साधना मार्गमें मीलके पत्थरोंका कार्य करता है, जिस प्रकार पथिकको मीलका पत्थर मार्गका परिज्ञान कराता है, उसे मार्गके तय करनेका विश्वास दिलाता है, उसी

प्रकार यह मन्त्र अन्तरात्माको साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरिहन्त और सिद्ध रूप गन्तव्य स्थान पर पहुँचनेके लिए मार्ग परिज्ञानका कार्य करता है अर्थात् अन्तरात्मा इस मन्त्रके सहारे पञ्चपरमेष्ठी पदको प्राप्त होता है।

परमात्माके दो भेद हैं—सकल और निकल। घातिया कर्मोंको नाश करनेवाले और सम्पूर्ण पदार्थोंके ज्ञाता, द्रष्टा अरिहन्त सकल परमात्मा है। समस्त प्रकारके कर्मोंसे रहित अशरीरी सिद्ध निकल परमात्मा कहे जाते हैं। कोई भी अन्तरात्मा णमोकर मन्त्रके भाव-स्मरणसे परमात्मा बनता है तथा सकल परमात्मा भी योग निरोध कर अघातिया कर्मोंका नाश करते समय णमोकार मन्त्रका भाव चिन्तन करते हैं। निर्वाण प्राप्त होनेके पहले तक णमोकार मन्त्रके स्मरण, चिन्तन, मनन और उच्चारणकी सभीको आवश्यकता होती है, क्योंकि इस मन्त्रके स्मरणसे आत्मामें निरन्तर विशुद्धि उत्पन्न होती है। श्रद्धा, भावना, जो कि मोक्षमहल पर चढनेके लिए प्रथम सीढ़ी है, इसी मन्त्रमें भाव स्मरण-द्वारा उत्पन्न होती है। सरल शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि इस मन्त्रमें प्रतिपादित पञ्चपरमेष्ठीके स्मरण और मननसे आत्मविश्वासकी भावना उत्पन्न होती है, जिससे राग, द्वेष प्रभृति विकारोंका नाश होता है, साथ ही अपना इष्ट भी सिद्ध होता है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको परमेष्ठी इसीलिए कहा जाता है कि इनके स्मरण, चिन्तन और मनन-द्वारा सुखकी प्राप्ति और दुःखके विनाशरूप इष्ट प्रयोजनकी सिद्धि होती है। विश्वके प्रत्येक प्राणीको सुख इष्ट है, क्योंकि यह आत्माका प्रमुख गुण है तथा इसके उत्पन्न होने पर ही बेचैनी दूर होती है। ये परमेष्ठी स्वयं परमपदमें स्थित है तथा इनके अवलम्बनसे अन्य व्यक्ति भी परमपदमें स्थित हो सकते हैं।

स्पष्ट करनेके लिए यों समझना चाहिए कि आत्माके तीन प्रकारके परिणाम होते हैं—अशुभ, शुभ और शुद्ध। तीव्र कषायरूप परिणाम अशुभ, मन्द कषायरूप परिमाण शुभ और कषाय रहित परिणाम शुद्ध होते हैं। राग-द्वेषरूप सक्लेश परिमाणोंसे ज्ञानावरणादि घातिया कर्मोंका,

जो आत्माके वीतराग भावके घातक है, तीव्रबन्ध होता है और शुभ परिणामोंसे मन्दबन्ध होता है। जब विशुद्ध परिणाम प्रबल होते हैं तो पहलेके तीव्र बन्धको भी मन्द कर देते हैं; क्योंकि विशुद्ध परिणामोसे बन्ध नहीं होता, केवल निर्जरा होती है। णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित पञ्चपरमेष्ठीके स्मरणसे जो भावनाएँ उत्पन्न होती है, उनसे कषायोकी मन्दता होती है तथा वे परिणाम समस्त कषायोंको मिटानेके साधन बनते है। ये ही परिणाम आगे शुद्ध परिणामोंकी उत्पत्तिमे भी साधनका कार्य करते हैं। अतएव भावसहित णमोकार मन्त्रके स्मरणसे उत्पन्न परिणामो द्वारा जब अपने स्वभावघातक घातिया कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब सहजमे वीतरागता प्रकट होने लगती है। जितने अंशोंमे घातिया कर्म क्षीण होते हैं, उतने ही अशोंमें वीतराग-भाव उत्पन्न होते हैं। इन्द्रियासक्ति एव असंयमकी प्रवृत्ति णमोकार मन्त्रके मननसे दूर होती है, आत्मामे मन्द कषायजन्य भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। असाता आदि पाप प्रवृत्तियॉ मन्द पड़ जाती हैं और पुण्यका उदय होनेसे स्वतः सुख-सामग्री उपलब्ध होने लगती है।

उपर्युक्त विवेचनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आत्माको शुद्ध करनेकी तथा अपने सत्, चित् और आनन्दमय स्वरूपमे अवस्थित होनेकी प्रेरणा इस णमोकार मन्त्रसे प्राप्त होती है। विकारजन्य अशान्तिको दूर करनेका एकमात्र साधन यह णमोकार मन्त्र है। इस मन्त्रके स्मरण, चिन्तन और मनन बिना अन्य किसी भी प्रकारकी साधना सभव नहीं है। यह सभी प्रकारकी साधनाओंका प्रारम्भिक स्थान है तथा समस्त साधनोंका अन्त भी इसीमें निहित है। अतः राग-द्वेष मोह आदिकी प्रवृत्ति तभी तक जीवमे वर्तमान रहती है, जब तक जीव आत्माके वास्तविक रूपसे वंचित रहता है। आत्मस्वरूप पञ्चपरमेष्ठीकी आराधनासे अपने आप अवगत हो जाता है। जिस प्रकार एक जलते दीपकसे अनेक बुझे हुए दीपकोंको जलाया जा सकता है, उसी प्रकार पंचपरमेष्ठीकी विशुद्ध आत्माओंसे अपनी ज्ञान-ज्योतिको प्रज्वलित किया जा सकता है।

जिन ससारी जीवोंकी आत्मामे कषायें वर्तमान है, वे भी क्षीण कषायवाले व्यक्तियोके अनुकरणसे अपनी कषाय भावनाओंको दूर कर सकते हैं। साधारण मनुष्यकी प्रवृत्ति शुभ या अशुभ रूपमें सामनेके उदाहरणोंके अनुसार ही होती है। मनोविज्ञान बतलाता है कि मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, यह अन्य व्यक्तियोंका अनुकरण कर अपने ज्ञानके क्षेत्रको विस्तृत करता रहता है। अतएव स्पष्ट है कि णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुकी आत्मा शुद्ध चिद्रूप है, इनके स्मरण और चिन्तनसे शुद्ध चिद्रूपकी प्राप्ति होती है।

दर्शनशास्त्रके वेत्ता मनीषियोंने अनुभव तीन प्रकारका बतलाया है—सहज, इन्द्रियगोचर और अलौकिक। इन तीनों प्रकारके अनुभवोंसे ही मनुष्य आनन्दकी प्राप्ति करता है तथा अपने मन और अन्तःकरणका विकास करता है। सहज अनुभव उन व्यक्तियोंको होता है, जो भौतिकवादी है तथा जिनका आत्मा विकसित नहीं है। ये क्षुधा, तृषा, मैथुन, मल-मूत्रोत्सर्जन आदि प्राकृतिक शरीर सम्बन्धी माँगोंकी पूर्त्तिमें ही सुख और पूर्त्तिके अभावमें दुःखका अनुभव करते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियोंमे आत्म-विश्वासकी मात्रा प्रायः नहीं होती है, इनकी समस्त क्रियाएँ शरीराधीन हुआ करती है। णमोकार मन्त्रकी साधना इस सहज अनुभवको आध्यात्मिक अनुभवके रूपमें परिवर्तित कर देती है तथा शरीरकी वास्तविक उपयोगिता और उसके स्वरूपका बोध करा देती है।

दूसरे प्रकारका अनुभव प्राकृतिक रमणीय दृश्योके दर्शन, स्पर्शन आदिके द्वारा इन्द्रियोंको होता है, यह प्रथम प्रकारके अनुभवकी अपेक्षा सूक्ष्म है, किन्तु इस अनुभवसे उत्पन्न होनेवाला आनन्द भी ऐन्द्रियिक आनन्द है, जिससे आकुलता दूर नहीं हो सकती है। मानसिक बेचैनी इस प्रकारके अनुभवसे और बढ जाती है। विकारोकी उत्पत्ति इससे अधिक होने लगती है तथा ये विकार नाना प्रकारके रूप धारण कर मोहकरूपमें प्रस्तुत

होते हैं, जिससे अहकार और ममकारकी वृद्धि होती है। अतएव इस अनुभव-जन्य ज्ञानका परिमार्जन भी णमोकार मन्त्रके द्वारा ही सभव है। इस मन्त्रमें निरूपित आदर्श अहकार और ममकारका निरोध करनेमे सहायक होता है। अतः आत्मोत्थानके लिए यह अनुभव मङ्गलवाक्योके रसायन-द्वारा ही उपयोगी हो सकता है। मगलवाक्य ही इसका परिष्कार करते है। जिस प्रकार गन्दा पानी छाननेसे निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्रकी साधनासे उक्त अनुभव शुद्ध होता है।

तीसरे प्रकारका अनुभव आत्मिक या आध्यात्मिक होता है। इस अनुभवसे उत्पन्न आनन्द अलौकिक कहलाता है। इस प्रकारके अनुभवकी उत्पत्ति सत्सगति, तीर्थाटन, समीचीन ग्रन्थोके स्वाध्याय एव मगलवाक्योंके स्मरण, मनन और पठनसे होती है। यही अनुभव आत्माकी अनन्त शक्तियोंकी विकास-भूमि है और इसपर चलनेसे आकुलता दूर हो जाती है। णमोकार मन्त्रकी साधना मनुष्यकी विवेक बुद्धिकी वृद्धि और इच्छाओंको सयमित करती है, जिससे मानवकी भावनाएँ परिमार्जित हो जाती हैं। अतएव विकारोंसे उत्पन्न होनेवाली अशान्तिको रोकने तथा आत्मिक शान्तिको विकसित करनेका एकमात्र साधन णमोकार महामन्त्र ही है। यह प्रत्येक व्यक्तियोको बहिरात्मा अवस्थासे दूर कर अन्तरात्मा और परमात्मा अवस्थाकी ओर ले जाता है। आत्मबलका आविर्भाव इस मन्त्रकी साधनासे होता है। जो व्यक्ति आत्मबली हैं, उसके लिए संसारमें कोई कार्य असंभव नहीं। आत्मबल और आत्मविश्वास की उत्पत्ति प्रधान रूपमें मङ्गलवाक्यों-द्वारा ही होती है। जिन व्यक्तियोंमे उक्त दोनों गुण नहीं है, वे मनुष्य धर्मके उच्चतम शिखर पर चढनेके अधिकारी नहीं। जिस प्रकार प्रचण्ड सूर्यके समक्ष घटाटोप मेघ देखते-देखते विलीन हो जाते है, उसी प्रकार पञ्चपरमेष्ठीकी शरण जानेसे—उनके गुणोंके स्मरणसे आत्माका स्वकीय विज्ञान घन एव निराकुलतारूप सुख अनुभवमे आने लगता है तथा शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि अन्तर्मुहूर्त्तमें कर्म भस्म हो जाते हैं। मोहका

अभाव होते ही यह आत्मा ज्ञानाग्नि-द्वारा अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुखको प्राप्त कर लेता है।

वैदिक धर्मानुयायियोंमें जो ख्याति और प्रचार गायत्री मन्त्रका है, बौद्धोंमें त्रिसरण-त्रिशरण मन्त्रका है, जैनोंमें वही ख्याति और प्रचार णमोकार मन्त्रका है। समस्त धार्मिक और सामाजिक कृत्योंके आरम्भमें इस महामन्त्रका उच्चारण किया जाता है। जैन सम्प्रदायका यह दैनिक जाप-मन्त्र है।

णमोकार-मन्त्रका अर्थ

इस मन्त्रका प्रचार तीनों सम्प्रदायों—दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासियोंमें समान रूपसे पाया जाता है। तीनों सम्प्रदायके प्राचीनतम साहित्यमें भी इसका उल्लेख मिलता है। इस मन्त्रमें पाँच पद अट्ठावन मात्रा और पैंतीस अक्षर हैं। मन्त्र निम्न प्रकार है—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं॥

अर्थ—अरिहन्तों या अर्हन्तोंको नमस्कार हो, सिद्धोंको नमस्कार हो, आचार्योंको नमस्कार हो, उपाध्यायोंको नमस्कार हो और लोकके सर्व-साधुओंको नमस्कार हो।

'णमो अरिहंताणं' अरिहननादरिहन्ता नरकतिर्यक्कुमानुष्यप्रेतवासगताशेषदुःखप्राप्तिनिमित्तत्वादरिर्मोहः। तथा च शेषकर्मव्यापारो वैफल्यमुपेयादिति चेन्न, शेषकर्मणां मोहतन्त्रत्वात्। न हि मोहमन्तरेण शेषकर्माणि स्वकार्यनिष्पत्तौ व्यापृतान्युपलभ्यन्ते येन तेषां स्वातन्त्र्यं जायते। मोहे विनष्टेऽपि कियन्तमपि काल शेषकर्मणां सत्त्वोपलम्भान्न तेषां तत्तन्त्रत्वमिति चेन्न, विनष्टेऽरौ जन्ममरणप्रबन्धलक्षणसंसारोत्पादनसामर्थ्यमन्तरेण तत्सत्त्वस्यासत्त्वसमानत्वात् केवलज्ञानाद्यशेषात्मगुणाविर्भावप्रतिबन्धनप्रत्ययसमर्थत्वाच्च। तस्यारेर्हननादरिहन्ता।

रजोहननाद्वा अरिहन्ता। ज्ञानदृगावरणानि रजांसीव बहिरङ्गान्तरङ्गाशेष-

त्रिकालगोचरानन्तार्थव्यञ्जनपरिणामात्मकवस्तुविषयबोधानुभवप्रतिबन्धक-त्वाद्रजांसि। मोहोऽपि रजः भस्मरजसा पूरिताननानामिव भूयो मोहावरुद्धा-त्मनां जिह्मभावोपलम्भात्। किमिति त्रितयस्यैव विनाश उपदिश्यत इति चेन्न, एतद्विनाशस्य शेषकर्मविनाशाविनाभावित्वात्। तेषां हननादरिहन्ता।

रहस्याभावाद्वा अरिहन्ता। रहस्यमन्तरायः तस्य शेषघातित्रितय-विनाशाविनाभाविनो भ्रष्टबीजवन्निःशक्तीकृताघातिकर्मणो हननादरिहन्ता।

अतिशयपूजार्हत्वाद्वार्हन्तः। स्वर्गावतरणजन्माभिषेकपरिनिष्क्रमण-केवलज्ञानोत्पत्तिपरिनिर्वाणेषु देवकृतानां पूजानां देवासुरमानवप्राप्तपूजा-भ्योऽधिकत्वादतिशयानामर्हत्वाद्योग्यत्वादर्हन्तः[1]।

णमो अरिहंताणं—णमो—नमस्कारः। केभ्यः? अर्हद्भ्यः शक्रादि-कृता पूजां सिद्धिगतिं चार्हन्तस्तेभ्यः। अरीन्—रागद्वेषादीन् घ्नन्तीति अरिहन्तारः तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, न रोहन्ति—नोत्पद्यन्ते दग्धकर्मबीजत्वात्—पुनः संसारे न जायन्ते इत्यरुहन्तः तेभ्योऽरुहद्भ्यो नमो नमस्कारोऽस्तु[2]।

अरिहननाद्रजोहनन [स्या] भावाच्च परिप्राप्तानन्तचतुष्टयस्वरूपः सन् इन्द्रनिर्मितामतिशयवतीं पूजामर्हतीति अर्हन्। घातिक्षयजमनन्तज्ञानादि-चतुष्टयं विभूत्याद्यं यस्येति वाऽर्हन्[3]।

अर्थात्—'णमो अरिहताण' इस पदमे अरिहतोंको नमस्कार किया गया है। अरि—शत्रुओंके नाश करनेमे 'अरिहत' यह संज्ञा प्राप्त होती है। नरक, तिर्यञ्च, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायोमे निवास करनेसे होनेवाले समस्त दुःखोंकी प्राप्तिका निमित्त कारण होनेसे मोहको अरि—शत्रु कहा गया है।

---

१. धवलाटीका प्रथम पुस्तक पृ० ४२-४४
२ सप्तस्मरणानि पृष्ठ २
३. अमरकीर्त्ति विरचित नाममालाका भाष्य पृ० ५८-५९

शंका—केवल मोहको ही अरि मान लेनेपर शेष कर्मोंका व्यापार—कार्य निष्फल हो जायगा ?

समाधान—यह शका ठीक नहीं; क्योंकि अवशेष सभी कर्म मोहके आधीन है। मोहके अभावमे अवशेष कर्म अपना कार्य उत्पन्न करनेमें असमर्थ है। अत. मोहकी ही प्रधानता है।

शंकाकार—मोहके नष्ट हो जानेपर भी कितने ही काल तक शेष कर्मोंकी सत्ता रहती है, इसलिए उनको मोहके आधीन मानना उचित नहीं ?

समाधान—ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि मोहरूप अरिके नष्ट हो जानेपर जन्म, मरणकी परम्परारूप ससारके उत्पादनकी शक्ति शेष कर्मोंमे नहीं रहनेसे उन कर्मोंका सत्त्व असत्त्वके समान हो जाता है। तथा केवलज्ञानादि समस्त आत्मगुणोंके आविर्भावके रोकनेमे समर्थ कारण होनेसे भी मोहको प्रधान शत्रु कहा जाता है। अतः उसके नाश करनेसे 'अरिहन्त' संज्ञा प्राप्त होती है।

अथवा रज—आवरण कर्मोंके नाश करनेसे 'अरिहन्त' यह संज्ञा प्राप्त होती है। ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मधूलिकी तरह बाह्य और अन्तरग समस्त त्रिकालके विषयभूत अनन्त अर्थपर्याय और व्यञ्जनपर्यायरूप वस्तुओंको विषय करनेवाले बोध और अनुभवके प्रतिबन्धक होनेसे रज कहलाते हैं। मोहको भी रज कहा जाता है, क्योंकि जिस प्रकार जिनका मुख भस्मसे व्याप्त होता है, उनमे कार्यकी मन्दता देखी जाती है, उसी प्रकार मोहसे जिनकी आत्मा व्याप्त रहती है, उनकी स्वानुभूतिमे कालुष्य, मन्दता पायी जाती है।

अथवा 'रहस्य'के अभावसे भी अरिहत सज्ञा प्राप्त होती है। रहस्य अन्तराय कर्मको कहते है। अन्तरायका नाश शेष तीन घातिया कर्मोंके नाशका अविनाभावी है और अन्तराय कर्मके नाश होनेपर अघातिया कर्म भ्रष्ट बीजके समान नि.शक्त हो जाते हैं। इस प्रकार अन्तराय कर्मके नाशसे अरिहन्त सज्ञा प्राप्त होती है।

अथवा सातिशय पूजाके योग्य होनेसे अर्हन् संज्ञा प्राप्त होती है; क्योंकि गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवल और निर्वाण इन पाँचों कल्याणकोंमें देवों-द्वारा की गई पूजाएँ देव, असुर मनुष्योंको प्राप्त पूजाओंसे अधिक हैं। अतः इन अतिशयोंके योग्य होनेसे अर्हन् संज्ञा प्राप्त होती है।

इन्द्रादिके द्वारा पूज्य, सिद्धगतिको प्राप्त होनेवाले अर्हन्त या रागद्वेष रूप शत्रुओंको नाश करनेवाले अरिहन्त अथवा जिस प्रकार जला हुआ बीज उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार कर्म नष्ट हो जानेके कारण पुनर्जन्मसे रहित अर्हन्तोंको नमस्कार किया है।

कर्मरूपी शत्रुओंके नाश करनेसे तथा कर्मरूपी रज न होनेसे अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यरूप अनन्तचतुष्टयके प्राप्त होनेपर इन्द्रादिके द्वारा निर्मित पूजाको प्राप्त होनेवाले अर्हन् अथवा घातिया—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मोंके नाश होनेसे अनन्तचतुष्टयरूप विभूति जिनको प्राप्त हो गयी है, उन अर्हन्तोंको नमस्कार किया गया है।

जो संसारसे विरक्त होकर घर छोड़ मुनिधर्म स्वीकार कर लेते हैं तथा अपनी आत्माका स्वभाव साधन कर चार घातिया कर्मोंके नाश द्वारा अनन्त-दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इस अनन्त चतुष्टयको प्राप्त कर लेते हैं, वे अरहन्त हैं। ये अरहन्त अपने दिव्य ज्ञान द्वारा संसारके समस्त पदार्थोंकी समस्त अवस्थाओंको प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं, अपने दिव्यदर्शन-द्वारा समस्त पदार्थोंका सामान्य अवलोकन करते हैं। ये आकुलता रहित परम आनन्दका अनुभव करते हैं। क्षुधा, तृषा, भय, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, बुढ़ापा, रोग, मरण, पसीना, खेद, अभिमान, रति, आश्चर्य, जन्म, नींद और शोक इन अठारह दोषोंसे रहित होनेके कारण परम शान्त होते हैं, अतः वे देव कहलाते हैं। इनका परमौदारिक शरीर उन सभी शास्त्र, वस्त्रादि अथवा अंगविकारादिसे रहित होता है, जो काम, क्रोधादि निन्द्य भावोंके चिह्न हैं। इनके वचनोंसे लोकमें धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति होती

है, जिससे समस्त प्राणी इनके उपदेशका अनुसरण कर अपना कल्याण करते हैं। अरहन्त परमेष्ठीमें ४६ मूल गुण होते हैं—दस अतिशय जन्म समयके, दस अतिशय केवलज्ञानके, चौदह अतिशय देवोंके द्वारा निर्मित, आठ प्रातिहार्य और चार अनन्तचतुष्टय। इनमें प्रभुताके अनेक चिह्न वर्तमान रहते हैं तथा ऐसे अनेक अतिशय और नाना प्रकारके वैभवोंका संयोग पाया जाता है, जिनसे लौकिक जीव आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। अर्हन्तोंके मूल दो भेद हैं—सामान्य अर्हन्त और तीर्थंकर अर्हन्त। अतिशय और धर्मतीर्थका प्रवर्तन तीर्थंकर अर्हन्तमें ही पाया जाता है। अन्य विशेषताएँ दोनोंकी समान होती हैं। कोई भी आत्मा तपश्चरण-द्वारा घातिया कर्मोंको नष्ट करने पर अर्हन्तपदको प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक अर्हन्त भगवान्‌में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकदान, क्षायिक लाभ, क्षायिकभोग और क्षायिक उपभोग आदि गुणोंके प्रकट हो जानेसे सिद्ध स्वरूप की झलक आ जाती है। राग, द्वेष और मोहरूप त्रिपुरको नष्ट करनेके कारण त्रिपुरारी, संसारमें शान्ति करनेके कारण शंकर, तीनों नेत्रों—नेत्र द्वय और केवलज्ञानसे संसारके समस्त पदार्थोंको देखनेके कारण त्रिनेत्र एवं काम-विकारको जीतनेके कारण कामारि कहलाते हैं[1]।

१—आविर्भूतानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यविरतिक्षायिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगाद्यनन्तगुणत्वादिहैवात्मसात्कृतसिद्धस्वरूपाः स्फटिकमणिमहीधरगर्भोद्भूतादित्यबिम्बवद्देदीप्यमानाः स्वशरीरपरिमाणा अपि ज्ञानेन व्याप्तविश्वरूपा स्वास्थितासेषप्रमेयत्वतः प्राप्तविश्वरूपाः निर्गताशेषामयत्वतो निरामया विगताशेषपापाञ्जनपुञ्जत्वेन निरञ्जनाः दोषकलातीतत्वतो निष्कलाः। तेभ्योऽर्हद्भ्यो नमः इति यावत्।

णिहद-मोहतरुणो वित्थिण्णाणाण-सायरुत्तिण्णा।
णिहय-णिय-विग्घ वग्गा बहु-बाह-विणिग्गया अयला॥

अर्हन्त भगवान् दिव्य औदारिक[1] शरीरके धारी होते हैं, घातियाकर्म-मलसे रहित होनेके कारण उनका आत्मा महान् पवित्र होता है, अनन्त-चतुष्टय रूपी लक्ष्मी उनको प्राप्त हो जाती है, अतः वे परमात्मा, स्वयम्भू, जगत्पति, धर्मचक्री, दयाध्वज, त्रिकालदर्शी, लोकेश, लोकधाता, दृढव्रत, पुराणपुरुष, युगमुख्य, कलाधर, जगन्नाथ, जगद्विभु, सर्वज्ञ, प्रशास्ता, वृहस्पति, ज्ञानगर्भ, दयागर्भ, हेमगर्भ, सुदर्शन, शकर, पुण्डरीकाक्ष, स्वयवेद्य, पितामह, ब्रह्मनिष्ठ, यज्ञपति, सुयज्वा, वृषभध्वज, हिरण्यगर्भ, स्वयंप्रभु, भूतनाथ, सर्वलोकेश, निरजन, प्रजापति, श्रीगर्भ आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं।

दलिय-मयण-प्पयावा तिकाल-विसएहि तीहि णयणेहि।
दिट्ठ-सयलट्ठ-सारा सुदड्ढ-तिउरा मुणि-व्वइणो ॥
ति-रयण-तिसूलधारिय मोहंधासुर-कबंध-विंद-हरा।
सिद्ध-सयलप्प-रूवा अरहंता दुण्णय-कयंता ॥

—धवलाटीका प्रथम पुस्तक पृ० ४५

१ दिव्यौदारिकदेहस्थो धौतघातिचतुष्टयः।
ज्ञानदृग्वीर्यसौख्याढ्य. सोऽर्हन् धर्मोपदेशकः ॥

—पञ्चाध्यायी अ० २ पृ० १५८

अरहंति णमोक्कारं अरिहा पूजा सुरुत्तमा लोए।
रजहंता अरिहति य अरहंता तेण उच्चंदे ॥

—मूलाराधना गा० ५०५

अरिहंति वंदणणमसणाइं अरहंति पूयसक्कारं।
सिद्धिगमण च अरहा अरिहता तेण वुच्चति ॥
देवासुरमणुयाणं अरिहा पूया सुसत्तमा जम्हा।
अरिणो हंता रयं हता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥

—विशेषावश्यकभाष्य ३५८४-३५८५

'णमो सिद्धाण'—सिद्धा.[1] निष्ठिताः कृतकृत्याः सिद्धसाध्याः नष्टाष्ट-कर्माणः ।

नमो[2]—नमस्कारः । केभ्य. ? सिद्धेभ्यः, सितं प्रभूतकालेन बद्धं अष्ट-प्रकारं कर्म शुक्लध्यानाग्निना ध्मात—भस्मीकृत यैस्ते निरुक्तिवशात् सिद्धा-स्तेभ्यः इति । यद्वा सिद्धगतिनामधेयं स्थानं प्राप्ता. सिद्धाः । यद्वा सिद्धाः—सुनिष्ठितार्था मोक्षप्राप्त्या अपुनर्भवत्वेन सम्पूर्णार्थस्तेभ्यः सिद्धेभ्य' नम. ।

अर्थ—जो पूर्णरूपसे अपने स्वरूपमें स्थित है, कृतकृत्य है, जिन्होंने अपने साध्यको सिद्ध कर लिया है और जिनके ज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो चुके है, उन्हे सिद्ध कहते है । इन सिद्धोंको नमस्कार है ।

जिन्होंने सुदूर भूतकालसे बाँधे हुए आठ प्रकारके कर्मोंको शुक्लध्यान-रूपी अग्निके द्वारा नष्ट कर दिया है, उन सिद्धोंको, अथवा सिद्ध नामकी गति जिन्होंने प्राप्त कर ली है और पुनर्जन्मसे छूटकर जिन्होंने अपने पूर्ण-स्वरूपको प्राप्त कर लिया है, उन सिद्धोंको नमस्कार है ।

तात्पर्य यह है कि जो गृहस्थावस्थाको त्यागकर मुनि हो चार घातिया कर्मोंका नाशकर अनन्तचतुष्टय भावको प्राप्त कर लेते है । पश्चात् योग निरोध कर अवशेष चार अघातिया कर्मोंको भी नष्ट कर एवं परम औदारिक शरीरको छोड़ अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकके अग्रभागम जाकर विराजमान हो जाते हैं, वे सिद्ध है । समस्त परतन्त्रताओंसे छूट जानेके कारण उनको मुक्त कहा जाता है ।

आत्मामे सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरु-लघुत्व और अव्याबाधत्व ये आठ गुण होते हैं । ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये कर्म इन गुणोंके बाधक हैं । आत्मा पर इन कर्मोंका आवरण पड़ जानेसे ये गुण आच्छादित

१—धवलाटीका प्रथम पुस्तक पृ० ४६ ।

२—सप्तस्मरणानि पृ० ३ ।

हो जाते हैं, किन्तु जब आत्मा अपने पुरुषार्थसे इन कर्मोंको क्षय कर देता है, तब सिद्ध अवस्थाको प्राप्त कर लेता है और उपर्युक्त आठो गुणोंका आविर्भाव हो जाता है। ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयसे अनन्तज्ञान, दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे अनन्तदर्शन, वेदनीयके क्षयसे अव्याबाधत्व, मोहनीयके क्षयसे सम्यक्त्व, आयुके क्षयसे अवगाहनत्व, नामकर्मके क्षयसे सूक्ष्मत्व, गोत्र-कर्मके क्षयसे अगुरुलघुत्व और अन्तरायके क्षयसे वीर्यगुणका आविर्भाव होता है[1]।

'[2]जिन्होंने नाना भेदरूप आठ कर्मोंका नाश कर दिया है, जो तीन लोकके मस्तकके शेखर-स्वरूप हैं, दुःखोंसे रहित हैं, सुखरूपी सागरमें निमग्न हैं, निरञ्जन हैं, नित्य हैं, आठ गुणोसे युक्त हैं, निर्दोष हैं, कृतकृत्य हैं, जिन्होंने समस्त पर्यायो सहित सम्पूर्ण पदार्थोंको जान लिया है, जो वज्रशिला

१—कृत्स्नकर्मक्षयाज्ज्ञानं क्षायिकं दर्शनं पुनः।
प्रत्यक्षं सुखमात्मोत्थं वीर्यञ्चेति चतुष्टयम्॥
सम्यक्त्वं चैव सूक्ष्मत्वमव्याबाधगुणः स्वतः।
अस्त्यगुरुलघुत्वं च सिद्धे चाष्टगुणाः स्मृताः॥
—पञ्चाध्यायी अ० २, श्लो० ६७-६८

२—णिहय-विविहट्ठ-कम्मा तिहुवण-सिर-सेहरा विहुव-दुक्खा।
सुहसायर-मज्झगया णिरंजणा णिच्च अट्ठगुणा॥
अणवज्जा कय-कज्जा सव्वावयवेहि दिट्ठ सव्वट्ठा।
वज्ज-सिलत्थ ब्भग्गय-पडिमं वाभेज्ज संठाणा॥
माणुस-संठाणा वि हु सव्वावयवेहि णो गुणेहि समा।
सव्विंदियाण विसयं जमेग-देसे विजाणंति॥
—धवलाटीका प्रथम पुस्तक पृ० ४८

अट्ठविहह कम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा॥
—गोम्मटसार जीवकाण्ड गा० ६८

निर्मित अभग्न प्रतिमाके समान अभेद्य आकारसे युक्त हैं, जो पुरुषाकार होने पर भी गुणोसे पुरुषके समान नही है, क्योंकि पुरुष सम्पूर्ण इन्द्रियोके विषयोंको भिन्न-भिन्न देशोंमे जानता है, परन्तु जो प्रत्येक देशमे सब विषयोंको जानते है, वे सिद्ध हैं'। आत्माका वास्तविक स्वरूप इस सिद्ध पर्यायमे ही प्रकट होता है, सिद्ध ही पूर्ण स्वतन्त्र और शुद्ध है। इस प्रकार पूर्ण शुद्ध, कृतकृत्य, अचल, अनन्त सुख-ज्ञानमय और स्वतन्त्र सिद्ध आत्माओंको 'णमो सिद्धाणं' पदमें नमस्कार किया गया है।

'णमो आइरियाणं'—णमो[1] नमस्कारः पञ्चविधमाचारं चरन्ति चारयन्तीत्याचार्याः। चतुर्दशविद्यास्थानपारगाः एकादशाङ्गधराः। आचाराङ्गधरो वा तात्कालिकस्वसमयपरसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिःक्षिप्तमलः सप्तभयविप्रमुक्तः आचार्यः।

णमो—नमस्कार[2] : केभ्यः ? आचार्येभ्यः, स्वयं पञ्चविधाचारवन्तोऽन्येषामपि तत्प्रकाशकत्वात् आचारे साधवः आचार्यास्तेभ्यः इति।

अर्थ—आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार है। जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारोंका स्वय आचरण करते हैं और दूसरे साधुओंसे आचरण कराते हैं, उन्हे आचार्य कहते हैं। जो चौदह विद्यास्थानोंके पारगत हो, ग्यारह अगके धारी हों अथवा आचारागमात्रके धारी हो अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमयमें पारगत हों, मेरुके समान निश्चल हों, पृथ्वीके समान सहनशील हों, जिन्होंने समुद्रके समान मल अर्थात् दोषोंको बाहर फेंक दिया हो और जो सात प्रकारके भयसे रहित हो, उन्हें आचार्य कहते है।

आचार्य परमेष्ठीके ३६ मूल गुण होते है—१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति। इन ३६ मूल गुणोंका आचार्य परमेष्ठी सावधानीपूर्वक पालन करते है।

१—धवला टीका प्रथम पुस्तक पृ० ४८।

२—सप्तस्मरणानि पृ० ३।

तात्पर्य यह है कि जो मुनि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी अधिकताके कारण प्रधानपदको प्राप्त कर संघके नायक बनते हैं तथा मुख्यरूपसे तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण चारित्रमें ही मगन रहते हैं, किन्तु कभी-कभी धर्मपिपासु जीवोंको रागांशका उदय होनेके कारण करुणाबुद्धिसे उपदेश भी देते हैं। दीक्षा लेनेवालोको दीक्षा देते हैं तथा अपने दोष निवेदन करनेवालोंको प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करते है, वे आचार्य कहलाते हैं[1]।

"परमागमके परिपूर्ण अभ्यास और अनुभवसे जिनकी बुद्धि निर्मल हो गयी है, जो निर्दोष रीतिसे छः आवश्यकोंका पालन करते हैं, जो मेरु पर्वतके समान निष्कम्प हैं, शूरवीर है, सिंहके समान निर्भीक है, श्रेष्ठ है, देश, कुल और जातिसे शुद्ध हैं, सौम्य मूर्ति है, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहसे रहित हैं, आकाशके समान निर्लेप हैं, ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं। ये दीक्षा और प्रायश्चित्त देते हैं, परमागम अर्थके पूर्ण ज्ञाता और अपने मूलगुणोंमें निष्ठ रहते हैं।"[2] इस प्रकार रत्नत्रयके धारी आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार किया है।

'णमो उवज्झायाण'—चतुर्दशविद्यास्थानव्याख्यातारः उपाध्यायाः

१—आ मर्यादया तद्विषयविनयरूपया चर्यन्ते सेव्यन्ते जिनशासनार्थोपदेशकतया तदाकाङ्क्षिभिः इत्याचार्या । उक्तं च "सुत्तत्थविऊ लक्खणजुत्तो गच्छस्स मेढिभूओ य । गणतत्तिविप्पमुक्को अत्थं वाएइ आइरिओ ॥" अथवा आचारो ज्ञानाचारादिः पञ्चधा । आमर्यादया वा चारो विहार आचारस्तत्र साधवः स्वयंकरणात् प्रभाषणात् प्रदर्शनाच्चेत्याचार्याः । आह च पंचविहं आयारं आयरमाणा तहा पयासंता । आयारं दंसंता आयरिया तेण वुच्चंति ॥ अथवा आ ईषद् अपरिपूर्णा इत्यर्थः चारा हेरिका ये ते आचाराश्चारकल्पा इत्यर्थः । युक्तायुक्तविभागनिरूपणनिपुणा विनेया, अतस्तेषु साधवो यथावच्छास्त्रार्थोपदेशकतया इत्याचार्या । नमस्यता चैषामाचारोपदेशकतयोपकारित्वात् ।—भग० १, १, १ टीका ।

२—धवलाटीका प्र० पु० पृ० ४९; मूलाचार आवश्यक अ० श्लो० ७२

तात्कालिकप्रवचनव्याख्यातारो वा आचार्यस्योक्ताशेषलक्षणसमन्विताः संग्रहानुग्रहादिहीनाः[1]।

नमो—नमस्कारः। केभ्य.? उपाध्यायेभ्यः उप एत्य समीपमागत्य येभ्यः सकाशादधीयन्त इत्युपाध्यायास्तेभ्यः, इति। अथवा उप—समीपे अध्यायो—द्वादशाङ्ग्याः पठनं सूत्रतोऽर्थतश्च येषां ते उपाध्यायाः तेभ्य. उपाध्यायेभ्यः नमः[2]।

इक् स्मरणे इति वचनात् वा स्मर्यते सूत्रतो जिनप्रवचन येभ्यस्ते उपाध्यायाः। अथवा उपाधानमुपाधिः—सन्निधिस्तेनोपाधिना उपाधौ वा आयो—लाभः श्रुतस्य येषां उपाधीनां वा विशेषणानां प्रक्रमाच्छोभनानामायो—लाभो येभ्यः अथवा उपाधिरेव—सन्निधिरेव आयस्—इष्टफल दैवजनितत्वेन अयानाम्—इष्टफलानां समूहस्तदेकहेतुत्वात् येषाम्, अथवा आधीनां—मनःपीडानामायो—लाभः आध्याय. अधियां वा 'नञ. कुत्सार्थत्वात्' कुत्बुद्धीनामायोऽध्यायः, 'ध्यै चिन्तायाम्' इत्यस्य धातो. प्रयोगान्नञः कुत्सार्थत्वादेव च दुर्ध्यानं वाध्यायः। उपहत आध्याय' आध्नायो वा यैस्ते उपाध्यायाः। नमस्यता चैषा सुसम्प्रदायायातजिनवचनाध्यापनतो विनयेन भव्यानामुपकारत्त्वादिति[3]।

अर्थात् चौदह विद्यास्थानके व्याख्यान करनेवाले उपाध्याय परमेष्ठीको नमस्कार है। अथवा तत्कालीन परमागमके व्याख्यान करनेवाले उपाध्याय होते हैं। ये सग्रह, अनुग्रह, आदि गुणोंको छोडकर पूर्वोक्त आचार्यके सभी गुणोसे युक्त होते हैं।

उन उपाध्याय परमेष्ठीके लिए नमस्कार है, जिनके पास अन्य मुनिगण अध्ययन करते है, अथवा जिनके निकट द्वादशागके सूत्र और अर्थोंका मुनिगण अध्ययन करते हैं।

---

१. धवलाटीका प्र० पु० पृ० ५०।

२. सप्तस्मरणानि पृ० ४।

३. भग० १, १, १ टीका।

इक् धातुका अर्थ स्मरण करना होता है, अतः जो सूत्रोके क्रमानुसार जिनागमका स्मरण करते है, वे उपाध्याय कहलाते हैं। अथवा उपाध्याय इस उपाधिसे जो विभूषित हो, वे उपाध्याय कहलाते है।

जो मुनि परमागमका अभ्यास करके मोक्षमार्गमें स्थित है तथा मोक्षके इच्छुक मुनियोंको उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरोंको उपाध्याय परमेष्ठी कहते है। उपाध्याय ही जैनागमके ज्ञाता होनेके कारण मुनिसंघमे पठन-पाठनके अधिकारी होते है। शास्त्रोके समस्त शब्दार्थको जानकर आत्मध्यानमे लीन रहते है। मुनियोके अतिरिक्त श्रावकोको भी अध्ययन कराते है। उपाध्याय पद पर वे ही मुनिराज आसीन होते हैं, जो जैनागमके अपूर्व ज्ञाता होते हैं। ग्यारह अग और चौदह पूर्वके पाठी[1], ज्ञान-ध्यानमे लीन, परम निर्ग्रन्थ श्री उपाध्याय परमेष्ठीको हमारा नमस्कार हो। यहाँ 'णमो उवज्झायाण' पदमे उक्त स्वरूपवाले उपाध्यायको नमस्कार किया गया है।

'णमो लोए सव्वसाहूण'—अनन्तज्ञानादिशुद्धात्मस्वरूप साधयन्तीति साधवः। पञ्चमहाव्रतधरास्त्रिगुप्तिगुप्ता. अष्टादशशीलसहस्रधराश्चतुरशीतिशतसहस्रगुणधराश्च साधवः[2]।

नमो—नमस्कार.। केभ्य.? लोके सर्वसाधुभ्य। लोके—मनुष्यलोके सम्यग्ज्ञानादिभिर्मोक्षसाधकाः सर्वसत्त्वेषु समाश्चेति साधव., सर्वे च ते स्थविरकल्पिकादिभेदभिन्ना. साधवश्चेति सर्वसाधवस्तेभ्यः, इति। अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिभि साधयन्ति मोक्षमार्गमिति साधवः। लोके—सार्धद्वयद्वीपलक्षणे पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाणे मनुष्यलोके सर्वे च ते साधवश्च। यद्वा—अर्हत· साधवः सर्वसाधवः तेभ्यो नमो—नमस्कारोऽस्तु[3]।

---

१. विशेषके लिए देखें—मूलाचार, अनगारधर्मामृत।

२. धवलाटीका प्र० पु० पृ० ५१।

३ ससस्मरणानि पृ० ४।

अर्थात्—ढाई द्वीपवर्ती सभी साधुओंको नमस्कार हो। जो अनन्त ज्ञानादिरूप शुद्ध आत्माके स्वरूपकी साधना करते है, तीन गुप्तियोंसे सुरक्षित हैं। अठारह हजार शीलके भेदोंको धारण करते है और चौरासी लाख उत्तरगुणोंका पालन करते है, वे साधु परमेष्ठी होते है।

मनुष्य लोकके समस्त साधुओंको नमस्कार है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रके द्वारा मोक्षमार्गकी साधना करते है तथा सभी प्राणियोंमे समान बुद्धि रखते हैं, वे स्थविरकल्पि और जिनकल्पि आदि भेदोंसे युक्त साधु हैं। अथवा ढाई द्वीप—पैंतालीस लाख योजनके विस्तारवाले मनुष्यलोकमे रत्नत्रयधारी, पञ्चमहाव्रतोंसे युक्त, दिगम्बर, वीतरागी साधु परमेष्ठीको नमस्कार किया गया है।

"सिंहके[1] समान पराक्रमी, गजके समान स्वाभिमानी या उन्मत्त, बैलके समान भद्र प्रकृति, मृगके समान सरल, पशुके समान निरीह, गोचरी वृत्ति करनेवाले, पवनके समान निस्सग या सर्वत्र बिना रुकावटके विचरण करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी या समस्त तत्त्वोंके प्रकाशक, समुद्रके समान गम्भीर, सुमेरुके समान परीषह और उपसर्गोंके आनेपर अकम्प और अडोल रहनेवाले, चन्द्रमाके समान शान्तिदायक, मणिके समान प्रभापुञ्ज युक्त, पृथ्वीके समान सभी प्रकारकी बाधाओंको सहनेवाले, सर्पके समान दूसरेके बताये हुए अनियत आश्रयमे रहनेवाले, आकाशके समान निरालम्बी या निर्भीक एव सर्वदा मोक्षका अन्वेषण करनेवाले साधु परमेष्ठी होते है।"

अभिप्राय यह है कि जो विरक्त होकर समस्त परिग्रहको त्याग शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्मको स्वीकार करते है तथा शुद्धोपयोगके द्वारा अपनी

---

१. सीह-गय-वसह-मिय-पसु-मारुद-सूरुवहि-मंदरिंदु-मणी।
खिदि-उरगंवर-सरिसा परम-पय-विमग्गया साहू॥
—धवलाटीका प्र० पु० पृ० ५१

आत्माका अनुभव करते हैं, पर पदार्थोंमे ममत्व बुद्धि नहीं करते तथा ज्ञानादिस्वभावको अपना मानते हैं, वे मुनि है। यद्यपि ज्ञानका स्वभाव जाननेवाला होनेसे अपने क्षयोपशम-द्वारा प्राभृत पदार्थोंको जानते हैं, पर उनसे राग-बुद्धि नहीं करते। शरीरमे रोग, बुढापा आदिके होनेपर तथा बाह्य निमित्तोंका सयोग होनेपर सुख-दुःख नहीं करते हैं। अपने योग्य समस्त क्रियाओंको करते हैं, पर रागभाव नहीं करते। यद्यपि इनका प्रयास सर्वदा शुद्धोपयोगको प्राप्त करनेका ही रहता है, पर कदाचित् प्रबल रागाशका उदय आनेमे शुभोपयोगकी ओर भी प्रवृत्ति करनी पड़ती है। शरीरको सजाना, शृगार करना आदिसे सर्वदा पृथक् रहते हैं। इनके मूल गुण २८ है। इसके अन्तरगमें अहिंसा भावना सदा वर्तमान रहती है तथा बहिरगमे सौम्य दिगम्बर मुद्रा। ये ज्ञान-ध्यान, और स्वाध्यायमे सर्वदा लीन रहते है। बाईस परीषहोंको निश्चल हो सहन करते है। शरीरकी स्थितिके लिए आवश्यक आहार-विहारकी क्रियाएँ सावधानी पूर्वक करते हैं। इस प्रकारके साधुओंको 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पद द्वारा नमस्कार किया गया है।

पञ्चपरमेष्ठीके उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि आत्मिक विक्रमकी उपेक्षासे ही अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको देव माना गया है। ये पाँचों ही वीतरागी है, अत. स्तुतिके योग्य हैं। तत्त्वदृष्टिसे सभी जीव समान हैं, किन्तु रागादि विकारोंकी अधिकता और ज्ञानकी हीनतासे जीव निन्दायोग्य तथा रागादिकी हीनता और ज्ञानकी अधिकतासे स्तुतियोग्य होते हैं। अरिहन्त और सिद्धोंमें रागभावकी पूर्ण हीनता और ज्ञानकी विशेषता होनेके कारण वीतराग विज्ञानभाव वर्तमान है तथा आचार्य, उपाध्याय और साधुओंमे एकदेश रागादिकी हीनता और क्षमोपशमजन्य ज्ञानकी विशेषता होनेसे एकदेश वीतराग विज्ञान भाव है, अतएव पाँचों ही परमेष्ठी वीतराग होनेके कारण वन्दनीय हैं। धवलाटीकामें पञ्चपरमेष्ठीके देवत्वका समर्थन निम्न प्रकार किया गया है—

शंका[1]—आत्म-स्वरूपको प्राप्त अरिहन्त और सिद्धोंको देव मानकर नमस्कार करना ठीक है, किन्तु जिन्होंने आत्मस्वरूपको प्राप्त नहीं किया है, ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधुको देव मानकर कैसे नमस्कार किया जाय ?

समाधान—यह शका ठीक नहीं है, क्योंकि अपने अनन्त भेदो सहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रका नाम देव है, अतः इन तीनो गुणोंसे विशिष्ट जो जीव है, वह भी देव कहलाता है। यदि रत्नत्रयको देव नहीं माना जायगा तो सभी जीव देव हो जायँगे। अतएव आचार्य, उपाध्याय और मुनियोंको भी देव मानना चाहिए, क्योंकि रत्नत्रयका अस्तित्व अरहन्तोंकी तरह इनमें भी पाया जाता है।

सिद्ध परमेष्ठीके रत्नत्रयकी अपेक्षा आचार्य आदि परमेष्ठियोंका रत्नत्रय भिन्न नहीं है। यदि इनके रत्नत्रयमें भेद मान लिया जाय, तो आचार्यादिमें रत्नत्रयका अभाव हो जायगा।

शंका—जिन्होंने रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी पूर्णताको प्राप्त कर लिया है, उन्हींको देव मानना चाहिए, रत्नत्रयकी अपूर्णता जिनमें रहती है, उनको देव मानना असगत है।

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है। यदि एकदेश रत्नत्रयमें देवत्व नहीं माना जायगा तो सम्पूर्ण रत्नत्रयमें देवत्व नहीं बन सकेगा, अत॰ आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु भी देव हैं। जैनाम्नायमें अलौकिक सत्ताधारी किसी परोक्षशक्तिको सच्चा देव नहीं माना है, पर रत्नत्रयके विकासकी अपेक्षा वीतरागी, ज्ञानी और शुद्धोपयोगी आत्माओंको देव कहा है।

इस णमोकारमन्त्रमें सव्व—सर्व और लोए—लोक पद अन्त दीपक है। जिस प्रकार दीपक भीतर रख देनेसे भीतरके समस्त पदार्थोंका प्रकाशन करता है, उसी प्रकार उक्त दोनों पद भी अन्य समस्त पदोंके ऊपर प्रकाश डालते हैं। अत. सम्पूर्ण क्षेत्रमें रहनेवाले त्रिकालवर्ती अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कर समझना चाहिए।

१—धवला प्रथम पुस्तक पृ० ५२-५३।

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंमें णमोकारमन्त्रके पाठान्तर भी उपलब्ध होते हैं। श्वेताम्बर आम्नायमें णमोके स्थानपर नमो पाठ प्रचलित है। अतएव संक्षेपमें इस मन्त्रके पाठान्तरोंपर विचार कर लेना भी आवश्यक है। दिगम्बर परम्परामें इस मन्त्रका मूलपाठ तो षट्खण्डागमके प्रारम्भमें लिखित ही है। इस पुस्तकमें भी इसी पाठको मूलपाठ माना गया है। पाठान्तर दिगम्बर परम्पराके अनुसार निम्न हैं—

णमोकार मन्त्रके पाठान्तर

'अरिहंताणं'के स्थानपर मुद्रित ग्रन्थोंमें अरहंताणं, प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंमें अर्हंताणं[1] तथा अरुहंताणं[2] पाठ भी मिलते हैं। इसी प्रकार 'आइरियाणं'के स्थानपर आयरियाणं,[3] आइरीयाणं,[4] आइरिआणं[5] पाठ भी पाये जाते हैं। अन्य पदोंके पाठमें कुछ भी अन्तर नहीं है, क्योंकि लो हैं। यदि अरिहंताणंके स्थानपर अरहंताणं और अरुहंताणं या अर्हंताणं पाठ रखे जाते हैं, तो प्राकृत व्याकरणकी दृष्टिसे अरहंताणं और अरहंताणं दोनों पदोंसे अर्हन्त शब्द निष्पन्न होता है। अतः दोनों शुद्ध हैं, पर अर्थमें

१—यह पाठान्तर $\frac{त}{१२}$ गुटकेमें—जैनसिद्धान्त भवन आरामें मिलता है।

२— $\frac{त}{१४}$ गुटकेमें आरम्भमें अरहंताणं लिखा है पश्चात् काट कर अरुहंताणं लिखा गया है। प्राकृत पंचमहागुरु भक्तिमें अर्हंताणंके स्थानपर अरुहा पाठ आया है।

३—मुद्रित और हस्तलिखित पूजापाठ सम्बन्धी अधिकांश प्रतियोंमें।

४—मुद्रित अधिकांश प्रतियोंमें।

५—हस्तलिखित $\frac{त}{१२}$ गुटकेमें।

अन्तर है। अरुहतका अर्थ है कि जिनका पुनर्जन्म अब न हो अर्थात् कर्म बीजके जल जानेके कारण जिनके पुनर्जन्मका अभाव हो गया है, वे अरुहत कहलाते हैं। देवोंके द्वारा अतिशय पूजनीय होनेके कारण अरहत कहे जाते हैं। इसी अरहन्तको लेखकोंने अर्हन्त लिखा है, अर्थात् प्राकृत शब्दको संस्कृत मानकर अर्हन्त पाठ भी लिखा जाने लगा। A 1498

षट्खण्डागमकी धवलाटीकाके देखनेसे अवगत होता है कि आचार्य वीरसेनके समयमें भी इस महामन्त्रके अरहन्त और अरुहन्त पाठान्तर थे। उनके इस मन्त्रकी व्याख्यामें प्रयुक्त 'अतिशयपूजार्हत्वाद्वार्हन्त.' तथा 'अष्ट-बीजवन्निशक्तीकृताघातिकर्मणो हननात्' वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध है कि यह व्याख्या उक्त पाठान्तरोंको दृष्टिमें रखकर ही की गयी होगी। यद्यपि स्वय वीरसेनाचार्यको मूलपाठ ही अभिप्रेत था, इसी कारण व्याख्याके अन्तमें उन्होंने अरिहन्त पद ही प्रयुक्त किया है, फिर भी व्याख्याकी शैलीसे यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि उनके सामने पाठान्तर थे। व्याकरण और अर्थकी दृष्टिसे उक्त पाठान्तरोंमें कोई मौलिक अन्तर न होनेके कारण उन्होंने उनकी समीक्षा करना उचित न समझा होगा।

इसी प्रकार आइरियाणं, आयरियाणं पाठोंके अर्थमें कोई भी अन्तर नहीं है। प्राकृत व्याकरणके अनुसार तथा उच्चारणादिके कारण इनमें अन्तर पड़ गया है। रकारोत्तरवर्ती इकारको दीर्घ करना केवल उच्चारणकी सरलता तथा लयको गति देनेके लिए हो सकता है। इसी प्रकार इकारके स्थानपर यकारका पाठ भी उच्चारणके सौकर्यके लिए ही किया गया प्रतीत होता है। अतः णमोकार मन्त्रका शुद्ध और आगम सम्मत पाठ निम्न है—

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाण णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व-साहूणं॥

श्वेताम्बर-परम्परामें इस मन्त्रका पाठ निम्न प्रकार उपलब्ध होता है—

नमो अरिहंताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झानाणं नमो लोए सव्व-साहूणं॥

समसमरणानिमे 'अरिहंताण के तीन पाठ बतलाये गये है—'अत्र पाठ-त्रयम्—अरहंताणं, अरिहंताणं, अरुहंताणं'। अर्थात् अरहत, अरिहत और अरुहंत इन तीनों पदोका अर्थ पूर्वके समान इन्द्रादिके द्वारा पूज्य, घातिया कर्मोंके नाशक, कर्मबीजके विनाशक रूपमे किया गया है। उच्चारण-सरलताके लिए आइरियाणके स्थानपर आयरियाण पाठ है। इसमें अर्थकी कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार श्वेताम्बर आम्नायके पाठोंमे दिगम्बर आम्नायके पाठोंकी अपेक्षा कोई मौलिक भेद नहीं है। जो कुछ भी अन्तर है वह 'नमो' पाठमे है। इस सम्प्रदायके आगमिक ग्रन्थोमें भी 'ण'के स्थानपर 'न' पाया जाता है। इसका कारण यह है कि अर्धमागधी प्राकृतमें विकल्पसे 'ण'के स्थानपर न होता है। दिगम्बर आम्नायके साहित्यकी प्राकृत प्रायः महाराष्ट्री है, इसमे सर्वत्र णकारका प्रयोग मिलता है। किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके साहित्यकी प्राकृत भाषा अर्धमागधी है, इसमें णकारके स्थानपर णकार और नकार दोनों प्रयोग पाये जाते है। बताया गया है कि "महाराष्ट्र्यां नकारस्य सर्वदा णकारो जायतेऽर्द्धमागध्यां तु नकारणकारौ द्वावपि।" यथा "छण छण परिण्णाय लोगसन्नं च सव्वसो।"—आचा० १-२-३-१०३।

परन्तु इस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषाके परिवर्तनसे शब्दोंकी शक्तिमें कमी आती है, जिससे मन्त्रशास्त्रके रूप और मण्डलमें विकृति हो जाती है और साधकको फल-प्राप्ति नहीं हो पाती है। अतः णमो पाठ ही समीचीन है, इस पाठके उच्चारण मनन और चिन्तनमे आत्माकी शक्ति अधिक लगती है तथा फल प्राप्ति शीघ्र होती है। मन्त्रोच्चारणसे जिस प्राण-विद्युत्का सचार किया जाता है, वह 'णमो'के घर्षणसे ही उत्पन्न की जा सकती है। अतएव शुद्धपाठ ही काममे लेना चाहिए।

इस महामन्त्रमे शुद्धात्माओंको क्रमशः नमस्कार किया गया प्रतीत नहीं होता है। रत्नत्रयकी पूर्णता तथा पूर्ण कर्म कलकका विनाश तो

सिद्ध परमेष्ठीमें देखा जाता है, अतः इस महामन्त्रके पहले पदमें सिद्धोंको नमस्कार होना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं किया गया है। धवलाटीकामें आचार्य वीरसेन स्वामीने इस आशंकाको उठाकर निम्नप्रकार समाधान किया है—

णमोकार मन्त्र का पदक्रम

विगताशेषलेपेषु सिद्धेषु सत्स्वर्हतां सलेपानामादौ किमिति नमस्कारः क्रियत इति चेन्नैष दोषः, गुणाधिकसिद्धेषु श्रद्धाधिक्यनिबन्धनत्वात्। असत्यर्हत्याप्तागमपदार्थावगमो न भवेदस्मदादीनाम्, संजातश्चैतत् प्रसादा-दित्युपकारापेक्षया वादावर्हन्नमस्कारः क्रियते। न पक्षपातो दोषाय शुभ-पक्षवृत्तेः श्रेयोहेतुत्वात्। अद्वैतप्रधाने गुणीभूतद्वैते द्वैतनिबन्धनस्य पक्ष-पातस्यानुपपत्तेश्च। आप्तश्रद्धाया आप्तागमपदार्थविषयश्रद्धाधिक्यनिबन्ध-नत्वख्यापनार्थं वार्हतामादौ नमस्कारः।

अर्थात्—सभी प्रकारके कर्म लेपसे रहित सिद्धपरमेष्ठीके विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मोंके लेपसे युक्त अरिहन्तोंको आदिमें नमस्कार क्यों किया है? इस आशंकाका उत्तर देते हुए वीरसेनस्वामीने लिखा है कि यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धोंमें श्रद्धाकी अधिकताके कारण अरिहत परमेष्ठी ही हैं—अरिहन्त परमेष्ठीके निमित्तसे ही अधिक गुणवाले सिद्धोंमें सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है अथवा यदि अरिहन्त परमेष्ठी न होते तो हम लोगों को आप्त आगम और पदार्थका परिज्ञान नहीं हो सकता था। यतः अरिहन्तकी कृपासे ही हमें बोधकी प्राप्ति हुई है, इसलिए उपकारकी अपेक्षा भी आदिमें अरिहन्तोंको नमस्कार करना युक्ति संगत है। जो मार्गदर्शक उपकारी होता है उसीका सबसे पहले स्मरण किया जाता है।

यदि कोई यह कहे कि इस प्रकार आदिमें अरिहन्तोंको नमस्कार करना तो पक्षपात है? इसपर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसा पक्षपात दोषोत्पादक नहीं है; किन्तु शुभ पक्षमें रहनेसे वह कल्याणका ही कारण है। तथा द्वैतको गौण करके अद्वैतकी प्रधानतासे किये गये नमस्कारमें द्वैतमूलक पक्षपात

चन भी तो नहीं सकता है। अतः उपकारीके रूपमे अरिहन्त भगवान्को सबसे पहले नमस्कार किया है, पश्चात् सिद्ध परमेष्ठीको।

अरिहन्त और सिद्धमे नमस्कारका उक्त क्रम मान लेने पर आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुके नमस्कारमे उस क्रमका निर्वाह क्यो नहीं किया गया है ? यहाँ भी सबसे पहले साधु परमेष्ठीको नमस्कार किया जाता, पश्चात् उपाध्याय और आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार होना चाहिए था, पर ऐसा पदक्रम नहीं रखा गया है।

उपर्युक्त आशका पर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि इस महामन्त्रमे परमेष्ठियोंको रत्नत्रय गुणकी पूर्णता और अपूर्णताके कारण दो भागोंमे विभक्त किया है। प्रथम विभागमे अर्हन्त और सिद्ध है, द्वितीय विभागमे आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं। प्रथम विभागके परमेष्ठियोंमे रत्नत्रयगुणकी न्यूनतावाले परमेष्ठीको पहले और रत्नत्रयगुणकी पूर्णतावाले परमेष्ठीको पश्चात् रखा गया है। इस क्रमानुसार अरिहन्तके पहले और सिद्धको बादमे पठित किया है। दूसरे विभागके परमेष्ठियोंमे भी यही क्रम है। आचार्य और उपाध्यायकी अपेक्षा मुनिका स्थान ऊँचा है, क्योंकि गुणस्थान-आरोहण मुनिपदसे ही होता है, आचार्य और उपाध्याय पदसे नहीं। और यही कारण है कि अन्तिम समयमे आचार्य और उपाध्यायोंको अपना-अपना पद छोडकर मुनिपद धारण करना पड़ता है। मुक्ति भी मुनिपदसे ही होती है तथा रत्नत्रयकी पूर्णता इसी पदमे सभव है। अतः दोनो विभागोंमे उन्नत आत्माओंको पश्चात् पठित किया गया है।

एक अन्य समाधान यह भी है कि जिस प्रकार प्रथम विभागके परमेष्ठियोंमे उपकारी परमेष्ठीको पहले रखा गया है, उसी प्रकार द्वितीय विभागके परमेष्ठियोंमे भी उपकारी परमेष्ठीको प्रथम स्थान दिया गया है। आत्मकल्याणकी दृष्टिसे साधुपद उन्नत है, पर लोकोपकारकी दृष्टिसे आचार्यपद श्रेष्ठ है। आचार्य स्वतः अनुशासक ही नहीं होता, बल्कि अपने समयके चतुर्विध संघके रक्षणके साथ धर्मप्रसार और धर्म प्रचारका कार्य भी करता है। धार्मिक

दृष्टिसे चतुर्विध सघकी सारी व्यवस्था उसीके ऊपर रहती है। उसे लोक-व्यवहारज्ञ भी होना चाहिए जिससे लोकमें तीर्थंकर-द्वारा प्रवर्तित धर्मका भलीभाँति रक्षण कर सके। अत. जनताके उत्थानके साथ आचार्यका सम्बन्ध है, यह अपने धर्मोपदेश-द्वारा जनताको तीर्थंकरो-द्वारा उपदिष्ट मार्गका अवलोकन कराता है। भूले-भटकोंको धर्मपन्थ सुझाता है। अतएव जनताका धार्मिक नेता होनेके कारण आचार्य अधिक उपकारी है। इसलिए द्वितीय विभागके परमेष्ठियोंमें आचार्यपदको प्रथम स्थान दिया गया है।

आचार्यसे कम उपकारी उपाध्याय हैं। आचार्य सर्वसाधारणको अपने उपदेशसे धर्ममार्गमें लगाते हैं, किन्तु उपाध्याय उन जिज्ञासुओंको अध्ययन कराते हैं, जिनके हृदयमें ज्ञानपिपासा है। उनका सम्बन्ध सर्वसाधारणसे नहीं, बल्कि सीमित अध्ययनार्थियोंसे है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि एक वह नेता है जो अगणित प्राणियोंकी सभामें अपना मोहक उपदेश देकर उन्हे हितकी ओर ले जाता है और दूसरा वह प्रोफेसर है, जो एक सीमित कमरेमें बैठे हुए छात्रवृन्दको गम्भीर तत्त्व समझाता है। हैं दोनों ही उपकारी, पर उनके उपकारके परिमाण और गुणोंमें अन्तर है। अतः आचार्यके अनन्तर उपाध्याय पदका पाठ भी उपकार गुणकी न्यूनताके कारण ही रखा गया है।

अन्तमें मुनिपद या साधुपदका पाठ आता है। साधु दो प्रकारके हैं—द्रव्यलिङ्गी और भावलिङ्गी। आत्मकल्याण करनेवाले भावलिङ्गी साधु हैं। ये अन्तरग—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप परिग्रहसे तथा बहिरग—धन, धान्य, वस्त्र आदि सभी प्रकारके परिग्रहसे रहित होकर आत्मचिन्तनमे लीन रहते हैं। ये सर्वदा लोकोपकारसे पृथक् रहकर आत्मसाधनामें रत रहते हैं। यद्यपि इसकी सौम्य मुद्रा तथा इनके अहिंसक आचरणका प्रभाव भी समाजपर अमिट पड़ता है, पर ये आचार्य या उपाध्यायके समान लोक-कल्याणमे सलग्न नहीं रहते हैं। अतः 'सव्वसाधु' पदका पाठ सबसे अन्तमें रखा गया है।

णमोकार महामन्त्र अनादि है। प्रत्येक कल्पकालमें होनेवाले तीर्थङ्करोंके द्वारा इसके अर्थका और उनके गणधरोंके द्वारा इसके शब्दोंका निरूपण किया जाता है। पूजन-पाठके आरम्भमें इस महामन्त्रको अनादि कहकर स्मरण किया गया है। पूजनका आरम्भ ही इस महामन्त्रसे होता है।

णमोकार महामन्त्रका अनादि सादित्व विमर्श

पाँचों परमेष्ठियोंको एक साथ नमस्कार होनेसे यह मन्त्र पञ्च परमेष्ठी मन्त्र भी कहलाता है। पञ्च परमेष्ठी अनादि होनेके कारण यह मन्त्र अनादि माना जाता है। इस महामन्त्रमें नमस्कार किये गये पात्र आदि नहीं, प्रवाहरूपसे अनादि हैं और इनको स्मरण करनेवाला जीव भी अनादि है। वास्तविकता यह है कि णमोकार मन्त्र आत्मिक स्वरूप है, आत्मा अनादि है, अतः यह मन्त्र भी अनादिकालसे गुरुपरम्परा-द्वारा प्रतिपादित होता चला आ रहा है। अध्यात्मनञ्जरीमें बताया गया है कि "इदं अर्थमन्त्रं परमार्थतीर्थपरम्परा गुरुपरम्पराप्रसिद्धं विशुद्धोपदेशदम्।" अर्थात् अभीष्ट सिद्धिकारक यह मन्त्र तीर्थङ्करोंकी परम्परा तथा गुरुपरम्परासे अनादिकालसे चला आ रहा है। आत्माके समान यह अनादि और अविनश्वर है। प्रत्येक कल्पकालमें होनेवाले तीर्थंकरोंके द्वारा इसका प्रवचन होता है। द्वितीय छेदसूत्र महानिशीथके पाँचवें अध्ययनमें बताया गया है कि—"एयं तु जं पंचमंगलमहासुयक्खंधस्स वक्खाणं तं महया पबंधेण अणंतगयपज्जवेहि सुत्तस्स य पिथभूयाहिं णिज्जुत्तिभास चुण्णीहिं जहेव अणंतनाण-दंसणधरेहिं तित्थयरेहि वक्खाणियं तहेव समासओ वक्खाणिज्जं तं आसि। अहऽन्नया कालपरिहाणि दोसेणं ताओ णिज्जुत्ति-भास-चुण्णीओ वुच्छिन्नाओ। इओ य वच्चं तेण कालेण समएणं महिड्ढिपत्ते पयाणुसारी वइरसामी नाम दुवालसंगसुअहरे समुप्पन्ने। तेण य पंचमंगल-महासुयक्खंधस्स उद्धारो मूल सुत्तस्स मज्झे लिहिओ। मूलसुत्तं पुण सुत्तत्ताए गणहरेहि अत्थत्ताए अरिहंतेहिं भगवंतेहिं धम्मतित्थयरेहि तिलोगमहिएहिं वीरजिणिंदेहि पन्नविय त्ति एस वुड्ढसंपयाओ।"

अर्थात्—इस पञ्चमङ्गल महाश्रुतस्कन्धका व्याख्यान महान् प्रबन्धसे अनन्त गुण और पर्यायों सहित, सूत्रकी प्रियभूत निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों-द्वारा जैसा अनन्त ज्ञान-दर्शनके धारक तीर्थंकरोंने किया, उसी प्रकार सक्षेपमें व्याख्यान करने योग्य था। परन्तु आगे काल-परिहाणिके दोषसे वे निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियाँ विच्छिन्न हो गईं। फिर कुछ काल जाने पर यथा समय महाऋद्धिको प्राप्त पदानुसारी वइर स्वामी नामक द्वादशाग श्रुतज्ञानके धारक उत्पन्न हुए। उन्होंने पञ्चमङ्गल महाश्रुतस्कन्धका उद्धार मूल सूत्रके मध्य लिखा। यह मूलसूत्र सूत्रत्वकी अपेक्षा गणधरों-द्वारा तथा अर्थकी अपेक्षा अरिहन्त भगवान्, धर्मतीर्थंकर त्रिलोक-महित वीर जिनेन्द्रके द्वारा प्रज्ञापित है, ऐसा वृद्ध सम्प्रदाय है।

श्वेताम्बर आगमके उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें णमोकार मन्त्रके अर्थका विवेचन तीर्थंकरों-द्वारा तथा शब्दोंका विवेचन गणधरों-द्वारा किया गया माना गया है। इस कल्पकालके अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरने इस महामन्त्रके अर्थका निरूपण तथा गौतम स्वामीने शब्दोंका कथन किया है। कालदोषके कारण तीर्थंकर-द्वारा कथित व्याख्यानके विच्छिन्न हो जानेसे द्वादशाग ज्ञानके धारी श्री वइरस्वामीने इसका उद्धार किया। अतएव यह मन्त्र अनादि है, गुरु-परम्परासे अनादिकालसे प्रवाहरूपमें चला आ रहा है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि प्रत्येक कल्पकालमें इस मन्त्रका व्याख्यान एवं शब्दों-द्वारा प्रणयन अवश्य होता है।

जैसा कि आरम्भमें कहा गया है कि दिगम्बर परम्परा इस महामन्त्रको अनादि मानती है। जैसे वस्तुएँ अनादि हैं, उनका कोई कर्ता-धर्ता नहीं है, उसी प्रकार यह मन्त्र भी अनादि है, इसका भी कोई रचयिता नहीं है। मात्र व्याख्याता ही पाये जाते हैं। षट्खण्डागमके प्रथम खण्ड जीवट्ठाणके प्रारम्भमें यह मन्त्र मङ्गलाचरणरूपसे अंकित किया गया है।

धवला टीकाके रचयिता श्री वीरसेनाचार्यने टीकामें ग्रन्थ-रचनाके क्रमका निरूपण करते हुए कहा है—

मंगल-णिमित्त-हेऊ परिमाणं णाम तह य कत्तारं ।
वागरिय छ प्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरियो ॥

इदि णायमाइरिय-परंपरागयं मणेणावहारिय पुव्वाइरियायाराणुसरणं तिरयण हेउ त्ति पुप्फदंताइरियो मंगलादीणं छण्णं सकारणाणं परूवणट्ठं सुत्तमाह—"णमो अरिहंताणं" इत्यादि[1] ।

अर्थात्—मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम और कर्ता इन छः अधिकारोंका व्याख्यान करनेके पश्चात् शास्त्रका व्याख्यान आचार्य करते हैं। इस आचार्य-परम्पराको मनमें धारण करना तथा पूर्वाचार्योंकी व्यवहार परम्पराका अनुसरण करना रत्नत्रयका कारण है, ऐसा समझकर पुष्पदन्ताचार्य मङ्गलादि छहोंके सकारण प्ररूपणके लिए 'णमो अरिहंताणं' आदि मङ्गल-सूत्रको कहते हैं। श्री वीरसेनाचार्यने इस मंगलसूत्रको 'तालपलम्ब-सूत्रके समान देशामर्षक कहकर मंगल, निमित्त, हेतु आदि छहों अधिकारवाला सिद्ध किया है।

आगे चलकर वीरसेनाचार्यने मंगल शब्दकी व्युत्पत्ति एवं अनेक दृष्टियोंसे भेद-प्रभेदोंका निरूपण करते हुए मंगलके दो भेद बताये हैं—"तच्च मंगलं दुविहं णिबद्धमणिबद्धमिदि। तत्थ णिबद्धं णाम जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण णिबद्ध-देवदा-णमोक्कारो तं णिबद्ध-मंगलं। जो सुत्तस्सादीए सुत्तकत्तारेण कय-देवदा-णमोक्कारो तमणिबद्ध-मंगलं। इदं पुण जीवट्ठाणं णिबद्ध-मंगलं। यत्तो 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं' इदि एदस्स सुत्तस्सादीए णिबद्ध—'णमो अरिहंताणं' इच्चादि देवदा-णमोक्कार-दंसणादो[2]।"

---

1. धवला टीका प्र० पु० पृ० ७ ।
2. धवलाटीका प्रथम पु० पृ० ४१ ।

अर्थात्—मगल दो प्रकारका है—निबद्ध और अनिबद्ध। सूत्रके आदिमे सूत्रकर्ता-द्वारा जो देवता-नमस्कार ग्रन्थके द्वारा किया गया लिखा जाय अर्थात् पूर्व परम्परासे चले आये किसी मगलसूत्र या श्लोकको अथवा परम्परा-द्वारा निरूपित अर्थके आधारपर स्वरचित सूत्र या श्लोकको अकित करना निबद्ध मगल है। रचनाके आदिमे मनसा या वचसा यों ही सूत्र या मगल वाक्य बिना लिखे जो नमस्कार किया जाता है, वह अनिबद्ध कहलाता है। यहाँ 'जीवस्थान' नामक प्रथमखण्डागममे 'इमेसिं चोद्दसण्हं जीव-समासाणं' इत्यादि जीवस्थानके इस सूत्रके पहले 'णमो अरिहताणा' इत्यादि मगलसूत्र, जो देवता नमस्कार रूपमे विद्यमान है, परम्परा प्राप्त निबद्ध मगल है।

उपर्युक्त विवेचनका निष्कर्ष यह है कि वीरसेन स्वामीके मान्यतानुसार यह मगलसूत्र परम्परासे प्राप्त चला आ रहा है, पुष्पदन्तने इसे यहाँ अकित कर दिया है। इससे इस महामन्त्रका अनादित्व सिद्ध होता है।

अलकारचिन्तामणिमे निबद्ध और अनिबद्ध मगलकी परिभाषा निम्नप्रकार की गयी है। जिनसेनाचार्यने निबद्धका अर्थ लिखित और अनिबद्धका अर्थ अलिखित या अनकित नहीं लिया है। वह लिखते हैं—

स्वकाव्यमुखे स्वकृतं पद्यं निबद्धम्, परकृतमनिबद्धम्।

अर्थात्—स्वरचित मगल अपने ग्रन्थमे निबद्ध और अन्यरचित मगलसूत्रको अपने ग्रन्थमे लिखना अनिबद्ध कहा जाता है।

उक्त परिभाषाके आधारपर णमोकार मन्त्रको अनिबद्ध मगल कहा जायगा। क्योंकि आचार्य पुष्पदन्त इसके रचयिता नहीं है। उन्हें तो यह मन्त्र परम्परासे प्राप्त था, अतः उन्होंने इस मंगलवाक्यको ग्रन्थके आदिमे अकित कर दिया। इसी आशयको लेकर वीरसेन स्वामीने धवलाटीका (१।४१) मे इसे अनिबद्ध मगल कहा है।

वैशाली प्रतिष्ठानके निर्देशक श्री डा० हीरालालजीने वेदनाखण्डके 'णमो जिणाण' इस मंगलसूत्रकी धवलाटीकाके[1] आधारपर णमोकार मन्त्रके आदिकर्त्ता श्रीपुष्पदन्ताचार्यको सिद्ध करनेका प्रयास किया है किन्तु अन्य आर्ष ग्रन्थोंके साथ तथा जीवट्ठाणखण्डके मंगलसूत्रकी धवलाटीकाके साथ डाक्टर-साहबके मन्तव्यकी तुलना करनेपर प्रतीत होता है कि यह मन्त्र अनादि है। जैसे अग्निका उष्णत्व, जलका शीतत्व, वायुका स्पर्शवत्त्व, एवं आत्माका चेतनधर्म अनादि है, उसी प्रकार यह णमोकार मन्त्र अनादि है। अथवा अनादि जिनवाणीका अंग होनेसे यह मन्त्र अनादि है। महाबन्ध प्रथम भागकी प्रस्तावनामें बताया गया है कि "जिस प्रकार 'णमो जिणाण' आदि मंगलसूत्र भूतबलि-द्वारा संगृहीत है, ग्रथित नहीं है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्र रूपसे ख्यात अनादि मूलमन्त्र नामसे वन्दित 'णमो अरिहंताणं' आदि भी पुष्पदन्त आचार्य द्वारा संग्रहीत है, ग्रथित नहीं"। मोक्षमार्ग अनादि है, इस मार्गके उपदेशक और पथिक भी अनादि है, तीर्थंकर प्रभुओंकी परम्परा भी अनादि है। अतः यह अनादि मूलमन्त्र भगवान्की दिव्यध्वनिसे प्राप्त हुआ है। सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान्ने अपनी दिव्यध्वनिसे जिन तत्त्वोंका प्रकाशन किया, गणधरदेवने उन्हें द्वादशांग वाणीका रूप दिया। अतएव अनादि द्वादशांगवाणीका अंग होनेसे यह महामन्त्र अनादि है। इस महामन्त्रके सम्बन्धमें निम्न श्लोक प्रसिद्ध है।

अनादिमूलमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः॥

द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे यह मंगल सूत्र अनादि है और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा सादि है। इसी प्रकार यह नित्यानित्य रूप भी है।

---

१. धवलाटीका पुस्तक २ पृ० ३३–३६।
२. महाबन्ध प्रथम भाग प्रस्तावना पृ० ३०।

आगममें इस मन्त्रकी बड़ी भारी महिमा बतलायी गई है। यह सभी प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला है। आत्म-शोधनका हेतु होते हुए भी नित्य जाप करनेवालेके रोग, शोक, आधि, व्याधि आदि सभी बाधाएँ दूर हो जाती है। पवित्र, अपवित्र, रोगी, दुःखी, सुखी आदि किसी भी अवस्थामें इस मन्त्रका जप करनेसे समस्त पाप भस्म हो जाते हैं तथा बाह्य और अभ्यन्तर पवित्र हो जाता है। यह समस्त विघ्नोंको दूर करनेवाला तथा समस्त मंगलोंमें प्रथम मंगल है। किसी भी कार्यके आदिमें इसका स्मरण करनेसे वह कार्य निर्विघ्नतया पूर्ण हो जाता है। बताया गया है।

णमोकारमन्त्र का माहात्म्य

एसो पञ्चणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलम् ॥

इस गाथाकी व्याख्या करते हुए सिद्धचन्द्रगणिने लिखा है—"एप पञ्चनमस्कारः। एप—प्रत्यक्षविधीयमानः पञ्चानामर्हदादीनां नमस्कारः—प्रणाम.। स च कीदृशः? सर्वपापप्रणाशनः। सर्वाणि च तानि पापानि च सर्वपापानि इति कर्मधारय.। सर्वपापानां प्रकर्षेण नाशनो—विध्वंसक. सर्वपापप्रणाशनः, इति तत्पुरुष। सर्वेषां द्रव्यभावभेदभिन्नानां मङ्गलानां प्रथममिदमेव मङ्गलम्। च समुच्चये। पञ्चसु पदेषु चतुर्थ्यर्थेषु षष्ठी। अत्र चाष्टषष्टिरक्षराणि, नव पदानि, अष्टौ च सम्पदो—विश्राम-स्थानानि।

पुन. सर्वेषां मङ्गलानां—मङ्गलकारकवस्तूनां दधिदूर्वाऽक्षतचन्दन-नालिकेरपूर्णकलश-स्वस्तिक-दर्पण-भद्रासन-वर्धमान-मत्स्ययुगल-श्रीवत्स-नन्द्यावर्तादीनां मध्ये प्रथमं मुख्यं मङ्गलं मङ्गलकारको भवति। यतोऽस्मिन् पठिते जप्ते स्मृते च सर्वाण्यपि मङ्गलानि भवन्तीत्यर्थ.।"

अर्थात्—यह णमोकार मन्त्र, जिसमें पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है, सभी प्रकारके पापोंको नष्ट करनेवाला है। पापीसे पापी व्यक्ति

भी इस मन्त्रके स्मरणसे पवित्र हो जाता है तथा सभी प्रकारके पाप इस महामन्त्रके स्मरणसे नष्ट हो जाते है। यह दधि, दूर्वा, अक्षत, चन्दन, नारियल, पूर्णकलश, स्वस्तिक, दर्पण, भद्रासन, वर्धमान, मत्स्य-युगल, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त आदि मगल-वस्तुओमे सबसे उत्कृष्ट मङ्गल है। इसके स्मरण और जपसे अनेक प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अमगल दूर हो जाता है और पुण्यकी वृद्धि होती है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी वस्तुकी महिमा उसके गुणोके द्वारा व्यक्त होती है। इस महामन्त्रके गुण अचिन्त्य है। इसमे इस प्रकारकी विद्युत शक्ति वर्तमान है जिससे इसके उच्चारणमात्रसे पाप और अशुभका विध्वस हो जाता है तथा परम विभूति और कल्याणकी प्राप्ति होती है। इस महामन्त्रकी महिमा व्यक्त करनेवाली अनेक रचनाएँ है, इसमे णमोकारमन्त्र-माहात्म्य, नमस्कारकल्प, नमस्कारमाहात्म्य आदि प्रधान हैं। कहा जाता है कि जन्म, मरण, भय, पराभव, क्लेश, दु ख, दारिद्र्य आदि इस महामन्त्रके जापसे क्षण भरमे भस्म हो जाते है। इसकी अचिन्त्य महिमाका वर्णन णमोकारमन्त्र-माहात्म्यमे निम्न प्रकार बतलाया गया है—

> मन्त्र संसारसारं त्रिजगदनुपम सर्वपापारिमन्त्रं
> ससारोच्छेदमन्त्रं विषमविषहरं कर्मनिर्मूलमन्त्रम् ।
> मन्त्रं सिद्धिप्रदानं शिवसुखजननं केवलज्ञानमन्त्रं
> मन्त्रं श्रीजैनमन्त्रं जप जप जपितं जन्मनिर्वाणमन्त्रम् ॥१॥
>
> आकृष्टि सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां
> उच्चाट विपदां चतुर्गतिभुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।
> स्तम्भ दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं
> पायात्पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता ॥ २ ॥
>
> अपवित्र. पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा ।
> ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापै· प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

अपवित्र: पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचि ॥ ४ ॥

अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशन:।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥ ५ ॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ ६ ॥

अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर[1] ॥ ७ ॥

अर्थात्—यह महामन्त्र ससारका सार है—जन्म-मरण रूप ससारसे छूटनेका सुकर अवलम्बन और सारतत्त्व है, तीनो लोकोंमे अनुपम है—इस मन्त्रके समान चमत्कारी और प्रभावशाली अन्य कोई मन्त्र नहीं है, अतः यह तीनों लोकोमे अद्भुत है, समस्त पापोका अरि है—इस मन्त्रका जाप करनेसे किसी भी प्रकारका पाप नष्ट हुए बिना नहीं रहता है, जिस प्रकार अग्निका एक कण घास-फूसके बडे-बड़े ढेरोको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार यह मन्त्र सभी तरहके पापोंको नष्ट करनेवाला होनेके कारण पापारि है, यह मन्त्र ससारका उच्छेदक, व्यक्तिके भाव-ससार—राग-द्वेषादि और द्रव्य-ससार—ज्ञानावरणादि कर्मोंका विनाशक है, तीक्ष्ण विषोका नाश करनेवाला है अर्थात् इस महामन्त्रके प्रभावसे सभी प्रकारकी विष बाधाऐं दूर हो जाती है, यह मन्त्र कर्मोंका निर्मूलक—विनाश करनेवाला है,—इस मन्त्रका भाव सहित उच्चारण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है तथा योग निरोध पूर्वक इसका स्मरण करनेसे कर्मोंका विनाश होता है, यह मन्त्र सभी प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है—भावसहित और विधिसहित इस मन्त्रका अनुष्ठान करनेसे सभी तरहकी लौकिक और अलौकिक सिद्धियाँ

---

१. णमोकार-मन्त्र-माहात्म्य—'नित्य-नैमित्तिक-पाठावली' में प्रकाशित पृ० १-२।

प्राप्त हो जाती हैं, साधक जिस वस्तुकी कामना करता है, वह उसे प्राप्त हो जाती है, दुर्लभ और असम्भव कार्य भी इस महामन्त्रकी साधनासे पूर्ण हो जाते हैं, यह मन्त्र मोक्ष-सुखको उत्पन्न करनेवाला है, यह मन्त्र केवलज्ञानमन्त्र कहलाता है अर्थात् इसके जापसे केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है तथा यही मन्त्र निर्वाण-सुखका देनेवाला भी है।

यह णमोकार मन्त्र देवोंकी विभूति और सम्पत्तिको आकृष्ट कर देनेवाला है, मुक्ति-रूपी लक्ष्मीको वश करनेवाला है, चतुर्गतिमें होनेवाले सभी तरहके कष्ट और विपत्तियोंको दूर करनेवाला है, आत्माके समस्त पापको भस्म करनेवाला है, दुर्गतिको रोकनेवाला है, मोहका स्तम्भन करनेवाला है, विषयासक्तिको घटानेवाला है, आत्मश्रद्धाको जाग्रत करनेवाला है, और सभी प्रकारसे प्राणीकी रक्षा करनेवाला है।

पवित्र या अपवित्र अथवा सोते, जागते, चलते, फिरते किसी भी अवस्थामें इस णमोकार मन्त्रका स्मरण करनेसे आत्मा सर्व पापोंसे मुक्त हो जाता है, शरीर और मन पवित्र हो जाते हैं। यह सप्तधातुमय शरीर सर्वदा अपवित्र रहता है, इसकी पवित्रता णमोकार मन्त्रके स्मरणसे उत्पन्न निर्मल आत्मपरिणति-द्वारा होती है। अतः निस्सन्देह यह मन्त्र आत्माको पवित्र करनेवाला है। इसका स्मरण किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। यह णमोकार मन्त्र अपराजित है, अन्य किसी मन्त्र-द्वारा इसकी शक्ति प्रतिहत—अवरुद्ध नहीं की जा सकती है, इसमें अद्भुत सामर्थ्य निहित है। समस्त विघ्नोंको क्षणभरमें नष्ट करनेमें समर्थ है। इसके द्वारा भूत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, सर्प, सिंह, अग्नि आदिके विघ्नोंको क्षण भरमें ही दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार हलाहल विष तत्काल अपना फल देता और उसका फल अव्यर्थ होता है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्र भी तत्काल शुभ पुण्यका आस्रव करता है तथा अशुभोदयके प्रभावको क्षीण करता है। यह मन्त्र सम्पत्ति प्राप्ति करनेका एक प्रधान साधन है तथा

सम्यक्त्वकी वृद्धिमें सहायक होता है। मनुष्य जीवन भर पापास्रव करनेपर भी अन्तिम समयमें इस महामन्त्रके स्मरणके प्रभावसे स्वर्गादि सुखोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिए इस महामन्त्रका महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है—

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तुशतानि च।
अमुं मन्त्रं समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः॥
—ज्ञानार्णव

अर्थात्—तिर्यञ्च पशु-पक्षी, जो मांसाहारी, क्रूर हैं, जैसे सर्प, सिंहादि; जीवनमें सहस्रों प्रकारके पाप करते हैं। ये अनेक प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, मांसाहारी होते हैं तथा इनमें क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंकी तीव्रता होती है, फिर भी अन्तिम समयमें किसी दयालु द्वारा णमोकारमन्त्रका श्रवण करनेमात्रसे उस निन्द्य तिर्यञ्च पर्यायका त्यागकर स्वर्गमें देव गतिको प्राप्त होते हैं।

बताया गया है कि णमोकार मन्त्रके एक[1] अक्षरका भी भावसहित स्मरण करनेसे सात सागर तक भोगे जानेवाला पाप नष्ट हो जाता है, एक पदका भावसहित स्मरण करनेसे पचास सागर तक भोगे जानेवाले पापका नाश होता है और समग्रमन्त्रका भक्तिभाव सहित विधिपूर्वक स्मरण करनेसे पाँच सौ सागर तक भोगे जानेवाले पापका नाश हो जाता है। अभक्त प्राणी भी इस मन्त्रके स्मरणसे स्वर्गादिके सुखोंको प्राप्त करता है तथा भक्त प्राणी इस मन्त्रके जापके प्रभावसे अनेक परिणामोंको इतना निर्मल बना लेता है, जिससे उसके भव-भवान्तरके सञ्चित पाप नष्ट हो जाते

---

१ नवकार इक्कक्खरं पावं फेडेइ सत्त अयराणं।
पन्नासं च पएण सागर पणासया समग्गेणं॥१॥
जो गुणइ लक्खमेगं, पूएइ जिणनमुक्कारं।
तित्थयर नामगोअं, सो बंधइ नत्थि संदेहो॥२॥

हैं और वह इतना प्रबल पुण्यास्रव करता है, जिससे परम्परानिर्वाणकी प्राप्ति हो जाती है। सिद्धसेनने नमस्कार माहात्म्यमें बताया है—

योऽसंख्यदुःखक्षयकारणस्मृतिः य ऐहिकामुष्मिकसौख्यकामधुक्।
यो दुष्षमायामपि कल्पपादपो मन्त्राधिराजः स कथं न जप्यते॥

न यद्दीपेन सूर्येण चन्द्रेणाप्यपरेण वा।
तमस्तदपि निर्नाश स्यान्नमस्कारतेजसा॥

—न० मा० षष्ठ अ० श्लो० २३, २४

अर्थात्—भाव सहित स्मरण किया गया यह णमोकारमन्त्र असंख्य दुःखोंको क्षय करनेवाला तथा इह लौकिक और पारलौकिक समस्त सुखोंको देनेवाला है। इस पञ्चमकालमें कल्पवृक्षके समान सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला यह मन्त्र ही है, अतः संसारी प्राणियोंको इसका जप अवश्य करना चाहिए। जिस अज्ञान, पाप और संक्लेशके अन्धकारको सूर्य, चन्द्र और दीपक दूर नहीं कर सकते हैं, उस घने अन्धकारको यह मन्त्र नष्ट कर देता है।

इस मन्त्रके चिन्तन, स्मरण और मनन करनेसे भूत, प्रेत, ग्रहबाधा, राजभय, चोरभय, दुष्टभय, रोगभय आदि सभी कष्ट दूर हो जाते है। राग द्वेष जन्य अशान्ति भी इस मन्त्रके जापसे दूर होती है। यह इस पञ्चमकालमें कल्पवृक्ष, चिन्तामणिरत्न या कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाला है। जिस प्रकार समुद्रके मन्थनसे सारभूत अमृत एवं दधिके मन्थनसे सारभूत घृत उपलब्ध होता है, उसी प्रकार आगमका सारभूत यह णमोकार मन्त्र है। इसकी आराधनासे सभी प्रकारके कल्याण प्राप्त होते है। श्री, ह्री, धृति, कीर्त्ति, बुद्धि और लक्ष्मी आदिकी प्राप्ति इस मन्त्रके जपसे होती है। कर्मकी ग्रन्थिको खोलनेवाला यही मन्त्र है तथा भावपूर्वक नित्य जप करनेसे निर्वाण पदकी भी प्राप्ति होती है।

भगवान्की पूजा, स्वाध्याय, सयम, तप, दान और गुरुभक्तिके साथ प्रतिदिन इस णमोकार मन्त्रका तीनो सन्ध्याओंमें जो भक्तिभाव सहित

जाप करता है, वह इतना पुण्यास्रव करता है, जिससे चक्रवर्ती, अहमिन्द्र, इन्द्र आदिके पदोंको प्राप्त करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसा व्यक्ति अपने पुण्यातिशयके कारण तीर्थंकर भी बन सकता है। अपने सातिशय पुण्यके कारण वह तीर्थ-प्रवर्तक पदको प्राप्त हो जाता है। तथा जो व्यक्ति इस मन्त्रका आठ करोड़[1], आठ लाख, आठ हजार और आठ सौ आठ बार लगातार जाप करता है, वह शाश्वतपदको प्राप्त हो जाता है। लगातार सात लाख जप करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके कष्टोंसे मुक्ति प्राप्त करता है तथा दारिद्र भी उसका नष्ट हो जाता है। धूप देकर एक लाख बार जप करनेवाला भी अपनी अभीष्ट मनःकामनाको पूर्ण करता है। इस मन्त्रका अचिन्त्य प्रभाव है।

णमोकारमन्त्रके जाप करनेकी विधि

णमोकार मन्त्रका जाप करनेके लिए सर्वप्रथम आठ प्रकारकी शुद्धियोंका होना आवश्यक है। १—द्रव्यशुद्धि—पञ्चेन्द्रिय तथा मनको वशकर कषाय और परिग्रहका शक्तिके अनुसार त्यागकर कोमल और दयालुचित्त हो जाप करना। यहाँ द्रव्यशुद्धिका अभिप्राय पात्रकी अन्तरग शुद्धिसे है। जाप करनेवालेको यथाशक्ति अपने विकारोंको हटाकर ही जाप करना चाहिए। अन्तरगसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, माया आदि विकारोंको हटाना आवश्यक है। २—क्षेत्रशुद्धि—निराकुल स्थान, जहाँ हल्ला-गुल्ला न हो तथा डाँस, मच्छर आदि बाधक जन्तु न हों। चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले उपद्रव एव शीत, उष्णकी बाधा न हो, ऐसा एकान्त निर्जन स्थान जाप करनेके लिए उत्तम है। घरके किसी एकान्त प्रदेशमें, जहाँ अन्य किसी प्रकारकी बाधा न हो और पूर्णशान्ति रह सके, उस स्थान पर भी जाप किया जा सकता है। ३—समय शुद्धि—प्रातः, मध्याह्न और

---

१ अट्ठेव य अट्ठसया, अट्ठसहस्स अट्ठलक्ख अट्ठकोडीओ।
जो गुणइ भत्तिजुत्तो, सो पावइ सासयं ठाणं ॥२॥
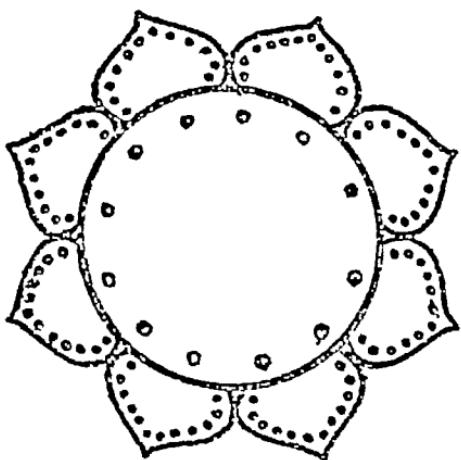
सन्ध्या समय कमसे कम ४५ मिनट तक लगातार इस महामन्त्रका जाप करना चाहिए। जाप करते समय निश्चिन्त रहना एवं निराकुल होना परम आवश्यक है। ४—आसनशुद्धि—काष्ठ, शिला, भूमि, चटाई या शीतलपट्टीपर पूर्वदिशा या उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके पद्मासन, खड्गासन या अर्ध पद्मासन होकर क्षेत्र तथा कालका प्रमाण करके मौनपूर्वक इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। ५—विनयशुद्धि—जिस आसनपर बैठकर जाप करना हो, उस आसनको सावधानीपूर्वक ईर्यापथ शुद्धिके साथ साफ करना चाहिए तथा जाप करनेके लिए नम्रतापूर्वक भीतरका अनुराग भी रहना आवश्यक है। जब तक जाप करनेके लिए भीतरका उत्साह नहीं होगा, तब तक सच्चे मनसे जाप नहीं किया जा सकता। ६—मनःशुद्धि—विचारोंकी गन्दगीका त्याग कर मनको एकाग्र करना, चंचल मन इधर-उधर न भटकने पाये इसकी चेष्टा करना, मनको पूर्णतया पवित्र बनानेका प्रयास करना ही इस शुद्धिमें अभिप्रेत है। ७—वचन शुद्धि—धीरे-धीरे साम्यभाव पूर्वक इस मन्त्रका शुद्ध जाप करना अर्थात् उच्चारण करनेमें अशुद्धि न होने पाये तथा उच्चारण मन-मनमें ही होना चाहिए। ८—कायशुद्धि—शौचादि शङ्काओंसे निवृत्त होकर यत्नाचार पूर्वक शरीर शुद्ध करके हलन-चलन क्रियासे रहित होकर जाप करना चाहिए। जापके समय शारीरिक शुद्धिका भी ध्यान रखना चाहिए।

इस महामन्त्रका जाप यदि खड़े होकर करना हो तो तीन तीन श्वासोच्छ्वासोंमें एक बार पढ़ना चाहिए। एक सौ आठ बारके जापमें कुल ३२४ श्वासोच्छ्वास—साँस लेना चाहिए।

जाप करनेकी तीन विधियाँ हैं—कमल जाप्य, हस्तांगुलि जाप्य और माला जाप्य।

कमल-जापविधि—अपने हृदयमें आठ पाखुड़ीके एक श्वेत कमलका विचार करे। उसकी प्रत्येक पाखुड़ीपर पीतवर्णके बारह-बारह बिन्दुओंकी कल्पना करे तथा मध्यके गोलवृत्त—कर्णिकामें बारह बिन्दुओंका चिन्तन

करे। इन १०८ बिन्दुओंमें प्रत्येक बिन्दुपर एक-एक मन्त्रका जाप करता हुआ १०८ बार इस मन्त्रका जाप करे। कमलकी आकृति निम्न प्रकार चिन्तनकी जायगी।

मन्त्र जाप का हेतु

प्रतिदिन व्यक्ति १०८ प्रकारके पाप करता है, अतः १०८ बार मन्त्रका जाप करनेसे उस पापका नाश होता है। आरभ, समारभ, सरभ, इन तीनोंको मन, वचन, कायसे गुणा किया तो ३ × ३ = ९ हुआ। इनको कृत, कारित, अनुमोदित और कषायोंसे गुणा किया तो ९ × ३ × ४ = १०८। बीचवाले गोलवृत्तमें १२ बिन्दु है और आठ दलोंमसे प्रत्येकमें बारह-बारह बिन्दु हैं। इन १२ × ८ = ९६, ९६ + १२ = १०८ बिन्दुओं पर १०८ बार यह मन्त्र पढा जाता है।

हस्ताङ्गुलिजाप—अपने हाथकी अगुलियों पर जाप करनेकी प्रक्रिया यह है कि मध्यमा-बीचकी अगुलिके बीच पोरुयेपर इस मन्त्रको पढे, फिर उसी अगुलिके ऊपरी पोरुयेपर, फिर तर्जनी—अंगूठेके पासवाली अगुलिके ऊपरी पोरुवे पर मन्त्र जाप करे। फिर उसी अगुलिके बीचके पोरुवे पर मन्त्र पढे, फिर नीचेके पोरुवे पर जाप करे। अनन्तर बीचकी अगुलिके निचले पोरुवेपर मन्त्र पढे, फिर अनामिका—सबसे छोटी अगुलिके पास-वाली अगुलिके निचले पोरुवे पर, फिर बीच तथा ऊपरके पोरुयेपर क्रमसे जाप करे। इसी प्रकार पुनः बीचकी अंगुलिके बीचके पोरुवेसे जाप प्रारम्भ करे। इस प्रकार नौ नौ बार मन्त्र जपता रहे, इस तरह १२ बार जपनेसे १०८ बारमें पूरा एक जाप होता है।

मालाजाप—एक सौ आठ दानेकी माला-द्वारा जाप करे।

इन तीनों जापकी विधियोंमें उत्तम कमल-जाप-विधि है। इसमें उपयोग अधिक स्थिर रहता है। तथा कर्म-बन्धनको क्षीण करनेके लिए यही जाप विधि अधिक सहायक है। सरल विधि माला-जाप है। इसमें किसी भी तरहका झंझट झगडा नहीं है। सीधे माला लेकर जाप कर लेना है। जाप करनेके पश्चात् भगवानका दर्शन करना चाहिए। बताया गया है—

ततः समुत्थाय जिनेन्द्रबिम्बं पश्येत्परं मङ्गलदानदक्षम्।
पापप्रणाशं परपुण्यहेतुं सुरासुरैः सेवितपादपद्मम्॥

अर्थात्—प्रात कालकी जापके पश्चात् चैत्यालयमें जाकर सब तरहके मंगल करनेवाले, पापोंको क्षय करनेवाले, सातिशय पुण्यके कारण एवं सुरासुरों-द्वारा वन्दनीय श्रीजिनेन्द्र भगवान्के दर्शन करना चाहिए।

इस णमोकार मन्त्रका जाप विभिन्न प्रकारकी इष्टसिद्धियों और अरिष्ट विनाशनोंके लिए अनेक प्रकारसे किया जाता है। किस कार्यके लिए किस प्रकार जाप किया जायगा, इसका आगे निरूपण किया जायगा। जापका फल बहुत कुछ विधिपर निर्भर है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचनके अनन्तर यह णमोकारमन्त्र जिनागमका सार कहा गया है। यह समस्त द्वादशांगरूप बतलाया गया है। अतः इस कथनकी सार्थकता सिद्ध की जाती है।

द्वादशांगरूप णमोकारमन्त्र

आचार्योंने द्वादशांग जिनवाणीका वर्णन करते हुए प्रत्येककी पद संख्या तथा समस्त श्रुतज्ञानके अक्षरोंकी संख्याका वर्णन किया है। इस महामन्त्रमें समस्त श्रुतज्ञान विद्यमान है। क्योंकि पञ्चपरमेष्ठीके अतिरिक्त अन्य श्रुतज्ञान कुछ नहीं है। अतः यह महामन्त्र समस्त द्वादशांग जिनवाणी रूप है। इस महामन्त्रका विश्लेषण करनेपर निम्न निष्कर्ष सामने आते हैं—

इस मन्त्रमें ३५ अक्षर हैं। ५ पद हैं। णमो अरिहंताणं=७ अक्षर, णमो सिद्धाणं=५, णमो आइरियाणं=७, णमो उवज्झायाणं=७, णमो

लोए सव्व-साहूण=९ अक्षर, इस प्रकार इस मन्त्रमे कुल ३५ अक्षर हैं। स्वर और व्यञ्जनोंका विश्लेषण करनेपर प्रतीत होता है कि 'णमो अरिहंताण=६ व्यञ्जन, णमो सिद्धाण=५ व्यञ्जन, णमो आइरियाण=५ व्यञ्जन, णमो उवज्झायाण=६ व्यञ्जन, णमो लोए सव्व-साहूण=८, इस प्रकार इस मन्त्रमे कुल ६+५+५+६+८=३० व्यञ्जन हैं। स्वर निम्न प्रकार है—

इस मन्त्रमे सभी वर्ण अजन्त है, यहाँ हलन्त एक भी वर्ण नहीं है। अतः ३५ अक्षरोंमें ३५ स्वर मानने चाहिए। पर वास्तविकता यह है कि ३५ अक्षरोंके होनेपर भी यहाँ स्वर ३४ हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि 'णमो अरिहताण' इस पदमें ६ ही स्वर माने जाते हैं। मन्त्रशास्त्रके व्याकरणके अनुसार 'णमो अरिहताण' पदके 'अ' का लोप हो जाता है। यद्यपि प्राकृत मे "एङ"—नेत्यनुवर्तते। एङित्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः सन्धिः प्राकृते तु न भवति। यथा दवो अहिणदणो, अहो अच्चरिअं, इत्यादि।[1] सूत्रके अनुसार सन्धि न होनेके कारण 'अ' का अस्तित्व ज्यों का-त्यों रहता है, अ का लोप या खण्डाकार नहीं होता है, किन्तु मन्त्रशास्त्रमे 'बहुलम्' सूत्रकी प्रवृत्ति मानकर 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य'[2] इस सूत्रके अनुसार 'अरिहताण' वाले पदके 'अ'का लोप विकल्पसे हो जाता है, अतः इस पदमे छः ही स्वर माने जाते हैं। इस प्रकार कुल मन्त्रमे ३५ अक्षर होनेपर भी ३४ ही स्वर रहते हैं। कुल स्वर और व्यञ्जनोंकी सख्या ३४+३०=६४ है। मूल वर्णोंकी सख्या भी ६४ ही है। प्राकृत भाषाके नियमानुसार अ, इ, उ और ए ये मूल स्वर तथा ज झ ण त द ध य र ल व स और ह ये मूल व्यञ्जन इस मन्त्रमे निहित हैं। अतएव ६४ अनादि

---

१. त्रिविक्रमदेवका प्राकृत व्याकरण पृ० ४ सूत्र सख्या २१।

२. जैनसिद्धान्तकौमुदी पृ० ४, सूत्र संख्या १।२।२।

निधन मूल वर्णोंको लेकर समस्त श्रुतज्ञानके अक्षरोका प्रमाण निम्नप्रकार निकाला जा सकता है। गाथा सूत्र निम्न प्रकार है—

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाउण संगुणं किच्चा।
सऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति॥

अर्थ—उक्त चौसठ अक्षरोका विरलन करके प्रत्येक ऊपर दो का अङ्क देकर परस्पर सम्पूर्ण दोके अकोंका गुणा करनेसे लब्धराशिमे एक घटा देनेसे जो प्रमाण रहता है, उतने ही श्रुतज्ञानके अक्षर होते है।

यहाँ ६४ अक्षरोका विरलन कर रखा तो—

२ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ .... २
१। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १। १ .... १। =
१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६—१ =१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ समस्त श्रुतज्ञानके अक्षर। इन अक्षरोका प्रमाण गाथामें निम्न प्रकार कहा गया है—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्क छक्केक्कगो य पणयं च॥

अर्थात्—एक आठ चार चार छह सात चार चार शून्य सात तीन सात शून्य नव पच पच एक छह एक पाँच समस्त श्रुतज्ञानके अक्षर हैं।

इस प्रकार णमोकारमन्त्रमें समस्त श्रुतज्ञानके अक्षर निहित हैं। क्योंकि अनादि निधन मूलाक्षरो परसे ही उक्त प्रमाण निकाला गया है। अतः संक्षेपमे समस्त जिनवाणीरूप यह मन्त्र है। इसका पाठ या स्मरण करनेसे कितना महान् पुण्यका बन्ध होता है। तथा केवल-ज्ञानलक्ष्मीकी प्राप्ति भी इस मन्त्रकी आराधनासे होती है। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्राचार्यने इस मन्त्रकी आराधनाका फल बतलाते हुए लिखा है—

श्रियमात्यन्तिकीं प्राप्ता योगिनो येऽत्र केचन।
अमुमेव महामन्त्रं ते समाराध्य केवलम्॥

प्रभावमस्य निःशेषं योगिनामप्यगोचरम् ।
अनभिज्ञो जनो ब्रूते यः स मन्येऽनिलार्दितः ॥
अनेनैव विशुद्ध्यन्ति जन्तवः पापपङ्किताः ।
अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिणः ॥

अर्थात्—इस लोकमें जितने भी योगियोंने आत्यन्तिकी लक्ष्मी—मोक्ष-लक्ष्मीको प्राप्त किया है, उन सबोंने श्रुतज्ञानभूत इस महामन्त्रकी आराधना करके ही। समस्त जिनवाणीरूप इस महामन्त्रकी महिमा एवं इसका तत्काल होनेवाला अमिट प्रभाव योगी मुनीश्वरोंके भी अगोचर है। वे इसके वास्तविक प्रभावका निरूपण करनेमें असमर्थ हैं। जो साधारण व्यक्ति इस श्रुतज्ञानरूप मन्त्रका प्रभाव कहना चाहता है, वह वायुवश प्रलाप करनेवाला ही माना जायगा। इस णमोकारमन्त्रका प्रभाव केवली ही जाननेमें समर्थ हैं। जो प्राणी पापसे मलिन हैं, वे इसी मन्त्रसे विशुद्ध होते हैं और इसी मन्त्रके प्रभावसे मनीषीगण संसारके क्लेशोंसे छूटते हैं।

स्वाध्याय और ध्यानका जितना सम्बन्ध आत्मशोधनके साथ है, उतना ही इस मन्त्रका भी सम्बन्ध आत्मकल्याणके साथ है। इस मन्त्रका १०८ बार जाप करनेसे द्वादशांग जिनवाणीके स्वाध्यायका पुण्य होता है तथा मन एकाग्र होता है। इस मन्त्रके प्रति अटूट श्रद्धा या विश्वास होनेसे ही यह मन्त्र कार्यकारी होता है। द्वादशांग जिनवाणीका इतना सरल, सुसंस्कृत एवं सच्चा रूप कहीं नहीं मिल सकता है। ज्ञानरूप आत्माको इसका अनुभव होते ही श्रुतज्ञानकी प्राप्ति होती है। ज्ञानावरणीय कर्मकी निर्जरा या क्षयोपशम रूप शक्ति इस मन्त्रके उच्चारणसे आती है तथा आत्मामें महान् प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। अतएव यह महामन्त्र समस्त श्रुतज्ञान-रूप है, इसमें जिनवाणीका समस्त रूप निहित है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे यह विचारणीय प्रश्न है कि णमोकार मन्त्रका मन पर क्या प्रभाव पड़ता है? आत्मिक शक्तिका विकास किस प्रकार होता है, जिससे इस मन्त्रको समस्त कार्योंमें सिद्धि देनेवाला कहा गया

है। मनोविज्ञान मानता है कि मानवकी दृश्य क्रियाएँ उसके चेतन मनमें और अदृश्य क्रियाएँ अचेतन मनमे होती हैं। मनकी इन दोनों क्रियाओंको मनोवृत्ति कहा जाता है। यों तो साधारणतः मनोवृत्ति शब्द चेतन मनकी क्रियाके बोधके लिए प्रयुक्त होता है। प्रत्येक मनोवृत्तिके तीन पहलू हैं—ज्ञानात्मक, वेदनात्मक और क्रियात्मक। मनोवृत्तिके ये तीनों पहलू एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते हैं। मनुष्यको जो कुछ ज्ञान होता है, उसके साथ-साथ वेदना और क्रियात्मक भावकी भी अनुभूति होती है। ज्ञानात्मक मनोवृत्तिके सवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना और विचार ये पाँच भेद हैं। सवेदनात्मकके सवेग, उमग, स्थायीभाव और भावना ग्रन्थि ये चार भेद एव क्रियात्मक मनोवृत्तिके सहज क्रिया, मूलवृत्ति, आदत, इच्छित क्रिया और चरित्र ये पाँच भेद किये गये हैं। णमोकारमन्त्रके स्मरणसे ज्ञानात्मक मनोवृत्ति उत्तेजित होती है, जिससे उससे अभिन्नरूपमे सम्बद्ध रहनेवाली उमग वेदनात्मक अनुभूति और चरित्र नामक क्रियात्मक अनुभूतिको उत्तेजना मिलती है। अभिप्राय यह है कि मानव मस्तिष्कमें ज्ञानवाही और क्रियावाही ये दो प्रकारकी नाड़ियाँ होती है। इन दोनों नाड़ियोंका आपसमें सम्बन्ध होता है, परन्तु इन दोनोंके केन्द्र पृथक् है। ज्ञानवाही नाड़ियाँ और मस्तिष्कके ज्ञानकेन्द्र मानवके ज्ञानविकासमें एवं क्रियावाही नाड़ियाँ और मानव मस्तिष्कके क्रियाकेन्द्र उसके चरित्रके विकासकी वृद्धिके लिए कार्य करते हैं। क्रियाकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्रका घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण णमोकार मन्त्रकी आराधना, स्मरण और चिन्तनसे ज्ञानकेन्द्र और क्रियाकेन्द्रोंका समन्वय होनेसे मानव मन सुदृढ होता है और आत्मिक विकासकी प्रेरणा मिलती है।

मनोविज्ञान और णमोकार मन्त्र

नियन्त्रण करता है। जिस मनुष्यके स्थायीभाव सुनियन्त्रित नहीं अथवा जिसके मनमें उच्चादर्शोंके प्रतिश्रद्धास्पद स्थायीभाव नहीं है, उसका व्यक्तित्व सुगठित तथा उसका चरित्र सुन्दर नहीं हो सकता है। दृढ और सुन्दर चरित्र बनानेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्यके मनमें उच्चादर्शोंके प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव हों तथा उसके अन्य स्थायीभाव उसी स्थायी-भावके द्वारा नियन्त्रित हों। स्थायीभाव ही मानवके अनेक प्रकारके विचारोंके जनक होते हैं। इन्हींके द्वारा मानवकी समस्त क्रियाओंका सचालन होता है। उच्च आदर्श जन्य स्थायीभाव और विवेक इन दोनोंमें घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी-कभी विवेकको छोड़कर स्थायी भावोंके अनुसार ही जीवन-क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। जैसे विवेकके मना करने पर भी श्रद्धावश धार्मिक प्राचीन कृत्योंमें प्रवृत्तिका होना तथा किसीसे झगड़ा हो जाने पर उसकी झूठी निन्दा सुननेकी प्रवृत्तिका होना। इन कृत्योंमें विवेक साथ नहीं है, केवल स्थायी भाव ही कार्य कर रहा है। विवेक मानवकी क्रियाओंको रोक या मोड़ सकता है, उसमें स्वय क्रियाओंके सचालनकी शक्ति नहीं है। अतएव आचरणको परिमार्जित और विकसित करनेके लिए केवल विवेक प्राप्त करना ही आवश्यक नहीं है, बल्कि आवश्यक है उसके स्थायी भावको योग्य और दृढ बनाना।

व्यक्तिके मनमें जब तक किसी सुन्दर आदर्शके प्रति या किसी महान् व्यक्तिके प्रति श्रद्धा और प्रेमके स्थायीभाव नहीं, तब तक दुराचारसे हटकर सदाचारमें उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। ज्ञानकी मात्र जानकारीसे दुराचार नही रोका जा सकता है, इसके लिए उच्च आदर्शके प्रति श्रद्धा भावनाका होना अनिवार्य है। णमोकार मन्त्र ऐसा पवित्र उच्च आदर्श है, जिससे सुदृढ स्थायीभावकी उत्पत्ति होती है। यतः णमोकारमन्त्रका मन पर जब बार-बार प्रभाव पड़ेगा अर्थात् अधिक समय तक इस महामन्त्रकी भावना जब मनमें बनी रहेगी तब स्थायी भावोंमें परिष्कार हो ही जायगा और ये ही नियन्त्रित स्थायीभाव मानवके चरित्रके विकासमें सहायक होंगे।

इस महामन्त्रके मनन, स्मरण, चिन्तन और ध्यानसे अर्जित भावों-स्थायीरूपसे स्थित कुछ संस्कारसे, जिनमें अधिकांश संस्कार विषय-स्वाद सम्बन्धी ही होते हैं, में परिवर्तन होता है। मंगलमय आत्माओंके स्मरणसे मन पवित्र होता है और पुरातन प्रवृत्तियोंमें शोधन होता है, जिससे सदाचार व्यक्तिके जीवनमें आता है। उच्च आदर्शसे उत्पन्न स्थायीभावके अभावमें ही व्यक्ति दुराचारकी ओर प्रवृत्त होता है। अतएव मनोविज्ञान स्पष्ट रूपसे कहता है कि मानसिक-उद्वेग, वासना एवं मानसिक विकार उच्च आदर्शके प्रति श्रद्धाके अभावमें दूर नहीं किये जा सकते हैं। विकारोंको आधीन करनेकी प्रक्रियाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि परिणाम-नियम, अभ्यास-नियम और तत्परता-नियमके द्वारा उच्चादर्शको प्राप्त कर विवेक और आचरणको दृढ़ करनेसे ही मानसिक विकार और सहज पाशविक प्रवृत्तियाँ दूर की जा सकती हैं।

णमोकार मन्त्रके परिणाम नियमका अर्थ यहाँपर यह है कि इस मन्त्रकी आराधना कर व्यक्ति जीवनमें सन्तोषकी भावनाको जाग्रत करे तथा सकल सुखोंका केन्द्र इसीको समझे। अभ्यास नियमका तात्पर्य है कि इस मन्त्रका मनन, चिन्तन और स्मरण निरन्तर करता जाय। यह सिद्धान्त है कि जिस योग्यताको अपने भीतर प्रकट करना हो, उस योग्यताका बारम्बार चिन्तन, स्मरण किया जाय। प्रत्येक व्यक्तिका चरम लक्ष्य ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप शुद्ध आत्मशक्तिको प्राप्त करना है; यह शुद्ध अमूर्त्तिक रत्नत्रयस्वरूप, सच्चिदानन्द आत्मा ही प्राप्त करने योग्य है, अतएव रत्नत्रयस्वरूप पञ्चपरमेष्ठी वाचक णमोकार महामन्त्रका अभ्यास करना परम आवश्यक है। इस मन्त्रके अभ्यास-द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूपमें तत्परताके साथ प्रवृत्ति करना जीवनमें तत्परता नियमको उतारना है। मनुष्यमें अनुकरणकी प्रधान प्रवृत्ति पायी जाती है, इसी प्रवृत्तिके कारण पञ्चपरमेष्ठीका आदर्श सामने रखकर उनके अनुकरणसे व्यक्ति अपना विकास कर सकता है।

मनोविज्ञान मानता है कि मनुष्यमें भोजन ढूँढना, भागना, लड़ना,

उत्सुकता, रचना, संग्रह, विकर्षण, शरणागत होना, काम प्रवृत्ति, शिशुरक्षा, दूसरोंकी चाह, आत्म-प्रकाशन, विनीतता और हँसना ये चौदह मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इन मूल प्रवृत्तियोका अस्तित्व ससारके सभी प्राणियोंमे पाया जाता है, पर मनुष्यकी मूल प्रवृत्तियोमे यह विशेषता है कि मनुष्य इनमे समुचित परिवर्तन कर लेता है। केवल मूलप्रवृत्तियो-द्वारा सचालित जीवन असभ्य और पाशविक कहलायेगा। अतः मूलप्रवृत्तियोंमें Repression दमन Inhibition विलियन Reduection मार्गान्तरी करण और Sublimation शोधन ये चार परिवर्तन होते रहते हैं।

प्रत्येक मूलप्रवृत्तिका बल उसके बराबर प्रकाशित होनेसे बढता है। यदि किसी मूलप्रवृत्तिके प्रकाशनपर कोई नियन्त्रण नहीं रखा जाता है, तो वह मनुष्यके किए लाभकारी न बनकर हानिप्रद हो जाती है। अतः दमनकी क्रिया होनी चाहिए। उदाहरणार्थ यों कहा जा सकता है कि संग्रहकी प्रवृत्ति यदि सयमित रूपमे रहे तो उससे मनुष्यके जीवनकी रक्षा होती है, किन्तु जब यह अधिक बढ जाती है तो कृपणता और चोरीका रूप धारण कर लेती है, इसी प्रकार द्वन्द्व या युद्धकी प्रवृत्ति प्राण-रक्षाके लिए उपयोगी है, किन्तु जब यह अधिक बढ जाती है तो यह मनुष्यकी रक्षा न कर उसके विनाशका करण बन जाती है। इसी प्रकार अन्य मूलप्रवृत्तियोंके सम्बन्धमे भी कहा जा सकता है। अतएव जीवनको उपयोगी बनानेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य समय-समयपर अपनी प्रवृत्तियोका दमन करे और उन्हें अपने नियन्त्रणमे रखे। व्यक्तित्वके विकासके लिए मूल प्रवृत्तियोका दमन उतना ही आवश्यक है, जितना उनका प्रकाशन।

मूल प्रवृत्तियोंका दमन विचार या विवेक-द्वारा होता है। किसी बाह्य सत्ता-द्वारा किया गया दमन मानव जीवनके विकासके लिए हानिकारक होता है। अतः बचपनसे ही णमोकार मन्त्रके आदर्श-द्वारा मानवकी मूल-प्रवृत्तियोंका दमन सरल और स्वाभाविक है। इस मन्त्रका आदर्श हृदयमे श्रद्धा और दृढ़ विश्वासको उत्पन्न करता है, जिससे मूलप्रवृत्तियोका दमन

करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। णमोकार मन्त्रके उच्चारण, स्मरण, चिन्तन, मनन और ध्यान-द्वारा मनपर इस प्रकारके संस्कार पड़ते हैं, जिससे जीवनमें श्रद्धा और विवेकका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। क्योंकि मनुष्यका जीवन श्रद्धा और सद्विचारोंपर ही अवलम्बित है, श्रद्धा और विवेकको छोड़कर मनुष्य मनुष्यकी तरह जीवित नहीं रह सकता है अतः जीवनकी मूलप्रवृत्तियोंका दमन या नियन्त्रण करनेके लिए महामङ्गल वाक्य णमोकार मन्त्रका स्मरण परम आवश्यक है। इस प्रकारके धार्मिक वाक्योंके चिन्तनसे मूलप्रवृत्तियाँ नियन्त्रित हो जाती हैं तथा जन्मजात स्वभावमें परिवर्तन हो जाता है। अतः नियन्त्रणकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे आती है। ज्ञानार्णवमें आचार्य शुभचन्द्रने बतलाया है कि महामङ्गल वाक्यों की विद्युत्शक्ति आत्मामें इस प्रकारका झटका देती है, जिससे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह जन्य वासनाएँ सहजमें परिष्कृत हो जाती हैं। जीवनके धरातलको उन्नत बनाने के लिए इस प्रकारके मङ्गल-वाक्योंको जीवनमें उतारना परम आवश्यक है। अतएव जीवनकी मूलप्रवृत्तियोंके परिष्कारके लिए दमन क्रियाको प्रयोगमें लाना आवश्यक है।

मूलप्रवृत्तियोंके परिवर्तनका दूसरा उपाय विलयन है। यह दो प्रकारसे हो सकता है—निरोध-द्वारा और विरोध-द्वारा। निरोधका तात्पर्य है कि प्रवृत्तियोंको उत्तेजित होनेका ही अवसर न देना। इससे मूलप्रवृत्तियाँ कुछ समयमें नष्ट हो जाती हैं। विलियम जेम्सका कथन है कि यदि किसी प्रवृत्तिको अधिक कालतक प्रकाशित होनेका अवसर न मिले तो वह नष्ट हो जाती है। अतः धार्मिक आस्था-द्वारा व्यक्ति अपनी निम्न प्रवृत्तियोंको अवरुद्धकर उन्हें नष्ट कर सकता है। दूसरा उपाय जो कि विरोध-द्वारा प्रवृत्तियोंके विलयनके लिए कहा गया है, उसका अर्थ यह है कि जिस समय एक प्रवृत्ति कार्य कर रही हो, उसी समय उसके विपरीत दूसरी प्रवृत्तिको उत्तेजित होने देना। ऐसा करनेसे—दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियोंके एक साथ उभड़नेसे दोनोंका बल घट जाता है। इस तरह दोनोंके प्रभावकी

रीतिमे अन्तर हो जाता है अथवा दोनो शान्त हों जाती है। जैसे द्वन्द-प्रवृत्तिके उभडनेपर यदि सहानुभूतिकी प्रवृत्ति उभाड़ दी जाय तो उक्त प्रवृत्तिका विलयन सरलतासे हो जाता है। णमोकार मन्त्रका स्मरण इस दिशामे भी सहायक सिद्ध होता है। इस शुभ-प्रवृत्तिके उत्पन्न होनेसे अन्य प्रवृत्तियाँ सहजमे विलीन की जा सकती है।

मूल प्रवृत्तिके परिवर्तनका तीसरा उपाय मार्गान्तरीकरण है। यह उपाय दमन और विलयनके उपायसे श्रेष्ठ है। मूलप्रवृत्तिके दमनसे मानसिक शक्ति संचित होती है, जब तक इस सञ्चित शक्तिका उपयोग नहीं किया जाय, तब तक यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। णमोकार मन्त्रका स्मरण इस प्रकारका अमोघ अस्त्र है, जिसके द्वारा बचपनसे ही व्यक्ति अपनी मूल प्रवृत्तियोका मार्गान्तरीकरण कर सकता है। चिन्तन करनेकी प्रवृत्ति मनुष्यमें पायी जाती है, यदि मनुष्य इस चिन्तनकी प्रवृत्तिमे विकारी भावनाओंको स्थान नहीं दे और इस प्रकारके मगलवाक्योका ही चिन्तन करे तो चिन्तन-प्रवृत्तिका यह सुन्दर मार्गान्तरीकरण है। यह सत्य है कि मनुष्यका मस्तिष्क निरर्थक नहीं रह सकता है, उसमें किनी-न-किसी प्रकारके विचार अवश्य आवेंगे। अतः चरित्र भ्रष्ट करनेवाले विचारोंके स्थानपर चरित्र-वर्द्धक विचारोंको स्थान दिया जाय तो मस्तिष्ककी क्रिया भी चलती रहेगी तथा शुभ प्रभाव भी पड़ता जायगा। ज्ञानार्णवमें शुभचन्द्राचार्यने बतलाया है—

अपास्य कल्पनाजाल चिदानन्दमये स्वयम्।
यः स्वरूपे लयं प्राप्तः स स्याद्रत्नत्रयास्पदम्॥
नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम्।
पश्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम्॥

अर्थात्—समस्त कल्पनाजालको दूर करके अपने चैतन्य और आनन्द-मय स्वरूपमें लीन होना, निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्तिका स्थान है। जो इस विचारमे लीन रहता है कि मैं नित्य आनन्दमय हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ, सनातन हूँ, परमज्योति ज्ञानप्रकाशरूप हूँ, अद्वितीय हूँ, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य

सहित हूँ, वह व्यक्ति व्यर्थके विचारोंसे अपनी रक्षा करता है, पवित्र विचार या ध्यानमें अपनेको लीन रखता है। यह मार्गान्तरीकरणका सुन्दर प्रयोग है।

मूल प्रवृत्तियोंके परिवर्तनका चौथा उपाय शोध है। जो प्रवृत्ति अपने अपरिवर्तित रूपमें निन्दनीय कर्मोंमें प्रकाशित होती है, वह शोधितरूपमें प्रकाशित होनेपर श्लाघनीय हो जाती है। वास्तवमें मूल प्रवृत्तिका शोध उसका एक प्रकारसे मार्गान्तरीकरण है। किसी मन्त्र या मंगलवाक्यका चिन्तन आर्त्त और रौद्र ध्यानसे हटाकर धर्मध्यानमें स्थित करता है अतः धर्मध्यानके प्रधान कारण णमोकारमन्त्रके स्मरण और चिन्तनकी परम आवश्यकता है।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक विश्लेषणका अभिप्राय यह है कि णमोकारमन्त्रके द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने मनको प्रभावित कर सकता है। यह मन्त्र मनुष्यके चेतन, अवचेतन और अचेतन तीनों प्रकारके मनोंको प्रभावित कर अचेतन और अवचेतनपर सुन्दर स्थायीभावका ऐसा संस्कार डालता है, जिससे मूल प्रवृत्तियोंका परिष्कार हो जाता है और अचेतन मनमें वासनाओंको अर्जित होनेका अवसर नहीं मिल पाता। इस मन्त्रकी आराधनामें ऐसी विद्युत्शक्ति है, जिससे इसके स्मरणसे व्यक्तिका अन्तर्द्वन्द्व शान्त हो जाता है, नैतिक भावनाओंका उदय होता है, जिससे अनैतिक वासनाओंका दमन होकर नैतिक संस्कार उत्पन्न होते हैं। आभ्यन्तरमें उत्पन्न विद्युत् बाहर और भीतरमें इतना प्रकाश उत्पन्न करती है, जिससे वासनात्मक संस्कार भस्म हो जाते हैं और ज्ञानका प्रकाश व्याप्त हो जाता है। इस मन्त्रके निरन्तर उच्चारण, स्मरण और चिन्तनसे आत्मामें एक प्रकारकी शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे आज की भाषामें विद्युत् कह सकते हैं, इस शक्ति-द्वारा आत्माका शोधन-कार्य तो किया ही जाता है, साथ ही इससे अन्य आश्चर्यजनक कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं।

मनके साथ जिन ध्वनियोंका घर्षण होने से दिव्य ज्योति प्रकट होती है

उन ध्वनियोंके समुदायको मन्त्र कहा जाता है। मन्त्र और विज्ञान दोनोंमें अन्तर है, क्योंकि विज्ञानका प्रयोग जहाँ भी किया जाता है, फल एक ही होता है। परन्तु मन्त्रमें यह बात नहीं है, उसकी सफलता साधक और साध्यके ऊपर निर्भर है, ध्यानके अस्थिर होने से भी मन्त्र असफल हो जाता है। मन्त्र तभी सफल होता है, जब श्रद्धा, इच्छा और दृढ संकल्प ये तीनों ही यथावत् कार्य करते हों। मनोविज्ञानका सिद्धान्त है कि मनुष्यकी अवचेतनामें बहुत-सी आध्यात्मिक शक्तियाँ भरी रहती हैं, इन्हीं शक्तियोंको मन्त्र-द्वारा प्रयोगमें लाया जाता है। मन्त्रकी ध्वनियोंके संघर्ष-द्वारा आध्यात्मिक शक्तिको उत्तेजित किया जाता है। इस कार्यमें अकेली विचारशक्ति ही काम नहीं करती है, इसको सहायताके लिए उत्कट इच्छा-शक्तिके द्वारा ध्वनि-संचालनकी भी आवश्यकता है। मन्त्र-शक्तिके प्रयोगकी सफलताके लिए मानसिक योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है, जिसके लिए नैष्ठिक आचारकी आवश्यकता है। मन्त्रनिर्माणके लिए ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ह्रा ह सः क्ष्लीं क्लूँ द्रां द्रीं द्रं द्रः श्रीं क्षीं क्ष्वीं क्ष्रीं र्हं श्रं फट्, वषट्, संवौषट्, घे घै यः ठः खः ह्रूं ल्व्र्यूं पं वं यं झं तं थं दं आदि बीजाक्षरोंकी आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्तिको ये बीजाक्षर निरर्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु हैं ये सार्थक और इनमें ऐसी शक्ति अन्तर्निहित रहती है, जिसमें आत्मशक्ति या देवताओंको उत्तेजित किया जा सकता है। अतः ये बीजाक्षर अन्तःकरण और वृत्तिकी शुद्ध प्रेरणाके व्यक्त शब्द हैं, जिनसे आत्मिक शक्तिका विकास किया जा सकता है।

मन्त्रशास्त्र और णमोकारमन्त्र

इन बीजाक्षरोंकी उत्पत्ति प्रधानतः णमोकारमन्त्रसे ही हुई है क्योंकि मातृका ध्वनियाँ इसी मन्त्रसे उद्भूत हैं। इन सबमें 'प्रधान ओं' बीज है, यह आत्मवाचक मूलभूत है। इसे तेजोबीज, कामबीज और भवबीज माना गया है। पञ्चपरमेष्ठी वाचक होने से ओंको समस्त मन्त्रोंका सारतत्त्व बताया गया है। इसे प्रणववाचक भी कहा जाता है। श्रींको कीर्तिवाचक, ह्रींको कल्याणवाचक,

ह्रींको शान्तिवाचक, हैंको मंगलवाचक, ॐको सुखवाचक, क्ष्वींको योग-वाचक, ह्लको विद्वेष और रोष वाचक, प्रो प्रींको स्तम्भनवाचक और क्लींको लक्ष्मीप्राप्तिवाचक कहा गया है। सभी तीर्थंकरोंके नामाक्षरोंको मंगलवाचक एवं यक्ष-यक्षिणियोंके नामोंको कीर्त्ति और प्रीतिवाचक कहा गया है। बीजाक्षरोंका वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

ॐ प्रणवध्रुवं ब्रह्मबीजं, तेजोबीजं वा ओं तेजोबीजं ऐं वाग्भवबीजं, लृं कामबीजं, क्रों शक्तिबीजं, हंस. विषापहारबीज, क्षी पृथ्वीबीजं, स्वा वायुबीजं, हा आकाशबीजं, ह्रां मायाबीजं त्रैलोक्यनाथबीजं वा, क्रों अंकुशबीजं, ज पाशबीज, फट् विसर्जनं चालनं वा, वौषट् पूजाग्रहणं आकर्षणं वा, संवौषट् आमन्त्रणम्, ब्लूँ द्रावणं, क्लूं आकर्षणं, ग्लौ स्तम्भनं, ह्रौ महाशक्तिः, वषट् आह्वाननं, रं ज्वलनं, क्ष्वीं विषापहारबीजं, ठः चन्द्रबीज, घे घै ग्रहणबीजं, वैविबन्धों वा; द्रा द्रां क्लीं ब्लू स. पञ्चबाणी, द्रं विद्वेषणं रोषबीजं वा, स्वाहा शान्तिक मोहकं वा, स्वधा पौष्टिकं, नमः शोधनबीजं, हं गगन-बीज, हं ज्ञानबीजं, य' विसर्जनबीज उच्चारणं वा, यं वायुबीजं, शुं विद्वेषणबीजं, झ्वीं अमृतबीजं, क्ष्वी भोगबीजं, हूं दण्डबीजम्, ख. स्वादनबीजं, झ्रौं महाशक्तिबीजं, ह्ल्व्यूँ पिण्डबोज, हैं मंगलबीज सुखबीजं वा, श्री कीर्त्तिबीजं कल्याणबीजं वा, क्लीं धनबीजं कुबेरबीज वा, तीर्थङ्करनामाक्षरशान्तिबीज मांगल्यबीजं कल्याणबीजं विघ्नविना-शकबीजं वा, अ आकाशबीजं धान्यबीज वा, आ सुखबीज तेजोबीज वा, ई गुणबीजं तेजोबीज वा, उ वायुबीजं, क्षां क्षी क्षूं क्षे क्षै क्षो क्षौं क्षं क्षः रक्षाबीजं, सर्वकल्याणबीजं सर्वशुद्धिबीज वा, वं द्रवणबीजं, यं मगल बीजं, सं शोधनबीजं, यं रक्षाबीजं, म्लं शक्तिबीजं। त थ द कालुष्य-नाशकं मंगलवर्धकं सुखकारकं च। —बीजकोश

अर्थात्—ओ प्रणव, ध्रुव, ब्रह्मबीज या तेजोबीज है। ऐं वाग्भव बीज, लृ कामबीज, क्रौं शक्तिबीज, ह सः विषापहार बीज, क्षीं पृथ्वी बीज, स्वा वायुबीज, हा आकाशबीज, ह्रा मायाबीज या त्रैलोक्यनाथ बीज, क्रों अंकुश

बीज, ज पाशबीज, फट् विसर्जनात्मक या चालन—दूरकरणार्थक, वौषट् पूजाग्रहण या आकर्षणार्थक, संवौषट् आमन्त्रणार्थक, ब्लूँ द्रावणबीज, क्लौ आकर्षणबीज, ग्लौं स्तम्भनबीज, ह्रौं महाशक्तिवाचक, वषट् आह्वानन वाचक, र ज्वलनवाचक, क्ष्वीं विषापहारबीज, ठः चन्द्रबीज, घे घै ग्रहणबीज, द्रं विद्वेषणार्थक, रोषबीज, स्वाहा शान्ति और हवनवाचक, स्वधा पौष्टिक वाचक, नमः शोधनबीज, ह गगनबीज, हुं ज्ञानबीज, यः विसर्जन या उच्चारण वाचक, जु विद्वेषणबीज, झ्वीं अमृतबीज, क्ष्वीं भोगबीज, हूं दण्डबीज, खः स्वादनबीज, झ्रौं महाशक्तिबीज, ह्ल्व्यूं पिण्डबीज, क्ष्वीं हैं मंगल और सुखबीज, श्रीं कीर्तिबीज या कल्याणबीज, क्लीं धनबीज या कुबेरबीज, तीर्थंकरके नामाक्षर शान्तिबीज, ह्रौं ऋद्धि और सिद्धिबीज, ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वशान्ति, मांगल्य, कल्याण, विघ्नविनाशक, सिद्धिदायक, अ आकाशबीज, या धान्यबीज, आ सुखबीज या तेजोबीज, ई गुणबीज या तेजोबीज या वायुबीज, क्षा क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः सर्वकल्याण या सर्वशुद्धिबीज, व द्रवणबीज, य मंगलबीज, सं शोधनबीज, थ रक्षाबीज, झ शक्तिबीज और त थ दं कालुष्य नाशक, मंगलवर्धक और सुखकारक बताया गया है। इन समस्त बीजाक्षरोंकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्र तथा इस मन्त्रमें प्रतिपादित पञ्चपरमेष्ठीके नामाक्षर, तीर्थंकर और यक्ष-यक्षिणियोंके नामाक्षरोंपरसे हुई है। मन्त्रके तीन अंग होते हैं, रूप, बीज और फल। जितने भी प्रकारके मन्त्र हैं, उनमें बीजरूप यह णमोकार मन्त्र या इससे निष्पन्न कोई सूक्ष्मतत्त्व रहता है। जिस प्रकार होम्योपैथिक दवामें दवाका अंश जितना अल्प होता जाता है, उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ती जाती है और उसका चमत्कार दिखलायी पड़ने लगता है। इसी प्रकार इस णमोकार मन्त्रके सूक्ष्मीकरण-द्वारा जितने सूक्ष्म बीजाक्षर अन्य मन्त्रोंमें निहित किये जाते हैं, उन मन्त्रोंकी उतनी ही शक्ति बढ़ती जाती है।

मन्त्रोंका बार-बार उच्चारण किसी सोते हुए को बार-बार जगानेके समान है। यह प्रक्रिया इसीके तुल्य है, जिस प्रकार किन्हीं दो स्थानोंके बीच

बिजलीका सम्बन्ध लगा दिया जाय। साधककी विचार-शक्ति स्विचका काम करती है और मन्त्र-शक्ति विद्युत् लहरका। जब मन्त्र सिद्ध हो जाता है तो आत्मिक शक्तिसे आकृष्ट देवता मान्त्रिकके समक्ष अपना आत्मार्पण कर देता है और उस देवताकी सारी शक्ति उस मान्त्रिकमें आ जाती है। सामान्य मन्त्रोंके लिए नैतिकताकी विशेष आवश्यकता नहीं है। साधारण साधक बीज-मन्त्र और उनकी ध्वनियोंके घर्षणसे अपने भीतर आत्मिक शक्तिका प्रस्फुटन करता है। मन्त्रशास्त्रमें इसी कारण मन्त्रोंके अनेक भेद बताये गये हैं। प्रधान ये हैं—(१) स्तम्भन (२) मोहन (३) उच्चाटन (४) वश्याकर्षण (५) जृम्भण (६) विद्वेषण (७) मारण (८) शान्तिक और (९) पौष्टिक।

जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण द्वारा सर्प, व्याघ्र, सिंह आदि भयकर जन्तुओंको, भूत, प्रेत, पिशाच आदि दैविक बाधाओंको, शत्रुसेनाके आक्रमण तथा अन्य व्यक्तियों-द्वारा किये जानेवाले कष्टोंको दूर कर इनको जहाँ के तहाँ निष्क्रिय कर स्तम्भित कर दिया जाय उन ध्वनियोंके सन्निवेशको स्तम्भन मन्त्र, जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण द्वारा किसीको मोहित कर दिया जाय उन ध्वनियोंके सन्निवेशको मोहित मन्त्र, जिन ध्वनियोंके सन्निवेशके घर्षण-द्वारा किसीका मन अस्थिर, उल्लास रहित एवं निरुत्साहित होकर पदभ्रष्ट एवं स्थानभ्रष्ट हो जाय, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको उच्चाटन मन्त्र जिन ध्वनियोंके सन्निवेशके घर्षण-द्वारा इच्छित वस्तु या व्यक्ति साधकके पास आ जाय—किसीका विपरीत मन भी साधककी अनुकूलता स्वीकार कर ले, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको वश्याकर्षण, जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा शत्रु, भूत, प्रेत, व्यन्तर साधककी साधनासे भय त्रस्त हो जायें, काँपने लगें, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको जृम्भण मन्त्र; जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण द्वारा कुटुम्ब, जाति, देश, समाज, राष्ट्र आदिमें परस्पर कलह और वैमनस्यकी क्रान्ति मच जाय, उन ध्वनियोंके सन्निवेशको विद्वेषण मन्त्र, जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण द्वारा साधक आततायियोंको प्राणदण्ड दे सकें,

उन ध्वनियोंके सन्निवेशको मारण मन्त्र, जिन ध्वनियोंके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा भयकरसे भयकर व्याधि, व्यन्तर—भूत-पिशाचोकी पीड़ा, क्रूर ग्रह जगम-स्थावर विष बाधा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्षादि ईतियों और चौर आदिका भय प्रशान्त हो जाय, उन ध्वनियोके सन्निवेशको शान्ति मन्त्र एवं जिन ध्वनियोके वैज्ञानिक सन्निवेशके घर्षण-द्वारा सुख सामग्रियोकी प्राप्ति तथा सन्तान आदिकी प्राप्ति हो, उन ध्वनियोके सन्निवेशको पौष्टिक मन्त्र कहते है। मन्त्रोंमे एकसे तीन ध्वनियो तकके मन्त्रोका विश्लेषण अर्थकी दृष्टिसे नहीं किया जा सकता है, किन्तु इससे अधिक ध्वनियोंके मन्त्रोका विश्लेषण हो सकता है। मन्त्रोसे इच्छा शक्तिका परिष्कार या प्रसारण होता है, जिससे अपूर्व शक्ति आती है।

मन्त्रशास्त्रके बीजोका विवेचन करनेके उपरान्त आचार्योंने उनके रूपका निरूपण करते हुए बतलाया है कि अ आ ऋ ह श य क ख ग घ ङ ये वर्ण वायु तत्त्व सज्ञक, च छ ज झ ञ इ ई ॠ क्ष र प ये वर्ण अग्नि तत्त्व सज्ञक, त ट द ड उ ऊ ण लृ व ल ये वर्ण पृथ्वी सज्ञक, ठ थ ध ढ न ए ए ॡ स ये वर्ण जल तत्त्व सज्ञक एव प फ ब भ म ओ औ अं अः ये वर्ण आकाशतत्त्वसज्ञक है। अ उ ऊ ऐ ओ औ अ क ख ग ट ठ ड ढ त थ प फ ब ज झ ध य स प क्ष ये वर्ण पुल्लिग, आ ई च छ ल व वर्ण स्त्रीलिङ्ग और इ ऋ ॠ लृ ॡ ए अः व म य र ह द ञ ण ङ ये वर्ण नपुसक लिङ्ग सज्ञक होते है। मन्त्रशास्त्रमे स्वर और ऊष्मध्वनियाँ ब्राह्मण वर्ण सज्ञक; अन्तस्थ और कवर्ग ध्वनियाँ क्षत्रियवर्ण सज्ञक, चवर्ग और पवर्ग ध्वनियाँ वैश्यवर्ण सज्ञक एव टवर्ग और तवर्ग ध्वनियाँ शूद्रवर्ण संज्ञक होती हैं।

वश्य, आकर्षण और उच्चाटनमें 'हू' का प्रयोग, मारणमें 'फट्' का प्रयोग; स्तम्भन, विद्वेषण और मोहनमें 'नमः' का प्रयोग एवं शान्ति और पौष्टिकके लिए 'वषट्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। मन्त्रके अन्तमे 'स्वाहा' शब्द रहता है। यह शब्द पापनाशक, मगलकारक तथा आत्माकी

आन्तरिक शान्तिको उद्बुद्ध करनेवाला बतलाया गया है। मन्त्रको शक्तिशाली बनानेवाली अन्तिम ध्वनियोंमे स्वाहाको स्त्रीलिङ्ग, वषट्, फट्, स्वधाको पुल्लिङ्ग और नमः को नपुसक लिङ्ग माना है। मन्त्र-सिद्धिके लिए चार पीठोंका वर्णन जैन शास्त्रोंमे मिलता है—श्मशानपीठ, शवपीठ, अरण्यपीठ और श्यामापीठ।

भयानक श्मशानभूमिमें जाकर मन्त्रकी आराधना करना श्मशानपीठ है। अभीष्ट मन्त्रकी सिद्धिका जितना काल शास्त्रोमे बताया गया है, उतने काल तक श्मशानमे जाकर मन्त्र साधन करना आवश्यक है। भीरु साधक इस पीठका उपयोग नहीं कर सकता है। प्रथमानुयोगमे आया है कि सुकुमाल मुनिराजने णमोकार मन्त्रकी आराधन इस पीठमे करके आत्मसिद्धि प्राप्त की थी। इस पीठमे सभी प्रकारके मन्त्रोंकी साधना की जा सकती है। शवपीठमें कर्णपिशाचिनी, कर्णेश्वरी आदि विद्याओंकी सिद्धिके लिए मृतक कलेवर पर आसन लगाकर मन्त्र साधन करनी होती है। आत्मसाधना करनेवाला व्यक्ति इस घृणित पीठसे दूर रहता है। वह तो एकान्त निर्जन भूमिमें स्थित होकर आत्मा की साधना करता है। अरण्यपीठमे एकान्त निर्जन स्थान, जो हिंस्रक जन्तुओंसे समाकीर्ण है, मे जाकर निर्भय एकाग्र चित्तसे मन्त्रकी आराधना की जाती है। णमोकार मन्त्रकी आराधनाके लिए अरण्यपीठ ही सबसे उत्तम माना गया है। निर्ग्रन्थ परम तपस्वी निर्जन अरण्योंमें जाकर ही पञ्चपरमेष्ठीकी आराधना द्वारा निर्वाण लाभ करते हैं। राग-द्वेष, मोह, क्रोध, माना, माया और लोभ आदि विकारोंको जीतनेका एक मात्र स्थान अरण्य ही है, अतएव इस महामन्त्रकी साधना इसी स्थान पर यथार्थ रूपसे हो सकती है। एकान्त निर्जन स्थानमें षोड़शी नवयौवना सुन्दरीको वस्त्ररहित कर सामने बैठाकर मन्त्र सिद्ध करना एव अपने मनको तिलमात्र भी चलायमान नहीं करना और ब्रह्मचर्यव्रतमे दृढ रहना श्यामापीठ है। इन चारों पीठोंका उपयोग मन्त्र-सिद्धिके लिए किया जाता है। किन्तु णमोकार मन्त्रकी साधनाके लिए इस प्रकारके पीठोंकी आवश्यकता

नहीं है। यह तो कहीं भी और किसी भी स्थितिमें सिद्ध किया जा सकता है।

उपर्युक्त मन्त्र-शास्त्रके संक्षिप्त विश्लेषण और विवेचनका निष्कर्ष यह है कि मन्त्रोंके बीजाक्षर, सन्निविष्ट ध्वनियोंके रूप विधानमे उपयोगी लिङ्ग और तत्त्वोंका विधान एव मन्त्रके अन्तिम भागमे प्रयुक्त होनेवाला पल्लव—अन्तिम ध्वनि समूहका मूलस्रोत णमोकार मन्त्र है। जिस प्रकार समुद्रका जल नवीन घड़ेमे भर देनेपर नवीन प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार णमोकार मन्त्र रूपी समुद्रमेसे कुछ ध्वनियोंको निकालकर मन्त्रोंका सृजन हुआ है। 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' नियम बतलाता है कि वर्णोंका समूह अनादि है। णमोकार मन्त्रमे कण्ठ, तालु, मूर्धन्य, अन्तस्थ, उष्म, उपध्मानीय, वर्त्स्य आदि सभी ध्वनियोंके बीज विद्यमान हैं। बीजाक्षर मन्त्रोंके प्राण हैं। ये बीजाक्षर ही स्वय इस बातको प्रकट करते हैं कि इनकी उत्पत्ति कहीं से हुई है। बीजकोशमे बताया गया है कि ॐ बीज समस्त णमोकार मन्त्रसे, ह्रीं की उत्पत्ति णमोकार मत्रके प्रथमपदसे, श्रीं की उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके द्वितीयपदसे, क्षीं और क्ष्वींकी उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम, द्वितीय और तृतीय पदोंसे, क्लींकी उत्पत्ति प्रथमपदमे प्रतिपादित तीर्थंकरोंकी यक्षिणियोंसे, अत्यन्त शक्तिशाली सकल मन्त्रोंमे व्याप्त 'ह्रैं' की उत्पत्ति णमोकार मन्त्रके प्रथम पदसे, द्रां द्रीं की उत्पत्ति उक्त मन्त्रके चतुर्थ और पंचमपदसे हुई है। ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ये बीजाक्षर प्रथमपदसे क्षा क्षीं क्षू क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षः बीजाक्षर प्रथम, द्वितीय और पंचमपदसे निष्पन्न हैं। णमोकार मन्त्रकल्प, भक्तामर यन्त्र-मन्त्र, कल्याणमन्दिर यन्त्र-मन्त्र, यन्त्र-मन्त्र सग्रह, पद्मावती मन्त्र कल्प आदि मान्त्रिक ग्रन्थोंके अवलोकनसे पता लगता है कि समस्त मन्त्रोंके रूप, बीज पल्लव इसी महामन्त्रसे निकले हैं। ज्ञानार्णवमे षोड़शाक्षर, षडक्षर, चतुरक्षर, दशाक्षर, एकाक्षर, पञ्चाक्षर, त्रयोदशाक्षर, सप्ताक्षर, अक्षरपंक्ति इत्यादि नाना प्रकारके मन्त्रोंकी उत्पत्ति इसी महामन्त्रसे मानी है। षोड़शाक्षर मन्त्रकी उत्पत्तिका वर्णन करते हुए कहा गया है।

स्मर पञ्चपदोद्भूता महाविद्या जगन्नुताम् ।
गुरुपञ्चकनामोत्थां षोडशाक्षरराजिताम् ॥
अस्या शतद्वयं ध्यानी जपन्नेकाग्रमानसः ।
अनिच्छन्नप्यवाप्नोति चतुर्थतपसः फलम् ॥
विद्यां षड्वर्णसम्भूतामजय्यां पुण्यशालिनीम् ।
जपन्प्रागुक्तमभ्येति फलं ध्यानी शतत्रयम् ॥
चतुर्वर्णमयं मन्त्रं चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
चतुः शतं जपन्योगी चतुर्थस्य फलं लभेत् ॥
वर्णयुग्मं श्रुतस्कन्धसारभूतं शिवप्रदम् ।
ध्यायेज्जन्मोद्भवाशेषक्लेशविध्वंसनक्षमम् ॥
सिद्धेः सौधं समारोढुमियं सोपानमालिका ।
त्रयोदशाक्षरोत्पन्ना विद्या विश्वातिशायिनी ॥

समस्त क्लेशोंको नाश करनेवाला है। णमोकार महामन्त्रसे उत्पन्न तेरह अक्षरोंके समूहरूप मन्त्र मोक्षमहलपर चढनेके लिए सीढ़ीके समान है। वह मन्त्र है—"ॐ अर्हंत् सिद्धसयोगकेवली स्वाहा"।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने द्रव्यसग्रहकी ४९ वीं गाथामें इस णमोकार मन्त्रसे उत्पन्न आत्मसाधक तथा चमत्कार उत्पन्न करनेवाले मन्त्रोंका उल्लेख करते हुए कहा है—

पणतीस सोल छप्पण चउदुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण॥

अर्थात्—पञ्चपरमेष्ठी वाचक पैंतीस, सोलह, छः, पाँच, चार, दो और एक अक्षररूप मन्त्रोंका जप और ध्यान करना चाहिए। स्पष्टताके लिए इन मन्त्रोंको यहाँ क्रमशः दिया जाता है।

सोलह अक्षरका—अरिहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साधु अथवा अर्हत्सिद्धाचार्यउपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

छः अक्षरका मन्त्र—अरिहतसिद्ध, अरिहंत सि सा, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः।

पाँच अक्षरोंका मन्त्र—अ सि आ उ सा। णमो सिद्धाणं।

चार अक्षरका मन्त्र—अरिहत। अ सि साहू।

सात अक्षरका मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः।

आठ अक्षरका मन्त्र—ॐ णमो अरिहताणं।

तेरह अक्षरका मन्त्र—ॐ अर्हत् सिद्धसयोगकेवली स्वाहा।

दो अक्षरका मन्त्र—ॐ ह्रीं। सिद्ध। अ सि।

एक अक्षरका मन्त्र—ॐ, ओं, ओम्, अ, सि।

त्रयोदशाक्षरात्मक विद्या—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः।

अक्षरपक्ति विद्या—ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिनेऽनन्त-शुद्धिपरिणामविस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय

सौम्याय शान्ताय मङ्गलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा। यह अभय स्थान मन्त्र भी कहा गया है। इसके जपनेसे कामनाएँ भी पूर्ण होती हैं। प्रणवयुगल और मायायुगल सहित मन्त्र—ह्रीं ॐ, ॐ ह्रीं, हं सः।

अचिन्त्य फलप्रदायक मन्त्र—ॐ ह्रीं स्वर्हं णमो णमो अरिहंताणं ह्रीं नमः।

पापभक्षिणी विद्यारूप मन्त्र—ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनी पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मत्पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं हूं स्वाहा। इस मन्त्रके जपके प्रभावसे साधकका चित्त प्रसन्नता धारण करता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं और आत्मामें पवित्र भावनाओंका सचार हो जाता है।

गणधरवलयमें आये हुए 'ॐ णमो अरिहंताणं' 'ॐ णमो सिद्धाणं' 'ॐ णमो आइरियाणं' 'ॐ णमो उवज्झायाणं' 'णमो लोए सव्वसाहूणं' आदि मन्त्र णमोकार महामन्त्रके अभिन्न अंग ही हैं।

णमोकार मन्त्र कल्पके सभी मन्त्र इस महामन्त्रसे निकले हैं। ४६ मन्त्र इस कल्पके ऐसे हैं, जिनमें इस महामन्त्रके पदोंका संयोग पृथक् रूपमें विद्यमान है। इन मन्त्रोंका उपयोग भिन्न-भिन्न कार्योंके लिए किया जाता है। यहाँ पर कुछ मन्त्र दिये जा रहे हैं—

रक्षामंत्र (किसी भी कार्यके आरम्भमें इन रक्षा-मन्त्रोंके जपसे उस कार्यमें विघ्न नहीं आता है)—

ॐ णमो अरिहंताणं ह्रां हृदयं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
ॐ णमो सिद्धाणं ह्रीं सिरो रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।
ॐ णमो आइरियाणं ह्रूं शिखां रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

ॐ णमो उवज्झायाणं ह्रैं एहि एहि भगवति वज्रकवचवज्रिणि रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा। ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः क्षिप्रं साधय साधय वज्रहस्ते शूलिनि दुष्टान् रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।

रोग-निवारणमन्त्र (इन मन्त्रोंको १०८ बार लिखकर रोगीके हाथपर रखनेसे सभी रोग दूर होते हैं। मन्त्र सिद्ध कर लेनेके पश्चात् किसी भी मन्त्रसे १०८ बार पढकर फूँक देनेसे रोग अच्छा होता है)—

ॐ णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ णमो भगवति सुअदे वयाणवार संग एव, यण णणणीये, सरस्सई एसव्व, वाहंणि सवणवणे, ॐ अवतर अवतर, देवीमयसरीरं वपिस पुछं, तस्स पविससत्व जण मयहरीये अरिहंतसिरिसरिए स्वाहा।

सिरकी पीड़ा दूर करनेके मन्त्र (१०८ वार जलको मन्त्रित कर पिला देनेसे सिर दर्द दूर होता है)—

ॐ णमो अरिहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ णमो आइरियाणं, ॐ णमो उवज्झायाणं, ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ णमो णाणाय, ॐ णमो दंसणाय, ॐ णमो चारित्ताय, ॐ ह्री त्रैलोक्यवश्यंकरी ह्रीं स्वाहा।

बुखार, तिजारी और एकतरा दूर करनेका मन्त्र—

ओं णमो लोए सव्वसाहूणं ओं णमो उवज्झायाणं ओ णमो आइरियमाणं ओं णमो सिद्धाणं ओ णमो अरिहंताणं।

विधि—एक सफेद चादरके एक किनारेको लेकर एक वार मन्त्र पढकर एक स्थानपर मोड़ दे, इस प्रकार १०८ वार चादरको मन्त्रितकर मोड देनेके पश्चात् उस चादरको रोगीको उढा देनेपर रोगीका बुखार उतर जाता है।

अग्निनिवारक मन्त्र—

ॐ णमो ॐ अर्हं अ सि आ उ सा, णमो अरिहंताणं नमः।

विधि—एक लोटेमे शुद्ध पवित्र जल लेकर उसमेंसे थोड़ा-सा जल चुल्लूमें अलग निकालकर उस चुल्लूके जलको २१ बार उपर्युक्त मन्त्रसे मन्त्रितकर चुल्लूके जलसे एक रेखा खींच दे तो अग्नि उस रेखासे आगे नहीं बढती है। इस प्रकार चारों दिशाओंमे जलसे रेखा खींचकर अग्निका

स्तम्भन करे। पश्चात् लोटेके जलको लेकर १०८ बार मन्त्रित कर अग्निपर छींटे दे तो अग्नि शान्त हो जाती है। इस मन्त्रका आत्मकल्याणके लिए १०८ बार जाप करनेसे एक उपवासका फल मिलता है।

लक्ष्मी-प्राप्ति मन्त्र—

ऊँ णमो अरिहंताणं ऊँ णमो सिद्धाणं ऊँ णमो आइरियाणं ऊँ णमो उवज्झायाणं ऊँ णमो लोए सव्वसाहूणं। ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः स्वाहा।

विधि—मन्त्रको सिद्ध करनेके लिए पुष्य नक्षत्रके दिन पीला आसन, पीली माला और पीले वस्त्र पहनकर एकान्तमें मन्त्र जाप करना आरम्भ करे। सवालाख मन्त्रका जाप करने पर मन्त्र सिद्ध होता है। साधनाके दिनोंमें एकबार भोजन, भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन, सप्तव्यसनका त्याग, पचपापका त्याग करना चाहिए। स्वाहा शब्दके साथ प्रत्येक मन्त्रपर धूप देता जाय तथा दीप जलाता रहे। मन्त्र सिद्धिके पश्चात् प्रतिदिन एक माला जपनेसे धनकी वृद्धि होती है।

सर्वसिद्धिमन्त्र (ब्रह्मचर्य और शुद्धतापूर्वक सवालाख जाप करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं)—

ॐ अ सि आ उ सा नमः।

पुत्र और सम्पदा-प्राप्तिका मन्त्र—

ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं अ सि आ उ सा चलु चलु हुलु हुलु मुलु मुलु इच्छियं मे कुरु कुरु स्वाहा।

त्रिभुवनस्वामिनी विद्या।

ओं ह्रां णमो सिद्धाणं ओं ह्रीं णमो आइरियाणं ओं ह्रूं णमो अरिहंताणं ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं। श्रीं क्लीं नमः घ्रां घ्रीं क्ष्रूं घ्रें घ्रैं घ्रो घ्रौं घः स्वाहा।

विधि—मन्त्र सिद्ध करनेके लिए सामने धूप जलाकर रख ले तथा २४ हजार श्वेत पुष्पोंपर इस मन्त्रको सिद्ध करे। एक फूलपर एक बार मन्त्र पढ़े।

राजा, मन्त्री या अन्य किसी अधिकारीको वश करनेका मन्त्र—

ॐ ह्री णमो अरिहंताणं ॐ ह्री णमो सिद्धाणं ॐ ह्रीं णमो आइरियाणं, ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं ऊँ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं। अमुकं मम वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—पहले ११ हजार बार जापकर मन्त्रको सिद्ध कर लेना चाहिए। जब राजा मन्त्री या अन्य किसी अधिकारीके यहॉ जाय तो सिरके वस्त्रको २१ बार मन्त्रितकर धारण करे, इससे वह व्यक्ति वशमे हो जाता है। अमुकके स्थानपर जिस व्यक्तिको वश करना हो उसका नाम जोड देना चाहिए।

महामृत्युञ्जय मन्त्र—

ओं ह्रां णमो अरिहंताणं ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ओं ह्रूं णमो आइरियाणं ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं। मम सर्वग्रहारिष्टान् निवारय निवारय अपमृत्युं घातय घातय सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—दीप जलाकर धूप देते हुए नैष्ठिक रहकर इस मन्त्रका स्वय जाप करे या अन्य-द्वारा करावे। यदि अन्य व्यक्ति जाप करे तो 'मम' के स्थान पर उस व्यक्तिका जन्म नाम जोड़ ले—अमुकस्य सर्वग्रहारिष्टान् निवारय आदि। इस मन्त्रका सवालाख जाप करनेसे ग्रहबाधा दूर हो जाती है। कम-से-कम इस मन्त्रका ३१ हजार जाप करना चाहिए। जापके अनन्तर दशांश आहुति देकर हवन भी करे।

सिर, अक्षि, कर्ण, श्वास रोग एव पादरोग विनाशक मन्त्र—

ओ ह्री अर्हं णमो ओहिजिणाणं परमोहिजिणाणं शिरोरोगविनाशनं भवतु।
ओं ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाणं अक्षिरोगविनाशनं भवतु।
ओं ह्री अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं कर्णरोगविनाशनं भवतु।
ओं ह्रीं अर्हं णमो संभिण्णसादेराणं श्वासरोगविनाशनं भवतु।
ओं ह्री अर्हं णमो सव्वजिणाणं पादादिसर्वरोगविनाशनं भवतु।

विवेक प्राप्ति मन्त्र—

ओं ह्री अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं बीजबुद्धीणं ममात्मनि विवेकज्ञानं भवतु ।

विरोध-विनाशक मन्त्र—

ओं ह्रीं अर्हं णमो पादानुसारीणं परस्परविरोधविनाशनं भवतु ।

प्रतिवादीकी शक्तिको स्तम्भन करनेका मन्त्र—

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धाणं प्रतिवादि विद्याविनाशनं भवतु ।

विद्या और कवित्व प्राप्तिके मन्त्र—

ओं ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धाणं कवित्वं पाण्डित्यं च भवतु ।

ओं ह्रीं दिवसरात्रिभेदविवर्जितपरमज्ञानार्कचन्द्रातिशयाय श्री प्रथम-जिनेन्द्राय नमः ।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं नमः स्वाहा ।

सर्व कार्य साधक मन्त्र (मन, वचन और कायकी शुद्धि पूर्वक प्रात, साय और मध्याह्नकालमे जाप करना चाहिए)

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं अर्हं नम. ।

सर्वशान्तिदायक मन्त्र—

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनावृतविद्यायै णमो अरिहंताण ह्रौं सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा ।

व्यन्तर बाधा विनाशक मन्त्र—

ओं नमोऽर्हते सर्वं रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा ।

उपर्युक्त मन्त्रोंके अतिरिक्त सहस्रो मन्त्र इसी महामन्त्रसे निकले है। सकलीकरण क्रियाके मन्त्र, ऋषिमन्त्र, पीठिकामन्त्र, प्रोक्षणमन्त्र, प्रतिष्ठामन्त्र, शान्तिमन्त्र, इष्टसिद्धि-अरिष्टनिवारकमन्त्र, विभिन्न मांगलिक कृत्योंके अवसर पर उपयोगमे आनेवाले मन्त्र, विवाह यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके अवसर पर हवन-पूजनके लिए प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र प्रभृति समस्त मन्त्र णमोकार महामन्त्रसे प्रादुर्भूत हुए है। इस महामन्त्रकी ध्वनियोंके संयोग, वियोग,

विश्लेषण और सश्लेषणके द्वारा ही मन्त्रशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। प्रवचन-सारोद्धारके वृत्तिकारने बताया है—

सर्वमन्त्ररत्नानामुत्पत्त्याकरस्य प्रथमस्य कल्पितपदार्थकरणैककल्पद्रुमस्य विषविषधरशाकिनीडाकिनीयाकिन्यादिनिग्रहनिरवग्रहस्वभावस्य सकलजगद्वशीकरणाकृष्ट्याद्यव्यभिचारप्रौढप्रभावस्य चतुर्दशपूर्वाणां सारभूतस्य पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारस्य महिमाऽत्यद्भुतं वरीवर्तते, त्रिजगत्याकालमितिनिष्प्रतिपक्षमेतत्सर्वसमयविदाम् ।

अर्थात्—यह णमोकारमन्त्र सभी मन्त्रोंकी उत्पत्तिके लिए समुद्रके समान है। जिस प्रकार समुद्रसे अनेक मूल्यवान् रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार इस महामन्त्रसे अनेक उपयोगी और शक्तिशाली मन्त्र उत्पन्न हुए हैं। यह मन्त्र कल्पवृक्ष है, इसकी आराधनासे सभी प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती है। इस मन्त्रसे विष, सर्प, शाकिनी, डाकिनी, याकिनी, भूत, पिशाच आदि सब वशमे हो जाते हैं। यह मन्त्र ग्यारह अग और चौदह पूर्वका सारभूत है। मन्त्रोंको आचार्योंने वश्य, आकर्पण आदि नौ भागोमे विभक्त गया है। ये नौ प्रकारके मन्त्र इसी महामन्त्रसे निष्पन्न हैं, क्योंकि उन मन्त्रोंके रूप इस मन्त्रोक्त वर्णों या ध्वनियोंसे ही निष्पन्न हैं। मन्त्रोंके प्राण बीजाक्षर तो इसी मन्त्रसे निसृत हैं तथा मन्त्रोंका विकास और निकास इसी महासमुद्र से हुआ है। जिस प्रकार गगा, सिन्धु आदि नदियाँ पद्म-ह्रदादिसे निकलकर समुद्रोंमें मिल जाती हैं, उसी प्रकार सभी मन्त्र इसी महा-मन्त्रसे निकलकर इसी महामन्त्रके तत्त्वोंमें मिश्रित है।

जिनकीर्तिसूरिने अपने नमस्कारस्तवके पुष्पिकावाक्यमे बताया है कि इस महामन्त्रमे समस्त मन्त्र-शास्त्र उसी प्रकार निवास करता है, जिस प्रकार एक परमाणुमे त्रिलोकाकृति। और यही कारण है कि इस महामन्त्रकी आराधनासे सभी प्रकारके शुभ और आत्मानुभवरूप शुद्ध फल प्राप्त होते हैं। इसीलिए यह सब मन्त्रोंमे प्रधान और अन्य मन्त्रोंका जनक है—

एवं श्रीपन्चपरमेष्ठीनमस्कारमहामन्त्र· सकलसमीहितार्थ–प्रापणकल्प-

द्रुमाभ्यधिकमहिमा शान्तिपौष्टिकाद्यष्टकर्मकृत् ऐहिकपारलौकिकस्वाभिमतार्थ-सिद्धये यथा श्रीगुर्वाम्नायं ध्यातव्यः ।

अर्थात्—यह णमोकार मन्त्र, जिसे पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार किये जानेके कारण पंचनमस्कार भी कहा जाता है, समस्त अभीष्ट कार्योंकी सिद्धिके लिए कल्पद्रुमसे भी अधिक शक्तिशाली है। लौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंमें इसकी आराधनासे सफलता मिलती है। अतः अपनी आम्नायके अनुसार इसका ध्यान करना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि णमोकार महामन्त्रकी बीज ध्वनियाँ ही समस्त मन्त्र-शास्त्रकी आधारशिला हैं। इसीसे यह शास्त्र उत्पन्न हुआ है।

मनुष्य अहर्निश सुख प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, किन्तु विश्वके अशान्त वातावरणके कारण उसे एक क्षणको भी शान्ति नहीं मिलती है।

योगशास्त्र और णमोकार महामन्त्र

मनीषियोंका कथन है कि चित्त-वृत्तियोंका निरोध कर लेनेपर व्यक्तिको शान्ति प्राप्त हो सकती है। जैनागममें चित्तवृत्तिका निरोध करनेके लिए योगका वर्णन किया गया है। आत्माका उत्कर्ष साधन एवं विकास योग—उत्कृष्ट ध्यानके सामर्थ्य पर अवलम्बित है। योगबलसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति होती है तथा पूर्ण अहिंसा शक्ति या शीलकी प्राप्ति-द्वारा संचित कर्ममल दूरकर निर्वाण प्राप्त किया जाता है। साधारण ऋद्धि-सिद्धियाँ तो उत्कृष्ट ध्यान करनेवालोंके चरणोंमें लोटती हैं। योगसाधना करनेवालेको शरीर मनपर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

मनुष्यको चित्तकी चंचलताके कारण ही अशान्तिका अनुभव करना पड़ता है, क्योंकि अनावश्यक संकल्प-विकल्प ही दुःखोंके कारण हैं। मोह-जन्य वासनाएँ मानवके हृदयका मन्थनकर विषयोंकी ओर प्रेरित करती हैं, जिससे व्यक्तिके जीवनमें अशान्तिका सूत्रपात होता है। योग-शास्त्रियोंने इस अशान्तिको रोकनेके विधानोंका वर्णन करते हुए बतलाया है कि मनकी चंचलतापर पूर्ण आधिपत्य कर लिया जाय तो चित्तकी वृत्तियोंका इधर-

उधर जाना रुक जाता है। अतएव व्यक्तिकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नतिका एक साधन योगाभ्यास भी है। मुनिराज मन, वचन और कायकी चंचलताको रोकनेके लिए गुप्ति और समितियोंका पालन करते है। यह प्रक्रिया भी योगके अन्तर्गत है। कारण स्पष्ट है कि चित्तकी एकाग्रता समस्त शक्तियोंको एक केन्द्रगामी बनाने तथा साध्य तक पहुँचानेमें समर्थ है। जीवनमे पूर्ण सफलता इसी शक्तिके द्वारा प्राप्त होती है।

जैनग्रन्थोंमे सभी जिनेश्वरोंको योगी माना गया है। श्रीपूज्यपादस्वामीने दशभक्तिमे बताया है—"योगीश्वरान् जिनान्सर्वान् योगनिर्धूतकल्मषान्। योगैस्त्रिभिरहं वन्दे योगस्कन्धप्रतिष्ठितान्"॥ इससे स्पष्ट है कि जैनागममे योगका पर्याप्त महत्त्व स्वीकार किया गया है। योगशास्त्रके इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे प्रतीत होता है कि इस कल्पकालमे भगवान् आदिनाथने योगका उपदेश दिया। पश्चात् अन्य तीर्थंकरोंने अपने-अपने समयमे इस योग-मार्गका प्रचार किया। जैनग्रन्थोमे योगके अर्थमे प्रधानतया ध्यान शब्दका प्रयोग हुआ है। ध्यानके लक्षण, भेद, प्रभेद, आलम्बन आदिका विस्तृत वर्णन अंग और अंगबाह्य ग्रन्थोंमे मिलता है। श्री उमास्वामी आचार्य-ने अपने तत्त्वार्थसूत्रमे ध्यानका वर्णन किया है, इस ग्रन्थके टीकाकारोंने अपनी-अपनी टीकाओंमे ध्यानपर बहुत कुछ विचार किया है। ध्यानसार और योगप्रदीपमे योगपर पूरा प्रकाश डाला गया है। आचार्य शुभचन्द्रने ज्ञानार्णवमे योगपर पर्याप्त लिखा है। इनके अतिरिक्त श्वेताम्बर सम्प्रदायमे श्रीहरिभद्रसूरिने नयी शैलीमे बहुत लिखा है। इनके रचे हुए योगबिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, योगविंशिका, योगशतक और षोडशक ग्रन्थ हैं। इन्होंने जैनदृष्टिसे योगशास्त्रका वर्णन कर पातञ्जल योगशास्त्रकी अनेक बातों-की तुलना जैन सकेतोंके साथ की है। योगदृष्टिसमुच्चयमे योगकी आठ दृष्टियोंका कथन है, जिनसे समस्त योग साहित्यमें एक नवीन दिशा प्रदर्शित की गयी है। हेमचन्द्राचार्यने आठ योगाङ्गोंका जैन शैलीके अनुसार वर्णन किया है तथा प्राणायामसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बातें बतलायी है।

श्रीशुभचन्द्राचार्यने अपने ज्ञानार्णवमें ध्यानके पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत भेदोंका वर्णन विस्तारके साथ करते हुए मनके विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट और सुलीन इन चारों भेदोंका वर्णन बड़ी रोचकता और नवीन शैलीमें किया है। उपाध्याय यशोविजयने अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद् आदि ग्रन्थोंमें योग-विषयका निरूपण किया है। दिगम्बर सभी आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें ध्यान या समाधिका विस्तृत वर्णन प्राप्त है।

योग शब्द युज् धातुसे घञ् प्रत्यय कर देनेसे सिद्ध होता है। युजूके दो अर्थ हैं—जोड़ना और मन स्थिर करना। निष्कर्ष रूपमें योगको मनकी स्थिरताके अर्थमें व्यवहृत करते हैं। हरिभद्र सूरिने मोक्ष प्राप्त करनेवाले साधनका नाम योग कहा है। पतञ्जलिने अपने योगशास्त्रमें "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"—चित्तवृत्तिका रोकना योग बताया है। इन दोनों लक्षणोंका समन्वय करनेपर फलितार्थ यह निकलता है कि जिस क्रिया या व्यापारके द्वारा संसारोन्मुख वृत्तियाँ रुक जायँ और मोक्षकी प्राप्ति हो, योग है। अतएव समस्त आत्मिक शक्तियोंका पूर्ण विकास करनेवाली क्रिया—आत्मोन्मुख चेष्टा योग है। योगके आठ अंग माने जाते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन योगांगोंके अभ्याससे मन स्थिर हो जाता है तथा उसकी शुद्धि होकर वह शुद्धोपयोगकी ओर बढ़ता है या शुद्धोपयोगको प्राप्त हो जाता है। शुभचन्द्राचार्यने बतलाया है—

यमादिषु कृताभ्यासो निस्संगो निर्ममो मुनिः।
रागादिक्लेशनिर्मुक्तं करोति स्ववशं मनः॥
एक एव मनोरोधः सर्वाभ्युदयसाधकः।
यमेवालम्ब्य संप्राप्ता योगिनस्तत्त्वनिश्चयम्॥
मनःशुद्ध्यैव शुद्धिः स्याद्देहिनां नात्र संशयः।
वृथा तद्व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम्॥

—ज्ञानार्णव प्र० २२ श्लो० ३, १२, १४

अर्थात्—जिसने यमादिकका अभ्यास किया है, परिग्रह और ममतासे

रहित है ऐसा मुनि ही अपने मनको रागादिकसे निर्मुक्त तथा वश करनेमे समर्थ होता है। निस्सन्देह मनकी शुद्धिसे ही जीवोंकी शुद्धि होती है, मन-की शुद्धि के बिना शरीरको क्षीण करना व्यर्थ है। मनकी शुद्धिसे इस प्रकारका ध्यान होता है, जिससे कर्मजाल कट जाता है। एक मनका निरोध ही समस्त अभ्युदयोंको प्राप्त करनेवाला है, मनके स्थिर हुए बिना आत्म-स्वरूपमे लीन होना कठिन है। अतएव योगाङ्गोंका प्रयोग मनको स्थिर करनेके लिए अवश्य करना चाहिए। यह एक ऐसा साधन है, जिससे मन स्थिर करनेमें सबसे अधिक सहायता मिलती है।

यम और नियम—जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है, अतः यम-नियमका अर्थ भी निवृत्तिपरक है। अतएव विभाव परिणतिसे हटकर स्वभावकी ओर रुचि होना ही यम-नियम है। जैनागममे इन दोनो योगाङ्गोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। यम या संयमके प्रधान दो भेद हैं—प्राणिसंयम और इन्द्रिय-संयम। समस्त प्राणियोंकी रक्षा करना, मन-वचन-कायसे किसी भी प्राणिको कष्ट न पहुँचाना तथा मनमे राग-द्वेषकी भावना न उत्पन्न होने देना प्राणिसंयम है और पञ्चेन्द्रियों पर नियन्त्रण करना इन्द्रियसंयम है। पाँचों व्रतोंके धारण, पाँचों समितियोंके पालन, चारों कषायोंका निग्रह, तीन दण्डों—मन, वचन, कायकी विपरीत परिणतिका त्याग और पाँचों इन्द्रियोंका विजय करना ये सब संयमके अंग हैं। जैन आम्नायमे यमनियमोंका विधान राग-द्वेषमयी प्रवृत्तिको वश करनेके लिए ही किया गया है। अतः ये दोनो प्रवृत्तियाँ ही मानवोंको परमानन्दसे हटाती रहती हैं। रागी जीव कर्मोंको बाँधता है और वीतरागी कर्मोंसे छूटता है। अतः राग और द्वेष की प्रवृत्तिको इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह एवं आत्मभावनाके द्वारा दूर करना चाहिए। कहा गया है—

रागी बध्नाति कर्माणि वीतरागो विमुच्यते।
जीवो जिनोपदेशोऽयं समासाद्बन्धमोक्षयोः॥

यत्र रागः पदं धत्ते द्वेषस्तत्रैति निश्चयः।
उभावेतौ समालम्ब्य विक्राम्यत्यधिकं मनः॥
रागद्वेषविषोद्यानं मोहबीजं जिनैर्मतम्।
अतः स एव निःशेषदोषसेनानरेश्वरः॥
रागादिवैरिणः क्रूरान्मोहभूपेन्द्रपालितान्।
निकृत्य शमशास्त्रेण मोक्षमार्गं निरूपयः॥

—ज्ञानार्णव प्र० २३ श्लो० १, २५, ३०, ३७

अर्थात्—अनादिसे लगे हुए राग-द्वेष ही संसारके कारण है, जहाँ राग-द्वेष हैं, वहाँ नियमतः कर्मबन्ध होता है। वीतरागताके प्राप्त होते ही कर्मका बन्ध रुक जाता है और कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है। जहाँ राग रहता है वहाँ उसका अविनाभावी द्वेष भी अवश्य रहता है। अतः इन दोनोका अवलम्बन करके मनमे नाना प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं। राग-द्वेष रूपी विषवनका मोह बीज है, अतः समस्त विषय-कषायोंकी सेनाका मोह ही राजा है। यही ससारमे उत्पन्न हुआ दावानल है तथा अत्यन्त दृढ कर्मबन्धनका हेतु है। यह ससारी प्राणी मोह निद्राके कारण ही मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगरूपी पिशाचोंके आधीन होता है। इसी मोहकी ज्वालासे अपने ज्ञानादिको भस्म करता है। मोहरूपी राजाके द्वारा पालित राग-द्वेषरूपी शत्रुओको नष्टकर मोक्ष मार्गका अवलम्बन लेना चाहिए। राग, द्वेष, मोह रूप त्रिपुरको ध्यान रूपी अग्नि द्वारा भस्म करना चाहिए।

यम-नियम निवृत्तिपरक होनेपर ही उपर्युक्त त्रिपुरका भस्म कर सकनेके ध्यानसिद्धिका कारण हो सकते है। अत. जैनागममे यम नियमका अर्थ समताभावकी प्राप्ति-द्वारा उक्त त्रिपुरको भस्म करना है, क्योकि इसीसे ध्यानकी सिद्धि होती है। आर्तध्यान और रौद्र ध्यानका निवारण धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यानकी सिद्धिमें सहायक होता है।

आसन—समाधिके लिए मनकी तरह शरीरको भी साधना अत्यावश्यक है। आसन बैठनेके ढगको कहते हैं। योगीको आसन लगानेका अभ्यास होना चाहिए। श्रीशुभचन्द्राचार्यने ध्यानके योग्य सिद्धक्षेत्र, नदी-सरोवर-समुद्रका निर्जन तट, पर्वतका शिखर, कमलवन, अरण्य, श्मशानभूमि, पर्वतकी गुफा, उपवन, निर्जन गृह या चैत्यालय, निर्जन प्रदेशको स्थान माना है। इन स्थानोंमें जाकर योगी काष्ठके टुकड़ेपर या शिला तलपर अथवा भूमि या वालुका पर स्थिर होकर आसन लगावे। पर्यङ्कासन, अर्द्धपर्यङ्कासन, वज्रासन, सुखासन, कमलासन और कायोत्सर्ग ये ध्यानके योग्य आसन माने गये हैं। जिस आसनसे ध्यान करते समय साधकका मन खिन्न न हो, वही उपादेय है। बताया गया है—

कायोत्सर्गश्च पर्यङ्कः प्रशस्तं कैश्चिदीरितम्।
देहिनां वीर्यवैकल्यात्कालदोषेण सम्प्रति ॥

—ज्ञानार्णव प्र० २८ श्लो० २२

अर्थात्—इस समय कालदोषसे जीवोंके सामर्थ्यकी हीनता है, इस कारण पद्मासन और कायोत्सर्ग ये ही आसन ध्यान करनेके लिए उत्तम है। तात्पर्य यह है कि जिस आसनसे बैठकर साधक अपने मनको निश्चल कर सके, वही आसन उसके लिए प्रशस्त है

प्राणायाम—श्वास और उच्छ्वासके साधनेको प्राणायाम कहते हैं। ध्यानकी सिद्धि और मनको एकाग्र करनेके लिए प्राणायाम किया जाता है। प्राणायाम पवनके साधनकी क्रिया है। शरीरस्थ पवन जब वश हो जाता है तो मन भी आधीन हो जाता है। इसके तीन भेद हैं—पूरक, कुम्भक और रेचक। [1]नासिका छिद्रके द्वारा वायुको खींचकर शरीरमें भरना पूरक, उस पूरक

---

१. समाकृष्य यदा प्राणधारणं स तु पूरकः।
नाभिमध्ये स्थिरीकृत्य रोधनं स तु कुम्भकः ॥
यत्कोष्ठादतियत्नेन नासाब्रह्मपुरातनैः ।
बहिः प्रक्षेपणं वायोः स रेचक इति स्मृतः ॥

पवनको नाभिके मध्यमे स्थिर करना कुम्भक और उसे धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक है। यह वायुमण्डल चार प्रकारका बतलाया गया है—पृथ्वीमण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल और अग्निमण्डल। इन चारोंकी पहिचान बताते हुए कहा है कि क्षितिबीजसे युक्त, गले हुए स्वर्णके समान कांचन प्रभावाला, वज्रके चिह्नसे सयुक्त, चौकोर पृथ्वीमण्डल है। वरुणबीजसे युक्त, अर्धचन्द्राकार, चन्द्रसदृश शुक्लवर्ण और अमृतस्वरूप जलसे सिञ्चित अप्‌मण्डल है। पवनबीजाक्षर युक्त, सुवृत्त, बिन्दुओ सहित नीलाञ्जन घनके समान, दुर्लक्ष्य वायुमण्डल है। अग्निके स्फुलिङ्ग समान पिङ्गलवर्ण, भीम—रौद्र रूप, ऊर्ध्व गमन करनेवाला, त्रिकोणाकार, स्वस्तिकसे युक्त एव वह्निबीजयुक्त अग्नि मंडल होता है। इस प्रकार चारों वायुमण्डलोंकी पहचानके लक्षण बतलाये हैं, परन्तु इन लक्षणोंके आधारसे पहचानना अतीव दुष्कर है। प्राणायामके अत्यन्त अभ्याससे ही किसी साधक विशेषको इनका सवेदन हो सकता है। इन चारों वायुओंके प्रवेश और निस्सरणसे जय, पराजय, जीवन, मरण, हानि, लाभ, आदि अनेक प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकता है। इन पवनोंकी साधनासे योगीमे अनेक प्रकारकी अलौकिक और चमत्कारपूर्ण शक्तियोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। प्राणायामकी क्रियाका उद्देश्य भी मनको स्थिर करना है, प्रमादको दूर भगाना है। जो

शनै. शनैर्मनोऽजस्रं वितन्द्रः सह वायुना।
प्रवेश्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां नियन्त्रयेत् ॥
विकल्पा न प्रसूयन्ते विषयाशा निवर्त्तते।
अन्त स्फुरति विज्ञानं तत्र चित्ते स्थिरीकृते ॥

—ज्ञानार्णव प्र० २९ श्लो० १, २, १०, ११

१. सुख-दु.ख-जय-पराजय-जीवितमरणानि विघ्न इति केचित्।
वायु. प्रपञ्चरचनामवेदिनां कथमयं मानः ॥

—ज्ञा० प्र० २९ श्लो० ७७

साधक यत्नपूर्वक मनको वायुके साथ-साथ हृदय-कमलकी कर्णिकामें प्रवेश कराकर वहाँ स्थिर करता है, उसके चित्तमें विकल्प नहीं उठते और विषयोंकी आशा भी नष्ट हो जाती है तथा अन्तरंगमें विशेष ज्ञानका प्रकाश होने लगता है। प्राणायामकी महत्ताका वर्णन करते हुए शुभचन्द्राचार्यने बतलाया है—

जन्मशतजनितमुग्रं प्राणायामाद्विलीयते पापम्।
नाडीयुगलस्यान्ते यतेर्जिताक्षस्य धीरस्य॥

—ज्ञानार्णव प्र० २९ श्लो० १०२

अर्थ—पवनोंके साधनरूप प्राणायामसे इन्द्रियोंके विजय करनेवाले साधकोंके सैकड़ों जन्मके संचित किये गये तीव्र पाप दो घड़ीके भीतर लय हो जाते हैं।

प्रत्याहार—इन्द्रिय और मनको अपने-अपने विषयोंमें खींचकर अपनी इच्छानुसार किसी कल्याणकारी ध्येयमें लगानेको प्रत्याहार कहते हैं। अभिप्राय यह है कि विषयोंसे इन्द्रियोंको और इन्द्रियोंसे मनको पृथक्कर मनको निराकुल करके ललाटपर धारण करना प्रत्याहार-विधि है। प्रत्याहारके सिद्ध हो जानेपर इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं और मनोहर-से-मनोहर विषयकी ओर भी प्रवृत्त नहीं होती हैं। इसका अभ्यास प्राणायामके उपरान्त किया जाता है। प्राणा-याम-द्वारा ज्ञानतन्तुओंके आधीन होने पर इन्द्रियोंका वशमें आना सुगम है। जैसे कछुआ अपने हस्त-पादादि अंगोंको अपने भीतर संकुचित कर लेता है, वैसे ही स्पर्श, रसना आदि इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिको आत्मरूपमें लीन करना प्रत्याहारका कार्य है। राग-द्वेष आदि विकारोंसे मन दूर हट जाता है। कहा गया है—

सम्यक्समाधिसिद्ध्यर्थं प्रत्याहारः प्रशस्यते।
प्राणायामेन विक्षिप्तं मनःस्वास्थ्यं न विन्दति॥
प्रत्याहृतं पुनः स्वस्थं सर्वोपाधिविवर्जितम्।
चेतः समत्वमापन्नं स्वस्मिन्नेव लयं व्रजेत्॥

वायोः संचारचातुर्यमणिमाद्यङ्गसाधनम् ।
प्रायः प्रत्यूहबीजं स्यान्मुनेर्मुक्तिमभीप्सतः ॥

अर्थात्—प्राणायाममें पवनके साधनसे विक्षिप्त हुआ मन स्वास्थ्यको प्राप्त नहीं करता, इस कारण समाधि सिद्धिके लिए प्रत्याहार करना आवश्यक है। इसके द्वारा मन राग-द्वेषसे रहित होकर आत्मामें लय हो जाता है। पवन साधन—शरीर-सिद्धिका कारण है, अतः मोक्षकी वाञ्छा करनेवाले साधकके लिए विघ्नकारक हो सकता है। अतएव प्रत्याहार-द्वारा राग द्वेष को दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

धारणा—जिसका ध्यान किया जाय, उस विषयमें निश्चलरूपसे मनको लगा देना, धारणा है। धारणा-द्वारा ध्यानका अभ्यास किया जाता है।

ध्यान और समाधि—योग, ध्यान और समाधि ये प्रायः एकार्थवाचक हैं। योग कहनेसे जैनाम्नायमें ध्यान और समाधिका ही बोध होता है। ध्यानकी चरम सीमाको समाधि' कहा जाता है। ध्यानके सम्बन्धमें ध्यान, ध्याता, ध्येय और फल इन चारों बातोंका विचार किया गया है। ध्यान चार प्रकारका है—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमें आर्त्त और रौद्र ध्यान दुर्ध्यान हैं एवं धर्म और शुक्ल ध्यान शुभ ध्यान है। इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग शारीरिक वेदना आदि व्यथाओंको दूर करनेके लिए संकल्प-विकल्प करना आर्त्तध्यान और हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पाँचों पापोंके सेवनमें आनन्दका अनुभव करना और इस आनन्दकी उपलब्धिके लिए नाना तरहकी चिन्ताएँ करना रौद्रध्यान है।

धर्मसे सम्बद्ध बातोंका सतत चिन्तन करना धर्मध्यान है। इसके चार भेद हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। जिनागमके अनुसार तत्त्वोंका विचार करना आज्ञाविचय, अपने तथा दूसरोंके राग, द्वेष, मोह आदि विकारोंको नाश करनेका उपाय चिन्तन करना अपायविचय, अपने तथा परके सुख-दुःख देखकर कर्मप्रकृतियोंके स्वरूपका चिन्तन करना विपाकविचय एवं लोकके स्वरूपका विचार करना संस्थान-

विचार धर्मध्यान है। इसके भी चार भेद हैं—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। शरीर स्थित आत्माका चिन्तन करना पिण्डस्थ ध्यान है। इसकी पाँच धारणाएँ बतायी गयी हैं—पार्थिवी, आग्नेय, वायवी, जलीय और तत्त्वरूपवती।

पार्थिवी—इस धारणामें एक मध्यलोकके बराबर निर्मल जलका समुद्र चिन्तन करे और उसके मध्यमें जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजन चौड़ा स्वर्णरंगके कमलका चिन्तन करे, इसकी कर्णिकाके मध्यमें सुमेरुपर्वतका चिन्तन करे। उस सुमेरुपर्वतके ऊपर पाण्डुक वनमें पाण्डुकशिला तथा उस शिला पर स्फटिकमणिके आसनका एवं उस आसन पर पद्मासन लगाये ध्यान करते हुए अपना चिन्तन करे। इतना चिन्तन बार-बार करना पृथ्वी धारणा है।

आग्नेयी धारणा—उसी सिंहासन पर स्थिर होकर यह विचारे कि मेरे नाभि-कमलके स्थान पर भीतर ऊपरको उठा हुआ सोलह पत्तोंका एक कमल है उस पर पीतरंगके अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये सोलह स्वर अंकित हैं तथा बीचमें 'ह्रैं' लिखा है। दूसरा कमल हृदय स्थानपर नाभिकमलके ऊपर आठ पत्तोंका औंधा कमल विचारना चाहिए। इसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका कमल कहा गया है। पश्चात् नाभि कमलके बीचमें 'ह्रैं' लिखा है, उसकी रेफसे धुँआ निकलता हुआ सोचे, पुनः अग्निकी शिखा उठती हुई सोचना चाहिए। आगकी ज्वाला उठकर आठों कर्मोंके कमलको जलाने लगी। कमलके बीचसे फूटकर अग्निकी लौ मस्तक पर आ गयी। इसका आधा भाग शरीरके एक तरफ और शेष आधा भाग शरीरके दूसरी तरफ मिलकर दोनों कोने मिल गये। अग्निमय त्रिकोण सब प्रकारसे शरीरको वेष्टित किये हुए है। इस त्रिकोणमें र र र र र र र र अक्षरोंको अग्निमय फैले हुए विचारे अर्थात् इस त्रिकोणके तीनों कोण अग्निमय र र र अक्षरोंके बने हुए हैं। इसके बाहरी तीनों कोणों पर अग्निमय साथिया तथा भीतरी तीनों कोणों

पर अग्निमय ॐ र्हं लिखा हुआ सोचे। पश्चात् सोचे कि भीतरी अग्निकी ज्वाला कर्मोंको और बाहिरी अग्निकी ज्वाला शरीरको जला रही है। जलते-जलते कर्म और शरीर दोनों ही जलकर राख हो गये हैं तथा अग्निकी ज्वाला शान्त हो गयी है अथवा पहलेकी रेफमें समा गयी है, जहाँसे वह उठी थी, इतना अभ्यास करना अग्नि-धारणा है।

वायु धारणा—पुनः साधक चिन्तन करे कि मेरे चारों ओर प्रचण्डवायु चल रही है। यह वायु गोल मण्डलाकार होकर मुझे चारों ओरसे घेरे हुए है। इस मण्डलमें आठ जगह 'स्वायँ-स्वायँ' लिखा है। यह वायु-मण्डल कर्म तथा शरीरकी रजको उड़ा रहा है, आत्मा स्वच्छ तथा निर्मल होता जा रहा है। इस प्रकार ध्यान करना वायु-धारणा है।

जलधारणा—पश्चात् चिन्तन करे कि आकाश मेघाच्छन्न हो गया है, बादल गरजने लगे हैं, बिजली चमकने लगी है औरखूब जोरकी वर्षा होने लगी है। पानीका ऊपर एक अर्द्धचन्द्राकार मण्डल बन गया है, जिसपर प प प प प प प कर्म स्थानों पर लिखा है। गिरनेवाले पानीकी सहस्र धाराएँ आत्माके ऊपर लगी हुई कर्मरजको धोकर आत्माको साफ कर रही हैं। इस प्रकार चिन्तन करना जल-धारणा है।

तत्त्वरूपवती धारणा—वही साधक आगे चिन्तन करे कि अब मैं सिद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, निर्मल, निरंजन, कर्म तथा शरीरसे रहित चैतन्य आत्मा हूँ। पुरुषाकार चैतन्य धातुकी बनी हुई मूर्त्तिके समान हूँ। पूर्ण चन्द्रमाके समान ज्योतिरूप देदीप्यमान हूँ। इस प्रकार इन पाँचों धारणाओंके द्वारा पिण्डस्थ ध्यान किया जाता है।

पदस्थध्यान—मन्त्र-पदोंके द्वारा अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा आत्माके स्वरूपका विचारना पदस्थ ध्यान है। किसी नियत स्थान—नासिकाग्र या भृकुटिके मध्यमें णमोकार मन्त्रको विराजमान कर उसको देखते हुए चित्तको जमाना तथा उस मन्त्रके स्वरूपका चिन्तन करना चाहिए। इस ध्यानका सरल और साध्य उपाय यह है कि हृदयमें आठ

पत्तोंके कमलका चिन्तन करे। इस आठो पत्तो—दलोमेंसे पॉच पत्तोंपर क्रमशः 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।' इन पॉच पदोको तथा शेष तीन पत्तो पर क्रमशः 'सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः' इन तीन पदोंको और कर्णिका पर 'सम्यक् तपसे नमः' इस पदको लिखा हुआ सोचे। इस प्रकार प्रत्येक पत्ते पर लिखे हुए मन्त्रोंका ध्यान जितने समय तककर सके, करे।

रूपस्थ—अरिहत भगवान्के स्वरूपका विचार करे कि भगवान् समवशरणमे द्वादश सभाओके मध्यमे ध्यानस्थ विराजमान हैं। अथवा ध्यानस्थ प्रभु-मुद्राका ध्यान करे।

रूपातीत—सिद्धोंके गुणोका विचार करे कि सिद्ध अमूर्त्तिक, चैतन्य, पुरुषाकार, कृतकृत्य, परमशान्त, निष्कलक, अष्टकर्म रहित, सम्यक्त्वादि आठ गुण सहित, निर्लिप्त, निर्विकार एव लोकाग्रमें विराजमान हैं। पश्चात् अपने आपको सिद्ध स्वरूप समझकर लीन हो जाना रूपातीत ध्यान है।

शुक्लध्यान—जो ध्यान उज्ज्वल सफेद रगके समान अत्यन्त निर्मल और निर्विकार होता है, उसे शुक्लध्यान कहते है। इसके चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क वीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

ध्याता—ध्यान करनेवाला ध्याता होता है। आत्मविकासकी दृष्टिसे ध्याता १४ गुणस्थानोंमे रहनेवाले जीव हैं, अतः इसके १४ भेद हैं। पहले गुणस्थानमें आर्त्तध्यान या रौद्र ध्यान ही होता है। चौथे गुणस्थानमे धर्मध्यान होता है।

ध्येय—ध्यानके स्वरूपका कथन करते समय ध्येयके स्वरूपका प्रायः विवेचन किया जा चुका है। ध्येयके चार भेद है—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। णमोकार मन्त्र नाम ध्येय है। तीर्थंकरोकी मूर्त्तियॉ स्थापना ध्येय है। अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पचपरमेष्ठी द्रव्य

ध्येय हैं और इनके गुण भाव ध्येय हैं। यो तो सभी शुद्धात्माएँ ध्येय हो सकती है। जिस साध्यको प्राप्त करना है, वह साध्य ध्येय होता है।

योगशास्त्रके इस संक्षिप्त विवेचनके प्रकाशमें हम पाते हैं कि णमोकारका योगके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। योगकी क्रियाओंका इसी मन्त्रराजकी साधना करनेके लिए विधान किया गया है। जैनाम्नायमें प्रधान स्थान ध्यानको दिया गया है। योगके आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार-क्रियाएँ शरीरको स्थिर करती है। साधक इन क्रियाओंके अभ्यास-द्वारा णमोकार मन्त्रकी साधनाके योग्य अपने शरीरको बनाता है। धारणा-द्वारा मनकी क्रियाको आधीन करता है। तात्पर्य यह है कि योगों—मन, वचन, कायको स्थिर करनेके लिए योगाभ्यास करना पड़ता है। इन तीनों योगोकी क्रिया तभी स्थिर होती है, जब साधक आरम्भिक साधनाके द्वारा अपनेको इस योग्य बना लेता है। इस विषयके स्पष्टीकरणके लिए गणितका गति-नियामक सिद्धान्त अधिक उपयोगी होगा। गणितशास्त्रमें आया है कि किसी भी गतिमान् पदार्थको स्थिर करनेके लिए उसे तीन लम्बसूत्रों-द्वारा स्थिर करना पड़ता है। इन तीन सूत्रोंसे आबद्ध करने पर उसकी गति स्थिर हो जाती है। उदाहरणके लिए यों कहा जा सकता है कि वायुके द्वारा नाचते हुए बिजलीके बल्बको यदि स्थिर करना हो तो उसे तीन सम सूत्रोंके द्वारा आबद्ध कर देना होगा। क्योंकि वायु या अन्य किसी भी प्रकारके धक्केको रोकनेके लिए चौथे सूत्रसे आबद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं होगी। इसी प्रकार णमोकार मन्त्रकी स्थिर साधना करनेके लिए साधकको अपनी त्रिसूत्र रूप मन, वचन और कायकी क्रियाको अवरुद्ध करना पड़ेगा। इसीके लिए आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारकी आवश्यकता है। मनके स्थिर करनेसे ही ध्यानकी क्रिया निर्विघ्नतया चल सकती है।

ध्यान करनेका विषय—ध्येय णमोकार मन्त्रसे बढकर और कोई पदार्थ नहीं हो सकता है। पूर्वोक्त नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों प्रकारके ध्येयों-द्वारा णमोकारमन्त्रका ही विधान किया गया है। साधक इस

मन्त्रकी आराधना-द्वारा अनात्मिक भावोंको दूर कर आत्मिक भावोंका विकास करता जाता है और गुणस्थानारोहण कर निर्विकल्प समाधिके पहले तक इस मन्त्रका या इस मन्त्रमें वर्णित पञ्चपरमेष्ठीका अथवा उनके गुणोंका ध्यान करता हुआ आगे बढता रहता है। ज्ञानार्णवमे बताया गया है—

गुरुपञ्चनमस्कारलक्षणं मन्त्रमूर्जितम् ।
विचिन्तयेज्जगज्जन्तुपवित्रीकरणक्षमम् ॥
अनेनैव विशुद्ध्यन्ति जन्तवः पापपङ्किताः ।
अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिणः ॥

ज्ञानार्णव प्र० ३८ श्लो० ३८, ४३

अर्थात्—णमोकार जो कि पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार रूप है, जगत्के जीवको पवित्र करनेमे समर्थ है। इसी मन्त्रके ध्यानसे प्राणी पापसे छूटते हैं तथा बुद्धिमान व्यक्ति ससारके कष्टोसे भी। इसी मन्त्रकी आराधना-द्वारा सुख प्राप्त करते हैं। यह ध्यानका प्रधान विषय है। हृदय-कमलमे इसका जप करनेसे चित्त शुद्ध होता है।

जाप तीन प्रकारसे किया जाता है—वाचक, उपाशु और मानस। वाचक जापमे शब्दोंका उच्चारण किया जाता है अर्थात् मन्त्रको मुँहसे बोल-बोलकर जाप किया जाता है। उपाशुमे भीतरसे शब्दोच्चारणकी क्रिया होती है, पर कण्ठ-स्थानपर मन्त्रके शब्द गूँजते रहते हैं किन्तु मुखसे नहीं निकल पाते। इस विधिमे शब्दोच्चारणकी क्रियाके लिए बाहरी और भीतरी प्रयास किया जाता है, परन्तु शब्द भीतर ही भीतर गूँजते रहते हैं, बाहर प्रकट नहीं हो पाते। मानस जापमें बाहिरी और भीतरी शब्दोच्चारणका प्रयास रुक जाता है, हृदयमे णमोकार मन्त्रका चिन्तन होता रहता है। यही क्रिया ध्यानका रूप धारण करती है। यशस्तिलकचम्पूमे इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

वचसा वा मनसा वा कार्यो जाप्यः सव्याहितस्वान्ते ।
शतगुणमाद्ये पुण्ये सहस्रसंख्य द्वितीये तु ॥

य० भा० २ पृ० ३८

वाचक जापसे उपांशुमें शतगुणा पुण्य और उपांशु जापकी अपेक्षा मानसजापमें सहस्र गुणा पुण्य होता है। मानस जाप ही ध्यानका रूप है, यह अन्तर्जल्प रहित मौन रूप होता है। बृहद्द्रव्यसंग्रहमें बताया गया है **"एतेषां पदानां सर्वमन्त्रवादपदेषु मध्ये सारभूतानां इहलोकपरलोकेष्ट-फलप्रदानामर्थं ज्ञात्वा पश्चादनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण वचनोच्चारणेन च जापं कुरुत। तथैव शुभोपयोगरूपत्रिगुप्तावस्थायां मौनेन ध्यायत।"** अर्थात्—सब मन्त्रशास्त्रके पदोंमें सारभूत और इस लोक तथा परलोकमें इष्ट फलको देनेवाले परमेष्ठी वाचक पञ्च पदोंका अर्थ जानकर, पुनः अनन्तज्ञानादि गुणोंके स्मरणरूप वचनका उच्चारण करके जप करना चाहिए और इसी प्रकार शुभोपयोगरूप इस मन्त्रका मन, वचन और काय गुप्तिको रोककर मौन-द्वारा ध्यान करना चाहिए। सर्वभूतहितरत, अचिन्त्यचरित्र ज्ञानामृतपयःपूर्ण तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले, दिव्य, निर्विकार, निरजन विशुद्ध ज्ञान लोचनके धारक, नवकेवललब्धियोंके स्वामी, अष्टमहाप्रातिहार्योंसे विभूषित स्वयम्बुद्ध अरिहंत परमेष्ठीका ध्यान भी किया जाता है, अथवा सामूहिक रूपमें पञ्चपरमेष्ठीका मौन चिन्तन भी ध्यानका रूप ग्रहण कर लेता है।

पदस्थ और रूपस्थ दोनों प्रकारके ध्यानोंमें इस महामन्त्रके स्मरण द्वारा ही आत्माकी सिद्धि की जाती है, क्योंकि महामन्त्र और शुद्धात्मामें कोई अन्तर नहीं है। शुद्धात्माका वर्णन ही महामन्त्रमें है और उसीके ध्यानसे निर्विकल्प समाधिकी प्राप्ति होती है। अतः ध्यानका दृढ अभ्यास हो जानेपर साधकको यह अनुभव करना आवश्यक है कि मैं परमात्मा हूँ, सर्वज्ञ हूँ, मैं ही साध्य हूँ, मैं ही सिद्ध हूँ, सर्वज्ञाता और सर्वदर्शी भी मैं ही हूँ। मैं सत्, चित् आनन्दरूप हूँ, अज हूँ, निरजन हूँ। इस प्रकार चिन्तन करता हुआ साधक जब समस्त संकल्प विकल्पोंसे विमुक्त हो अपने आपमें विलीन हो जाता है, तब उसे निर्विकल्प ध्यान या परम समाधिकी प्राप्ति होती है।

हेमचन्द्राचार्यने अपने योगशास्त्रमें योगाङ्गोंके साथ णमोकार मन्त्रका सम्बन्ध दिखलाते हुए बतलाया है कि योगाभ्यास-द्वारा शरीर और मनकी क्रियाओंका नियन्त्रण कर आत्माको ध्यानके मार्गमें ले जाना चाहिए। साधक सविकल्प समाधिकी अवस्थामें इस अनादिसिद्ध मन्त्रके ध्यानसे अन्तः आत्माको पवित्र करता है। पञ्चपरमेष्ठीके तुल्य शुद्ध होकर निर्वाण मार्गका आश्रय लेता है। बताया गया है—

ध्यायतोऽनादिससिद्धान् वर्णानेतान् यथाविधिः।
नष्टादिविषये ज्ञानं ध्यातुरुत्पद्यते क्षणात्॥
तथा पुण्यतमं मन्त्रं जगत्त्रितयपावनम्।
योगी पञ्चपरमेष्ठीनमस्कारं विचिन्तयेत्॥
विशुद्धया चिन्तयंस्तस्य शतमष्टोत्तरं मुनिः।
भुञ्जानोऽपि लभेतैव चतुर्थतपस. फलम्॥
एनमेव महामन्त्रं समाराध्येह योगिनः।
त्रिलोक्यापि महीयन्तेऽधिगताः परमां श्रियम्॥

अर्थात्—अनादि सिद्ध णमोकार मन्त्रके वर्णोंका ध्यान करनेसे साधकको नष्टादि विषयका ज्ञान क्षणभरमें हो जाता है। यह मन्त्र तीनों लोकोंके जीवोंको पवित्र करता है। इसके ध्यानसे—अन्तर्जल्प रहित चिन्तनसे आत्मामें अपूर्व शक्ति आती है। नित्य मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक इस मन्त्रका १०८ बार ध्यान करनेसे भोजन करनेपर भी चतुर्थोपवास—प्रोषधोपवासका फल प्राप्त होता है। योगी व्यक्ति इस मन्त्रकी आराधनासे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त होता है तथा तीनों लोकोंमें पूज्य हो जाता है।

णमोकार मन्त्रकी सभी मात्राएँ अत्यन्त पवित्र हैं, इन मात्राओंमेंसे किसी मात्राका तथा णमोकार मन्त्रके ३५ अक्षरों और पाँच पदोंमेंसे किसी अक्षर और पदका अथवा इन अक्षरों, पदों और मात्राओंके सयोगसे उत्पन्न अक्षर, पदों और मात्राओंका जो ध्यान करता है, वह सिद्धिको

प्राप्त होता है। ध्यानके अवलम्बन णमोकार मन्त्रके अक्षर, पद और ध्व
ही हैं। जब तक साधक सविकल्प समाधिमें रहता है, तब तक उसके ध्या
अवलम्बन णमोकार ही होता है। हेमचन्द्राचार्यने पदस्थ ध्यानका व
करते हुए बताया है—

यत्पदानि पवित्राणि समालम्ब्य विधीयते।
तत्पदस्थं समाख्यातं ध्यानं सिद्धान्तपारगैः॥

अर्थात्—पवित्र णमोकार मन्त्रके पदोंका आलम्बन लेकर जो ध
किया जाता है, उसको पदस्थध्यान सिद्धान्तशास्त्रके ज्ञाताओंने कहा
रूपस्थ ध्यानमें अरिहन्तके स्वरूपका अथवा णमोकार मन्त्रके स्वरूपका चि
करना चाहिए। रूपस्थ ध्यानमें आकृति विशेषका ध्यान करनेका वि
है। यह आकृति-विशेष पञ्चपरमेष्ठीकी होती है तथा विशेष रूपसे इ
अरिहन्त भगवान्की मुद्राका ही आलम्बन किया जाता है।

रूपातीतमें ज्ञानावरणादि आठ कर्म और औदारिकादि पाँच शरी
रहित, लोक और अलोकके ज्ञाता, द्रष्टा, पुरुषाकारके धारक, लोका
विराजमान सिद्धपरमेष्ठी ध्यानके विषय हैं तथा णमोकार मन्त्रकी रूपा
रहित, उसका भाव या पञ्चपरमेष्ठीके अमूर्तिक गुण ध्यानका आलम्बन
हैं। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती और शुभचन्द्रने रूपातीत ध्या
अमूर्तिक अवलम्बन माना है तथा यह अमूर्तिक अवलम्बन णमो
मन्त्रके पदोक्त गुणोंका होता है। हरिभद्रसूरिने अपने योगबिन्दु ग्र
"अक्षरद्वयमेतत् श्रूयमाणं विधानतः" इस श्लोककी स्वोपज्ञटीका में ये
शास्त्रका सार णमोकार मन्त्रको बताया है। इस महामन्त्रकी आराध
समता भावकी प्राप्ति होती है तथा आत्मसिद्धि भी इसी मन्त्रके ध्या
आती है। अधिक क्या, इस मन्त्रके अक्षर स्वयं योग हैं। इसकी प्रत्येक मा
प्रत्येक पद, प्रत्येकवर्ण अमितशक्तिसम्पन्न है। वह लिखते है "अक्षरद्व
मपि किं पुन: पञ्चनमस्कारादीन्यनेकान्यक्षराणीत्यपिशब्दार्थः। ए

र्थोऽनवबोधेऽपि 'विधानतो' विधानेन श्रद्धासंवेगादिशुद्धभावोल्लास-करकुड्मलयोजनादिलक्षणेन, गीतयुक्तं पापक्षयाय मिथ्यात्वमोहाद्य-कुशलकर्मनिर्मूलनायोच्चैरित्यर्थम्"। अर्थात् ध्यान करनेके लिए ध्येय णमोकार मन्त्रके अक्षर, पद एव ध्वनियॉ है। इन्हींको योग भी कहा जाता है, यदि इन शब्दोको सुनकर भी अर्थका बोध न हो तो भी श्रद्धा, सवेग और शुद्ध भावोल्लासपूर्वक हाथ जोड़कर इस मन्त्रका जाप करनेसे मिथ्यात्व, मोह आदि अशुभ कर्मोंका नाश होता है। इससे स्पष्ट है कि हरिभद्रसूरिने पञ्चपरमेष्ठी वाचक णमोकार मन्त्रके अक्षरोको 'योग' कहा है। अतएव णमोकारमन्त्र स्वय योगशास्त्र है, योगशास्त्रके सभी ग्रन्थोंका प्रणयन इस महामन्त्रको हृदयंगम करने तथा इसके ध्यान-द्वारा आत्माको पवित्र करनेके लिए हुआ है। 'योग' शब्दका अर्थ जो सयोग किया जाता है, उस दृष्टिसे णमोकार मन्त्रके अक्षरोंका सयोग—शुद्धात्माका चिन्तनकर अर्थात् शुद्धात्माओसे अपना सम्बन्ध जोडकर अपनी आत्माको शुद्ध बनाना है 'धर्म व्यापार' को जब योग कहा जाता है, उस समय णमो-कार मन्त्रोक्त शुद्धात्माके व्यापार—प्रयोग—ध्यान, चिन्तन-द्वारा अपनी आत्माको शुद्ध करना अभिप्रेत है। अतएव णमोकारमन्त्र और योगका प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है, क्योंकि आचार्योंने अभेद विवक्षासे णमोकारमन्त्रको योग कहा है, इस दृष्टिसे योगका तादात्म्यभाव सम्बन्ध भी सिद्ध होता है। तथा भेद विवक्षासे णमोकार मन्त्रकी साधनाके लिए योगका विधान किया है। अर्थात् योग-क्रिया-द्वारा णमोकार मन्त्रकी साधना की जाती है, अतः इस अपेक्षासे योगको साधन और णमोकार मन्त्रको साध्य कहा जा सकता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्यय इन पञ्चाङ्गों-द्वारा णमोकार मन्त्रको साधने योग्य शरीर और मनको एकाग्र किया जाता है। ध्यान और धारणा क्रिया-द्वारा मन, वचन और कायकी चचलता बिल्कुल रुक जाती है तथा साधक णमोकार मन्त्र रूप होकर सविकल्प समाधिको पार करनेके उपरान्त निर्विकल्प समाधिको प्राप्त होता है।

जिस प्रकार रातमे समस्त बाहरी कोलाहलके रुक जानेपर रेडियोकी आवाज साफ सुनाई पडती है तथा दिनमे शब्द-लहरोपर बाहरी वातावरणका घात-प्रतिघात होता रहता है, अतः आवाज साफ सुनाई नहीं पडती है। पर रातमे शब्द लहरोपरसे आघात छूट जानेपर स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ने लगती है। इसी प्रकार जब तक हमारे मन, वचन और काय स्थिर नहीं नहीं होते है, तब तक णमोकार मन्त्रकी साधनामे आत्माको स्थिरता प्राप्त नहीं होती है, किन्तु उक्त तीनों—मन, वचन और कायके स्थिर होते ही साधनामे निश्चलता आ जाती है। इसी कारण कहा गया है कि साधकको ध्यान-सिद्धिके लिए चित्तकी स्थिरता रखनी परम आवश्यक है। मनकी चचलतामे ध्यान बनता नहीं। अतः मनोनुकूल स्त्री, वस्त्र, भोजनादि इष्ट पदार्थोंमे मोह न करो, राग न करो और मनके प्रतिकूल पडनेवाले सर्प, विष, कटक, शत्रु, व्याधि आदि अनिष्ट पदार्थोंमे द्वेष मत करो, क्योंकि इन इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंमें राग-द्वेष करनेसे मन चचल होता है और मनके चचल रहनेसे निर्विकल्प समाधिरूप ध्यानका होना सभव नहीं। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने इसी बातको स्पष्ट किया है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठ अट्ठेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्त विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए॥

णमोकार मन्त्रका बार-बार स्मरण, चिन्तन करनेसे मस्तिष्कमे स्मृति-चिह्न (Memory Trace) बन जाते हैं, जिससे इस मन्त्रकी धारणा (Retaining) हो जानेसे व्यक्ति अपने मनको आत्म चिन्तनमे लगा सकता है। अभिरुचि, अर्थ, अभ्यास, अभिप्राय, जिज्ञासा और मनोवृत्तिके कारण ध्यानमे मजबूती आती है। जब ध्येयके प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो जाती है तथा ध्येयका अर्थ अवगत हो जाता है और उस अर्थको बारबार हृदयगम करनेकी जिज्ञासा और मनोवृत्ति बन जाती है, तब ध्यानकी क्रिया पूर्णताको प्राप्त हो जाती है। अतएव योग-मार्गके द्वारा णमोकार मन्त्रकी

साधनामे सहायता प्राप्त होती है। इस मार्गकी अनभिज्ञतामे व्यक्तिको ध्येय वस्तुके प्रति अभिरुचि, अर्थ, अभ्यास आदिका आविर्भाव नहीं हो पाता है। अतः णमोकार मन्त्रकी साधना योग-द्वारा करना चाहिए।

आगम-साहित्य और णमोकारमन्त्र

आगम साहित्यको श्रुतज्ञान कहा जाता है। णमोकार मन्त्रमें समस्त श्रुतज्ञान है तथा यह समस्त आगमका सार है। दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी इन तीनों ही सम्प्रदायके आगममे णमोकार महामन्त्रके सम्बन्धमे बहुत कुछ पाया जाता है। आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग आदि नाम द्वादशागके तीनो ही सम्प्रदायमें एक हैं। दिगम्बर सम्प्रदायमें १४ अग बाह्य तथा ४ अनुयोग प्रमाणभूत, श्वेताम्बर सम्प्रदायमे ३४ अग बाह्य—१२ उपाग, १० प्रकीर्णक, ६ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र और दो चूलिका सूत्र प्रमाणभूत एव स्थानकवासी सम्प्रदायमें २१ अग बाह्य, १२ उपाग, ४ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र और १ आवश्यक प्रमाणभूत माने गये है। इन सभी आगम ग्रन्थोंमे णमोकारका व्याख्यान, उत्पत्ति, निक्षेप, पद, पदार्थ, प्ररूपणा, वस्तु, आक्षेप, प्रसिद्धि, क्रम, प्रयोजन और फल इन दृष्टिकोणोसे किया गया है।

उत्पत्ति द्वारमे नयोका अवलम्बन लेकर णमोकारमन्त्रकी उत्पत्ति और अनुत्पत्ति—नित्यानित्यत्वका विस्तारसे विचार किया गया है। क्योंकि वस्तुके स्वरूपका वास्तविक विवेचन नय और प्रमाणके बिना हो नहीं सकता। नयके जैनागममें सात भेद है—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत। सामान्यने नयके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो भेद किये जाते हैं। द्रव्यको प्रधान रूपसे विषय करनेवाला नय द्रव्यार्थिक और पर्यायको प्रधानतः विषय करनेवाला पर्यायार्थिक कहा जाता है। पूर्वोक्त सातों नयोंमेसे नैगम, सग्रह और व्यवहार ये तीन भेद द्रव्यार्थिकके और ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत पर्यायार्थिक नयके भेद हैं। सातों नयोकी अपेक्षासे इस महामन्त्रकी उत्पत्ति और अनुत्पत्तिके सम्बन्धमे विचार करते हुए कहा जाता है कि द्रव्यार्थिक नयकी

अपेक्षा यह मन्त्र नित्य है। शब्द रूप पुद्गलवर्गणाएँ नित्य हैं, उनका कभी विनाश नहीं होता है। कहा भी है—

उप्पण्णाऽणुप्पण्णो इत्थ नया णोगमस्सऽणुप्पण्णो।
सेसाणं उप्पण्णो जइ कत्तो तिविह सामित्ता॥

अर्थात्—नैगमनयकी अपेक्षा यह णमोकार मन्त्र अनुत्पन्न—नित्य है। सामान्य मात्र विषयको ग्रहण करनेके कारण इस नयका विषय ध्रौव्यमात्र है। उत्पाद और व्ययको यह नहीं ग्रहण करता, अतएव इस नयकी अपेक्षासे यह मन्त्र नित्य है। विशेष पर्यायको ग्रहण करनेवाले नयोंकी अपेक्षासे यह मन्त्र उत्पाद-व्ययसे युक्त है। क्योंकि इस महामन्त्रकी उत्पत्तिके हेतु समुत्थान, वचन और लब्धि ये तीन हैं। णमोकारमन्त्रका धारण सशरीरी प्राणी करता है और शरीरकी प्राप्ति अनादिकालसे बीजांकुर न्यायसे होती आ रही है तथा प्रत्येक जन्ममे भिन्न-भिन्न शरीर होते हैं, अतः वर्तमान जन्मके शरीरकी अपेक्षा णमोकारमन्त्र सादि और सोत्पत्तिक है। इस मन्त्रकी प्राप्ति गुरुवचनोसे होती है, अतः उत्पत्तिवाला होनेसे सादि है। इस महामन्त्रकी प्राप्ति योग्य श्रुतज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होने पर ही होती है, इस अपेक्षासे यह मन्त्र उत्पाद व्ययवाला प्रमाणित होता है।

उपर्युक्त विवेचनसे सिद्ध होता है कि नैगम, संग्रह और व्यवहार नयकी अपेक्षा यह मन्त्र नित्य, अनित्य दोनों प्रकारका है। ऋजुसूत्र नयकी अपेक्षा इस महामन्त्रकी उत्पत्तिमे वचन—उपदेश और लब्धि ज्ञानावरणीय और वीर्यान्तरायकर्मका क्षयोपशम विशेष कारण है तथा शब्दादि-नयकी अपेक्षा केवललब्धि ही कारण है। इन पर्यायार्थिक नयोंकी अपेक्षासे यह णमोकारमन्त्र उत्पाद व्ययात्मक है। कहा भी गया है—

"आद्यनैगम· सत्तामात्रग्राही, ततस्तस्याद्यनैगमस्य मतेन सर्ववस्तु नाभूतं नाविद्यमानं किन्तु सर्वदैव सर्वं सदेव। अतः आद्यं नैगमस्य, स नमस्कारो नित्य एव वस्तुत्वात् नभोवत्।"

शब्द और अर्थकी अपेक्षासे भी यह णमोकारमन्त्र नित्यानित्यात्मक है। शब्द नित्य और अनित्य दोनो प्रकारके होते है। अतः सर्वथा शब्दोंको नित्य माना जाय तो सभी स्थानो पर शब्दोंके श्रवणका प्रसग आवेगा और अनित्य माना जाय तो नित्य सुमेरु, चन्द्र, सूर्य आदिका सकेत शब्दसे नहीं हो सकेगा। अतः पौद्गलिक शब्द-वर्गणाएँ नित्य हैं यथा व्यवहारमें आनेवाले शब्द अनित्य है। शब्दोंके नित्यानित्यात्मक होनेसे णमोकार मन्त्र भी नित्यानित्यात्मक है। अर्थकी दृष्टिसे यह नित्य है, क्योंकि इसका अर्थ वस्तुरूप है और वस्तु अनादिकालसे अपने स्वरूपमे अवस्थित चली आ रही है और अनन्तकाल तक अवस्थित चली जायगी। सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ग्रहण और विवेचन नय तथा प्रमाणके द्वारा ही हो सकता है। प्रमाण-नयात्मक वस्तु उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मक हुआ करती है और उत्पाद-व्यय ध्रौव्यात्मक ही वस्तु नित्यानित्य कही जाती है।

निक्षेप—अर्थ-विस्तारको निक्षेप कहते हैं। निक्षेप-विस्तारमे णमोकार मन्त्रके अर्थका विस्तार किया जाता है। निक्षेपके चार भेद हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। णमोकार मन्त्रका भी नाम नमस्कार, स्थापना नमस्कार, द्रव्य नमस्कार और भाव नमस्कार इन चार अर्थोंमें प्रयोग होता है। 'नमः' कह कर अक्षरोका उच्चारण करना नाम नमस्कार और मूर्त्ति, चित्र आदिमे पञ्चपरमेष्ठीकी स्थापना कर नमस्कार करना स्थापना

---

१. अनभिनिर्वृत्तार्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः। स्वजात्यविरोधेनैकध्यमुपनीय पर्यायानाक्रान्तभेदानविशेषेण समस्तग्रहणात्संग्रहः। सग्रहनयाक्षिप्तानामर्थाना विधिपूर्वकमवहरण व्यवहारः। ऋजु प्रगुण सूत्रयति तन्त्रयति इति ऋजुसूत्रः। लिङ्गसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपर. शब्दनय. । नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढ'। येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीत्येवम्भूतः। अथवा येनात्मना येन ज्ञानेन भूत. परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति। —सर्वार्थसिद्धि पृ० ८४-८७।

नमस्कार है । द्रव्य नमस्कारके दो भेद हैं—आगम द्रव्य नमस्कार और नोआगम द्रव्य नमस्कार । उपयोग रहित 'नमः' इस शब्दका प्रयोग करना आगम नमस्कार और उपयोग सहित नमस्कार करना नोआगम नमस्कार होता है । इसके तीन भेद हैं—ज्ञायक, भाव्य और तद्व्यतिरिक्त । भाव नमस्कारके भी दो भेद हैं—आगम भाव नमस्कार और नोआगमभाव नमस्कार । णमोकार मन्त्रका अर्थज्ञाता, उपयोगवान् आत्मा आगम भाव नमस्कार और उपयोग सहित 'णमो अरिहंताणं' इन वचनोंका उच्चारण तथा हाथ, पाँव, मस्तक आदिकी नमस्कार सम्बन्धी क्रियाको करना नोआगम भाव नमस्कार है । इस प्रकार निक्षेप-द्वारा णमोकार मन्त्रके अर्थका आशय हृदयगम किया जाता है ।[1]

पद-द्वार—"पद्यते गम्यतेऽर्थोऽनेनेति पदम्" अर्थात् जिसके द्वारा अर्थ बोध हो, उसे पद कहते हैं । इसके पाँच भेद हैं—नामिक, नैपातिक, औपसर्गिक, आख्यातिक और मिश्र । संज्ञावाचक प्रत्ययोंसे सिद्ध होने वाले शब्द नामिक कहे जाते है, जैसे अश्व, घट आदि । अव्ययवाची शब्द नैपातिक कहे जाते हैं, जैसे खलु, ननु, च आदि । उपसर्ग वाचक प्रत्ययोंको शब्दोंके पहले जोड़ देनेसे जो नवीन शब्द बनते है, वे औपसर्गिक कहे जाते हैं । जैसे परिगच्छति, परिधावति । क्रिया वाचक धातुओंसे निष्पन्न होने वाले शब्द आख्यातिक कहलाते है, जैसे धावति, गच्छति आदि । कृदन्त—कृत प्रत्यय और तद्धित प्रत्ययोंसे निष्पन्न शब्द मिश्र कहे जाते हैं, जैसे नायकः, पावकः, जैनः, संयतः आदि । पद-द्वारका प्रयोजन णमोकार मन्त्रमे प्रयुक्त शब्दोंका वर्गीकरण कर उनके अर्थका अवधारण करना है । शब्दोंकी निष्पत्तिको ध्यानमें रखकर नैपातिक प्रभृति शब्दोंका अर्थ एवं उनका रहस्य अवगत करना ही इस द्वारका उद्देश्य है । कहा गया है । "निपतत्यर्हदादिपदानामादिपर्यन्तयोरिति निपातः, निपातादागतं तेन वा निर्वृत्तं स एव वा स्वार्थिकप्रत्ययविधानान्नैपातिकम्—नमः इति पदम्" । तात्पर्य यह है कि

१—विशेषके लिए देखें धवलाटीका प्रथम पुस्तक पृ० ८-६०

णमोकार मन्त्रके पदोंकी प्रकृति और प्रत्ययकी दृष्टिसे व्याख्या करना पद-द्वार है। इस द्वारकी उपयोगिता शब्दोंकी शक्तिको अवगत करनेमें है। शब्दोंमे नैसर्गिक शक्ति पायी जाती है और इस शक्तिका बोध इसी द्वारके द्वारा सम्भव है। जब तक शब्दोका व्याकरणके प्रकृति-प्रत्ययकी दृष्टिसे वर्गीकरण नहीं किया जाता है, तब तक यथार्थ रूपमे शब्द-शक्तिका बोध नहीं हो सकता। णमोकार मन्त्रके समस्त पद कितने शक्तिशाली हैं तथा पृथक् पृथक् पदोंमे कितनी शक्ति है और इन पदोकी शक्तिका उपयोग आत्म-कल्याणके लिए किस प्रकार किया जा सकता है? आत्माकी कर्मावरणके कारण अवरुद्ध शक्ति किस प्रकार इस महामन्त्रकी शक्तिके द्वारा प्रस्फुटित हो सकती है? आदि बातोंका विचार इस पद-द्वारमे होता है। यह केवल शब्दोंकी रचना या उस रचना-द्वारा सम्पन्न व्युत्पत्तिका ही प्रदर्शन नहीं करता, बल्कि इस मन्त्रकी पद, अक्षर और ध्वनि शक्तिका विश्लेषण करता है।

पदार्थद्वार—द्रव्य और भावपूर्वक णमोकार मन्त्रके पदोकी व्याख्या करना पदार्थद्वार है। "इह नमोऽर्हद्भ्यः, इत्यादिषु यत् नम. इति पदं तस्य नम इति पदस्यार्थः पदार्थ, स च पूजालक्षणः, स च का? इत्याह द्रव्यसकोचनं भावसकोचनं च। तत्र द्रव्यसंकोचनं करशिरः पदादि-सकोचः। भावसकोचनं तु विशुद्धस्य मनसोऽर्हदादिगुणेषु निवेशः।" अर्थात् नम अर्हद्भ्यः इत्यादि पदोंमे नमः शब्द पूजार्थक है। पूजा दो प्रकारसे सम्पन्न की जाती है—द्रव्य-सकोच और भाव-सकोच द्वारा। द्रव्य-सकोचसे अभिप्राय है हाथ, सिर आदिका झुकाना—नम्रीभूत करना और भाव सकोचका तात्पर्य भगवान् अरिहन्तके गुणोंमे मनको लगाना। द्रव्य सकोच और भावसकोचके सयोगी चार भग होते हैं—[१] द्रव्यसकोच न भाव-सकोच, [२] भाव सकोच न द्रव्यसकोच, [३] द्रव्यसकोच भाव संकोच और [४] न द्रव्य-सकोच न भाव-सकोच। हाथ, सिर आदिको नम्र करना, किन्तु भीतरी अन्तरग परिणतिमें नम्रताका न आना अर्थात् अन्तरंग परि-णामोंमे नम्रभावका अभाव हो और ऊपरसे श्रद्धा प्रकट करना यह प्रथम

भगका अर्थ है। दूसरे भगके अनुसार भीतर परिणामोंमें श्रद्धाभाव रहे, किन्तु ऊपर श्रद्धा न दिखलाना। फलतः नमस्कार करते समय भीतर श्रद्धा रहने पर भी, हाथ न जोड़ना और सिर को न झुकाना। तृतीय भगका अर्थ है कि भीतर भी श्रद्धा हो और ऊपरसे भी हाथ जोड़ना, सिर झुकाना आदि नमस्कारकी क्रियाओंको सम्पन्न करे। चौथे भगका अर्थ है कि भीतर भी श्रद्धाकी कमी और ऊपर भी नमस्कार-सम्बन्धी क्रियाओंका अभाव रहे।

पदार्थद्वारका तात्पर्य यह है कि द्रव्यभाव शुद्धिपूर्वक णमोकार मन्त्रका स्मरण, मनन और जप करना। श्रद्धापूर्वक पञ्चपरमेष्ठीको शरणमें जाने तथा शरण सूचक शारीरिक क्रियाओंके सम्पन्न करनेसे ही आत्मामें शक्तिका जागरण होता है। कर्माविष्ट आत्मा शुद्धात्माओंको द्रव्य भावकी शुद्धि पूर्वक नमस्कार करनेसे उनके आदर्शसे तद्रूप बनती है।

प्ररूपणाद्वार—वाच्य वाचक प्रतिपाद्य-प्रतिपादक विषय-विषयी भावकी दृष्टिसे णमोकार मन्त्रके पदोंका व्याख्यान करना प्ररूपणाद्वार है। इसमें किं, कस्य, केन, क्व, कियत्कालं और कतिविधं इन छः प्रश्नोंका अर्थात् निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधानका समाधान किया जाता है। सबसे पहले यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि णमोकारमन्त्र क्या वस्तु है? जीव है या अजीव? जीव अजीवमें भी द्रव्य है या गुण? नैगम आदि नयोंकी अपेक्षा जीव ही णमोकार है, क्योंकि ज्ञानमय जीव होता है और णमोकार श्रुतज्ञानमय है। अतएव पञ्चपरमेष्ठी वाचक णमोकारमन्त्र जीव है। इसकी रूपाकृति—शब्दोंको अजीव कहा जा सकता है, पर, भाव जो कि ज्ञानमय है, जीवस्वरूप है। द्रव्य और गुणके प्रश्नोंमें गुणोंका समुदाय द्रव्य होता है तथा द्रव्य और गुणमें कथञ्चित् भेदाभेदात्मक सम्बन्ध है, अत. णमोकार मन्त्र कथञ्चित् द्रव्यात्मक और कथञ्चित् गुणात्मक है।

यह नमस्कार किसको किया जाता है, इस प्रश्नका उत्तर यह है कि

यह नमस्कार पूज्य—नमस्कार करने योग्योंको किया जाता है। पूज्य जीव और अजीव दोनों हो सकते हैं। जीवमें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु तथा अजीवमें इनकी प्रतिमाएँ नमस्कार्य होती हैं।

'केन' किस प्रकारसे णमोकार मन्त्रकी उपलब्धि होती है, इस प्ररूपणामें निर्युक्तिकारने बताया है कि जब तक अन्तरगमें क्षयोपशमकी वृद्धि नहीं होती है, इस मन्त्र पर आस्था नहीं उत्पन्न हो सकती है। कहा है—

> नाणाऽऽवरणिज्जस्स य, दंसणमोहस्स जो खओवसमो।
> जीवमजीवे अट्ठसु भंगेसु य होइ सव्वत्थ ॥ २८९२ ॥

अर्थात्—जीवके ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंमेंसे—मतिज्ञानावरण, श्रुत-ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके साथ मोहनीयकर्मका क्षयोपशम होने पर णमोकार मन्त्र की प्राप्ति होती है। णमोकार मन्त्र श्रुतज्ञानरूप होता है और श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है, अतः मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमके साथ, मोहनीय कर्मका क्षयोपशम भी होना आवश्यक है। क्योंकि आत्मस्वरूपके प्रति आस्था मिथ्यात्व कर्मके अभावमें ही होती है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभके विसंयोजनके साथ मिथ्यात्वका क्षय, उपशम या क्षयोपशम होना इस मन्त्रकी उपलब्धिके लिए आवश्यक है। इस महामन्त्रकी उपलब्धिमें अन्तरायकर्मका क्षयोपशम भी एक कारण है। यतः भीतरी योग्यताके प्रकट होने पर ही इस महामन्त्रकी उपलब्धि होती है।

'क्व' यह नमस्कार कहाँ होता है? इसका आधार क्या है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि यह नमस्कार जीवमें, अजीवमें, जीव-अजीवमें, जीव-अजीवोंमें, अजीव-जीवोंमें, जीवों-अजीवोंमें, जीवोंमें और अजीवोंमें कथञ्चिद्भेदाभेदात्मकता होनेके कारण होता है। क्योंकी भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ होनेके कारण उपर्युक्त आठ भंगोमेंसे कभी एक भंग आधार, कभी दो भंग आधार, कभी तीन भंग आधार और कभी इससे अधिक भंग आधार होते है।

'कियत्कालं' नमस्कार कितने समय तक होता है, इस प्रश्नका समाधान करते हुए बताया गया है कि उपयोगकी अपेक्षासे नमस्कारका उत्कृष्ट और जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। कर्मावरण क्षयोपशमरूप लब्धिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल ६६ सागरसे अधिक होता है।

'कतिविधो नमस्कार.'—कितने प्रकारका नमस्कार होता है, इस प्ररूपणामे बताया गया है कि अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पॉचों पदोंके पूर्वमे णमो—नमः शब्द पाया जाता है। अतः पॉच प्रकारका नमस्कार होता है। इस प्रकार इस प्ररूपणा-द्वारमे निर्देश, स्वामित्व, साधन, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्प-बहुत्वकी अपेक्षासे भी वर्णन किया गया है।

वस्तुद्वार—गुण-गुणीमे कथञ्चिद्भेदाभेदात्मकता होनेसे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पॉचो परमेष्ठी ही नमस्कार करने योग्य वस्तु हैं। व्यक्ति रत्नत्रयरूप गुणोंको इसलिए नमस्कार करता है कि उन गुणोंकी प्राप्ति उसे अभीष्ट होती है। संसार-अटवीसे पार होनेका एक मात्र साधन रत्नत्रय है, अतः गुणगुणीमे भेदाभेदात्मकता होनेके कारण रत्नत्रय गुणको तथा उनके धारण करनेवाले पञ्चपरमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है। यही इस णमोकारमन्त्रकी वस्तु है।

आक्षेपद्वार—णमोकारमन्त्रके संबंधमे कुछ शंकाएँ की गयी हैं। इन शंकाओंका विवरण ही इस द्वारमे किया गया है। बताया गया है कि सिद्ध और साधु इन दोनोंको नमस्कार करनेसे काम चल सकता है, फिर पॉच शुद्धात्माओंको नमस्कार क्यों किया गया है? क्योंकि जीवन्मुक्त अरिहंत का सिद्धमे और न्यून रत्नत्रय गुणधारी आचार्य और उपाध्यायका साधु-परमेष्ठीमे अन्तर्भाव हो जाता है, अतः पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार करना उचित नहीं। यदि यह कहा जाय कि विशेष दृष्टिसे भिन्नत्वकी सूचना देनेके लिए नमस्कार किया है तो सिद्धोंके अवगाहना, तीर्थ, लिंग, क्षेत्र, काल आदिकी अपेक्षासे अनेक भेद होते हैं तथा अरिहन्तोंके तीर्थंकर अरिहंत,

सामान्य अरिहन्त आदि भी अनेक भेद है। इसी प्रकार आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठीके भी अनेक भेद हो जाते हैं। इस प्रकार सब परमेष्ठी अनन्त हो जायँगे, फिर इन्हें पाँच मानकर नमस्कार करना कैसे उपयुक्त कहा जायगा।

प्रसिद्धिद्वार—इस द्वारमें पूर्वोक्त द्वारमें आपादित शकाओंका निराकरण किया गया है। द्विविध नमस्कार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अव्यापकपनेका दोष आयगा। सिद्ध कहनेसे अरिहन्तके समस्त गुणोंका बोध नहीं होता है, इसी प्रकार साधु कहनेसे आचार्य और उपाध्यायके गुणोंका भी ग्रहण नहीं होता है। अतएव सक्षेपसे द्विविध परमेष्ठीको नमस्कार करना अयुक्त है। निर्युक्तिकारने भी बताया है—

अरिहन्ताऽऽई नियमा, साहूसाहू उ ते सू भइयव्वा।
तम्हा पंचविहो खलु हेउनिमित्तं हवइ सिद्धो ॥ ३२०२॥

साधुमात्रनमस्कारो विशिष्टोऽर्हदादिगुणनमस्कृतिफलप्रापणसमर्थो न भवति। तत्सामान्याभिधाननमस्कारकृतत्वात्, मनुष्यमात्रनमस्कारवत्, जीवमात्रनमस्कारवद्वेति। तस्मात्संक्षेपतोऽपि पञ्चविध एव नमस्कारो, न तु द्विविधः अव्यापकत्वात्; विस्तरतस्तु नमस्कारो न विधीयते अशक्यत्वात्।

अर्थात्—साधुमात्रका कथन करनेसे आचार्य और उपाध्यायके गुणोंका स्मरण नहीं हो सकता है। क्योकि सामान्य कथनसे विशेषकी उपलब्धि नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मनुष्य-सामान्यको नमस्कार करनेसे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुके गुणोंका स्मरण नहीं हो सकता है और न तद्रूप बननेकी प्रेरणा ही मिल सकती है। अतः पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार करना आवश्यक है, परमेष्ठियोंके नमस्कारसे कार्य नहीं चल सकता है। जो अनन्त परमेष्ठियोंको नमस्कार करनेकी बात कही गयी है, उसका समाधान 'सव्व' पदके द्वारा हो जाता है। यह पद सभी परमेष्ठियोंके साथ जोड़ा जा सकता है, जिससे अनन्त अर्हन्त, अनन्त सिद्ध, अनन्त आचार्य, अनन्त उपाध्याय और अनन्त साधुओंका ग्रहण हो ही जाता

है। शक्ति सीमित होनेके कारण पृथक्-पृथक् अनन्त परमेष्ठियोंका निरूपण नहीं किया गया है। सामान्यके अन्तर्गत विशेष भेदोंका भी ग्रहण हो गया है।

क्रमद्वार[1]—किसी भी वस्तुका विवेचन क्रमसे किया जाता है। णमोकार मन्त्रके विवेचनमें पदोंका क्रम ठीक नहीं रखा गया है। क्रम दो प्रकारका होता है—पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी। णमोकार मन्त्रमें पूर्वानुपूर्वी क्रमका निर्वाह नहीं किया गया है, क्योंकि सिद्धोंका आत्मा पूर्ण विशुद्ध है, समस्त आत्मिक गुणोंका विकास सिद्धोंमें ही है। अतएव विशुद्धिकी अपेक्षा पूज्य होनेके कारण सिद्धोंको सर्व प्रथम नमस्कार होना चाहिए था, पर णमोकार मन्त्रमें ऐसा नहीं किया गया है। अतः पूर्वानुपूर्वीक्रम यहाँ पर नहीं है। पश्चानुपूर्वी क्रमका भी निर्वाह यहाँ पर नहीं किया गया है, क्योंकि इस क्रमसे सबसे पहले साधुको नमस्कार और सबसे पीछे सिद्धोंको नमस्कार होना चाहिए था। समाधान—उपर्युक्त शका ठीक नहीं है। यहाँ पूर्वानुपूर्वी क्रम ही है। सिद्धोंकी अपेक्षा अरिहन्त अधिक उपकारी हैं, क्योंकि इन्हींके उपदेशसे

---

१. पुव्वाणुपुव्वि न कमो, नेव य पच्छाणुपुव्विए स भवे। सिद्धाऽऽईया पढमा। बिइयाए साहुणो आइ ॥ ३२१० ॥ इह क्रमस्तावत् द्विविध'—पूर्वानुपूर्वी वा पश्चानुपूर्वी वेति। अनानुपूर्वी किल क्रम एव न भवति असङ्ग-सत्त्वात्। तत्रायमर्हदादिक्रम· पूर्वानुपूर्वी न भवति, सिद्धानामदावनभिधाना देकान्तकृतकृत्वेन। अर्हन्नमस्कार्यत्वेन सिद्धानां प्रधानत्वात्, प्रधानस्य चाभ्यर्हितत्वेन पूर्वाभिधानादिति भावार्थः। तथा नैव च पश्चानुपूर्वी, एष क्रमो भवेत्, साधूनां प्रथमसनभिधानात्, इहाप्रधानत्वात्सर्वपाश्चात्या हि साधवः। ततश्च तानादौ प्रतिपाद्य यदि पर्यन्ते सिद्धाभिधानं स्यात् तदा भवेत्पश्चानुपूर्वी। तस्मात् प्रथमाया' सिद्धाऽऽदित्वात्, द्वितीयायास्तु साध्वा-दित्वात् नेयं पूर्वानुपूर्वी, नापि पश्चानुपूर्वी। इति चेन्न—इह तावदयं पूर्वानुपूर्वी क्रम एव। यतोऽर्हदुपदेशेनैव सिद्धा अपि ज्ञायन्ते।—निर्युक्ति।

हमें सिद्धोंका ज्ञान प्राप्त होता है। इसके अनन्तर गुणोंकी न्यूनता और अधिकताकी अपेक्षा अन्य परमेष्ठियोंको नमस्कार किया गया है। यों तो 'पादक्रम' प्रकरणमें इसका विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। अतः यहाँ पर उन सभी युक्तियों और प्रमाणोंको उद्धृत करना असगत होगा।

प्रयोजनफल द्वार—णमोकार मन्त्रकी आराधनासे लौकिक और पारलौकिक फलोंकी प्राप्ति किस प्रकारसे होती है, इसका वर्णन इस द्वारमें किया गया है।

इस प्रकार नय, निक्षेप एव विभिन्न हेतुओंके द्वारा णमोकार मन्त्रका वर्णन जैनागममें मिलता है।

कर्म-साहित्य और महामन्त्र

अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीके दिव्य उपदेशका सकलन द्वादशाग साहित्यके रूपमें गणधरदेवने किया है। इस सकलनमें कर्मप्रवाद नामके पूर्वमें कर्म विषयका वर्णन विस्तारसे किया गया है। इसके सिवा द्वितीय पूर्वके एक विभागका नाम कर्मप्राभृत और पञ्चम पूर्वके एक विभागका नाम कषायप्राभृत है। इनमे भी कर्मविषयक वर्णन है। इसी प्राचीन साहित्यके आधारपर रचे गये दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कषायप्राभृत, महाबन्ध, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, पञ्चसग्रह, कर्मप्रकृति, कर्मस्तव, कर्मप्रकृति प्राभृत, कर्मग्रन्थ, षडशीति एव सप्ततिका आदि कई ग्रन्थ है, जिनमे इस विषयका वर्णन विस्तारके साथ किया गया है। ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंके स्वरूप, भेद-प्रभेद, उनके फल, कर्मोंकी अवस्थाएँ—बन्ध, उदय, उदीरणा, सत्त्व, उत्कर्षण, अपकर्षण, सक्रमण, निधत्ति और निकाचनाका स्वरूप, मार्गणा और गुणस्थानोंके आश्रयसे कर्मप्रकृतियोंमें बन्ध, उदय और सत्त्वके स्वामियों का विवेचन, मार्गणास्थानोंमे जीवस्थान, गुणस्थान, योग, उपयोग, लेश्या और अल्प बहुत्वका विवेचन कर्म साहित्यका प्रधान विषय है। कर्मवादका जैन अध्यात्मवादके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। आचार्योंने चिन्तन और मननको विपाकविचय नामका धर्मध्यान बताया है। मननको प्रारम्भमें

एकाग्र करनेके लिए कर्मविषयक गहन साहित्यके निर्जन वनप्रदेशमें प्रवेश करना आवश्यक सा है। इस साहित्यके अध्ययनसे मनको शान्ति मिलती है तथा इधर-उधर जाता हुआ मन एकाग्र होता है, जिससे ध्यानकी सिद्धि प्राप्त होती है।

णमोकार महामन्त्र और कर्मसाहित्यका निकटतम सम्बन्ध है, क्योंकि कर्म-साहित्य णमोकार मन्त्रके उपयोगकी विधिका निरूपण करता है। इस महामन्त्रका उपयोग किस प्रकार किया जाय, जिससे आत्मा अनादिकालीन बन्धनको तोड सके। आत्माके साथ अनादिकालीन कर्मप्रवाहके कारण सूक्ष्म शरीर रहता है, जिससे यह आत्मा शरीरमें आबद्ध दिखलायी पडता है। मन, वचन और कायकी क्रियाके कारण कषाय—राग, द्वेष, क्रोध, मान आदि भावोंके निमित्तसे कर्म-परमाणु आत्माके साथ बँधते हैं। योग शक्ति जैसी तीव्र या मन्द होती है, वैसी ही सख्यामें कम या अधिक परमाणु आत्माकी ओर खिन्च आते हैं। जब योग उत्कट रहता है, उस समय कर्मपरमाणु अधिक तादादमे और जब योग जघन्य होता है, उस समय कर्म परमाणु कम तादादमें जीवकी ओर आते हैं। इसी प्रकार तीव्र कषायके होने पर कर्मपरमाणु अधिक समय तक आत्माके साथ रहते हैं तथा तीव्र फल देते हैं। मन्द कषाय होने पर कम समय तक रहते हैं तथा मन्द ही फल देते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामीने बतलाया है कि णमोकार मन्त्रोक्त पञ्च परमेष्ठियोंकी विशुद्ध आत्माओंका ध्यान या चिन्तन करनेसे आत्मासे चिपटा राग कम होता है। राग और द्वेषसे युक्त आत्मा ही कर्म बन्धन करता है—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं॥

अर्थात्—जब राग द्वेषसे युक्त आत्मा अच्छे या बुरे कामोंमे लगता है, तब कर्मरूपी रज ज्ञानावरणादि रूपसे आत्मामें प्रवेश करता है। यह कर्मचक्र जीवके साथ अनादिकालसे चला आ रहा है। पञ्चास्तिकायमें

बताया है—"संसारमें स्थित जीवके राग-द्वेष रूप परिणाम होते हैं, परिणामोंसे नये कर्म बँधते हैं। कर्मोंसे गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है, जन्म लेनेसे शरीर होता है, शरीरमें इन्द्रियाँ होती हैं, इन्द्रियोंसे विषयका ग्रहण होता है। विषयोंके ग्रहणसे राग-द्वेष परिणाम होते हैं। इस तरह संसार-रूपी चक्रमें पड़े जीवोंके भावोंसे कर्म और कर्मोंसे भाव होते रहते हैं। यह प्रवाह अभव्य जीवकी अपेक्षा अनादि अनन्त और भव्य जीवकी अपेक्षा अनादि सान्त है। कर्मोंके बीजभूत राग-द्वेषको इस महामन्त्रकी साधना-द्वारा नष्ट किया जा सकता है। जिस प्रकार बीजको जला देनेके पश्चात् वृक्षका उत्पन्न होना, बढ़ना, फल देना आदि नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार णमोकार मन्त्रकी आराधनासे कर्म-जाल नष्ट हो जाता है।

जैन साहित्यमें कर्मोंके दो भेद माने गये हैं—द्रव्य और भाव। मोहके निमित्तसे जीवके राग, द्वेष और क्रोधादिरूप जो परिणाम होते हैं, वे भाव कर्म तथा इन भावोंके निमित्तसे जो कर्मरूप परिणमन न करनेकी शक्ति रखने वाले पुद्गल परमाणु खिंचकर आत्मासे चिपट जाते हैं, वे द्रव्य कर्म कहलाते हैं। भावकर्म और द्रव्यकर्म इन दोनोंमें कारण-कार्य सम्बन्ध हैं। द्रव्यकर्मोंके निमित्तसे भावकर्म और भावकर्मके निमित्तसे द्रव्यकर्म होते हैं। द्रव्य कर्मोंके मूल ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ भेद तथा अवान्तर १४८ भेद होते हैं। जिन हेतुओंसे कर्म आत्मामें आते हैं, वे हेतु आस्रव हैं। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच आस्रव प्रत्यय—कारण हैं। जब यह जीव अपने आत्म-स्वरूपको भूलकर शरीरादि पर-द्रव्योंमें आत्मबुद्धि करता है और उनके समस्त विचार और क्रियाएँ शरीराश्रित व्यवहारोंमें उलझी रहती हैं, मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। मिथ्यात्वके कारण स्व-पर विवेक नहीं रहता, लक्ष्यभूत कल्याण-मार्गमें सम्यक् श्रद्धा नहीं होती। जीव अहंकार और ममकारकी प्रवृत्तिके आधीन होकर अपनेको भूल, बाह्य पदार्थोंके रूपपर

लुब्ध हो जाता है। मिथ्यात्वके समान आत्माके स्वरूपको विकृत करनेवाला अन्य कोई नहीं है। यह कर्मबन्धका प्रधान हेतु है।

अविरति—चारित्र मोहका उदय होनेसे चारित्र धारण करनेके परिणाम नहीं हो पाते। पाँच इन्द्रियों और मनको अपने वशमे न रखना तथा छः कायके प्राणियोंकी हिंसा करना अविरति है। अविरतिके रहनेपर जीवकी प्रवृत्ति विवेकहीन होती है, जिससे नाना प्रकारके अशुभ कर्मोंका बन्ध होता है।

प्रमाद—असावधानी रखना या कल्याणकारी कार्योंके प्रति आदर नहीं करना प्रमाद है। प्रमादी जीव पाँचों इन्द्रियोके विषयोंमें लीन रहता है, स्त्री कथा, भोजनकथा, राजकथा और चोरकथा कहता सुनता है, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायोंमे लीन रहता है एव निद्रा और प्रणया सक्त होकर कर्त्तव्य-मार्गके प्रति आदरभाव नहीं रखता। प्रमादी जीव हिंसा करे या न करे, उसे असावधानीके कारण हिंसा अवश्य लगती है।

कषाय—आत्माके शान्त और निर्विकारी रूपको जो अशान्त और विकारग्रस्त बनाये उसे कषाय कहते है। ये कषायें ही जीवमे राग द्वेषकी उत्पत्ति करती हैं, जिससे जीव निरन्तर ससार परिभ्रमण करता रहता है। यतः समस्त अनर्थोंका मूल राग-द्वेषका द्वन्द्व है।

योग—मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको योग कहते हैं। योगके द्वारा ही कर्मोंका आस्रव होता है। शुभ योगके रहनेसे पुण्यास्रव और अशुभ योगके रहनेसे पापास्रव होता है।

कर्मोंके आनेके साधन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग हैं। इन पाँचों प्रत्ययोंको जैसे-जैसे घटाते जाते हैं, वैसे-वैसे कर्मोंका आस्रव कम होता जाता है। आस्रवको गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्रसे रोका जा सकता है। मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको रोकना गुप्ति, प्रमादका त्याग करना समिति, आत्मस्वरूपमें स्थिर होना धर्म, उत्तम [illegible] [illegible] [illegible] तथा आत्माके स्वरूप और सम्बन्धका चिन्त

करना अनुप्रेक्षा, आई हुई विपत्तियोंको धैर्यपूर्वक सहना परीषहजय एव आत्मस्वरूपमें विचरण करना चारित्र है। इस प्रकार कर्मोंके आनेके हेतुओंको रोकने, जिससे नवीन कर्मोंका बन्ध न हो और पुरातन सचित कर्मोंको निर्जरा-द्वारा क्षीण कर देनेसे सहजमें निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है, कर्म-सिद्धान्त आत्माके विकासका उल्लेख करते हुए कहता है कि गुणस्थान क्रमसे कर्मबन्ध जितना क्षीण होता जाता है उतनी ही आत्मा उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। आत्माकी उत्तरोत्तर विकसित होनेवाली विशुद्ध परणतिका नाम गुणस्थान है।

आगममे बताया गया है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र आदि गुणोंकी शुद्धि तथा अशुद्धिके तरतम भावसे होनेवाले जीवके भिन्न-भिन्न स्वरूपोंको गुणस्थान कहा गया है। अथवा दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीयके औद-यिक आदि जिन भावोंके द्वारा जीव पहिचाना जाता है, वे भाव गुणस्थान हैं। असल बात यह है कि आत्माका वास्तविक रूप शुद्ध चेतन और पूर्ण आनन्दमय है। जब तक आत्माके ऊपर तीव्र कर्मावरणके घने बादलोंकी घटा छायी रहती है, तब तक उसका वास्तविक रूप दिखलायी नहीं देता, पर आवरणके क्रमशः शिथिल या नष्ट होते ही आत्माका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है। जब आवरणकी तीव्रता अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है, तब आत्मा अविकसित अवस्थामें पड़ा रहता है और जब आवरण बिलकुल नष्ट हो जाते है तो आत्मा अपनी मूल शुद्ध अवस्थामें आ जाता है। प्रथम अवस्थाको अविकसित अवस्था या अधःपतनकी अवस्था तथा अन्तिम अवस्थाको निर्वाण कहा जाता है। इस तरह आध्यात्मिक विकासमे प्रथम अवस्था—मिथ्यात्वभूमिसे लेकर अन्तिम अवस्था—निर्वाणभूमि तक मध्यमें अनेक आध्यात्मिक भूमियोंका अनुभव करना पड़ता है, जैनागमोक्त ये ही आध्यात्मिक भूमियाँ गुणस्थान है। इन्हींका क्रमशः जीव आरोहण करता है।

समस्त कर्मोंमे मोहनीय कर्म प्रधान है, जब तक यह बलवान् और तीव्र रहता है, तब तक अन्य कर्म सबल बने रहते हैं। मोहके निर्बल या शिथिल

होते ही अन्य कर्मावरण भी निर्बल या शिथिल हो जाते हैं। अतएव आत्माके विकासमें मोहनीय कर्म बाधक है। इसकी प्रधान दो शक्तियाँ हैं—दर्शन और चारित्र। प्रथम शक्ति आत्मस्वरूपका अनुभव नहीं होने देती है और दूसरी आत्मस्वरूपका अनुभव और विवेक हो जानेपर भी तदनुसार प्रवृत्ति नहीं होने देती है। आत्मिक विकासके लिए प्रधान दो कार्य करने होते हैं—प्रथम स्व परका यथार्थ दर्शन अर्थात् भेद-विज्ञान करना और दूसरा स्वरूपमें स्थित होना। मोहनीय कर्मकी दूसरी शक्ति प्रथम शक्तिकी अनुगामिनी है अर्थात् प्रथम शक्तिके बलवान् होनेपर द्वितीय शक्ति कभी निर्बल नहीं हो सकती है, किन्तु प्रथम शक्तिके मन्द, मन्दतर और मन्दतम होते ही, द्वितीय शक्ति भी मन्द, मन्दतर और मन्दतम होने लगती है। तात्पर्य यह है कि आत्माका स्वरूप दर्शन हो जानेपर स्वरूप-लाभ हो ही जाता है। कर्म सिद्धान्त इस स्वरूप दर्शन और स्वरूपलाभका विस्तृत विवेचन करता है। आत्मा किस प्रकार स्वरूपलाभ करती है तथा इसका स्वरूप किस प्रकार विकृत होता है, यह तो कर्म-सिद्धान्तका प्रधान प्रतिपाद्य विषय है।

णमोकार महामन्त्रका भक्ति-पूर्वक उच्चारण, मनन और चिन्तन करना आत्माके स्वरूप-दर्शनमें सहायक है। इस महामन्त्रके भाव सहित उच्चारण करने मात्रसे मोहनीयकर्मकी प्रथम शक्ति क्षीण होने लगती है। एक बात यह भी है कि मोहनीय कर्मके मन्द हुए बिना इस महामन्त्रकी प्राप्ति होना अशक्य है। आत्माकी प्रथमावस्था—मिथ्यात्व भूमिमें इस मन्त्रके उच्चारण और मननसे जीव दूर रहना चाहता है, उसकी प्रवृत्ति इस महामन्त्रकी ओर नहीं होती। परन्तु जब दर्शन-मोहनीयका उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो जाता है, तब चतुर्थ गुणस्थान—स्वरूप—दर्शनमें इस महामन्त्रकी ओर श्रद्धा ही सम्यक्त्व है, क्योंकि इसमें रत्नत्रयगुण विशिष्ट आत्माके शुद्ध स्वरूपको नमस्कार किया गया है। कर्मसिद्धान्तके आध्यात्मिक विकासके अनुसार सब पहली प्रथम अवस्था मिथ्यात्वमें आत्माकी बिलकुल गिरी हुई अवस्था कहलाती है, आत्मा यहाँ आधिभौतिक उत्कर्ष कर सकता है,

परन्तु अपने तात्त्विक लक्ष्यसे दूर रहता है। णमोकार मन्त्रका भाव सहित उच्चारण इस भूमिमे सभव नहीं। बहिरात्मा बनकर आत्मा महाभ्रममें पड़ा रहता है। राग-द्वेषका पटल और अधिक सघन होता जाता है।

भावपूर्वक णमोकार मन्त्रके जाप, ध्यान और मननसे यह अधःपतनकी अवस्था दूर हो जाती है, राग-द्वेषकी दीवाल जर्जरित हो टूटने लगती है, मोहकी प्रधान शक्ति दर्शन मोहनीयके शिथिल होते ही चारित्र मोह भी मन्द होने लगता है। यद्यपि कुछ समय तक दर्शन मोहनीयकी मन्दतासे उत्पन्न आत्मिक शक्तिको मानसिक विकारोंके साथ युद्ध करना पड़ता है, परन्तु णमोकारमन्त्र अपनी अद्भुत शक्तिके द्वारा मानसिक विकारोंको पराजित कर देता है। राग-द्वेषकी तीव्रतम दुर्भेद्य दीवालको एकमात्र णमोकारमत्र ही तोड़नेमे समर्थ है। विकासोन्मुखी आत्माके लिए यह महामन्त्र अगपरित्राणका कार्य करता है। इस मन्त्रकी आराधनासे वीर्योल्लास और आत्मशुद्धि इतनी बढ़ जाती है, जिससे मिथ्यात्वको पराजित करनेमें बिलम्ब नहीं लगता तथा यह जीव चतुर्थगुणस्थानमें पहुँच जाता है। अपने विशुद्ध परिणामोंके कारण इस अवस्थामें पहुँचने पर आत्माको शान्ति मिलती है तथा अन्तर आत्मा बनकर व्यक्ति अपने भीतर स्थित सूक्ष्म सहज परमात्मा—शुद्धात्माका दर्शन करने लगता है। तात्पर्य यह है कि णमोकार मन्त्रकी साधना मिथ्यात्व भूमिको दूर कर परमात्मभावरूप देवका दर्शन कराता है। इस चतुर्थगुणस्थानसे आगेवाले गुणस्थान—आध्यात्मिक विकासकी भूमियाँ सम्यग्दृष्टिकी हैं, इनमें उत्तरोत्तर विकास तथा दृष्टिकी शुद्धि अधिकाधिक होती है। पाँचवें गुणस्थानमे देश-सयमकी प्राप्ति हो जाती है, णमोकारमन्त्रकी आराधनासे परिणामोंमे विरक्ति आती है, जिससे जीव चारित्र मोहको भी शिथिल करता है। इस गुणस्थानका व्यक्ति उक्त महामन्त्रकी आराधनाका अभ्यासी स्वभावतः हो जाता है।

छठवें गुणस्थानमें स्वरूपाभिव्यक्ति होती है और लोककल्याणकी भावनाका विकास होता है, जिससे महाव्रतोंका पूर्णपालन साधक करने लगता

है। इस आध्यात्मिक भूमिमे णमोकारमन्त्र ही आत्माका एकमात्र आराध्य बन जाता है। विकासोन्मुखी आत्मा जब प्रमादका भी त्याग करता है और स्वरूप-मनन, चिन्तनके सिवा अन्य सब व्यापारोंका त्याग कर देता है, तो व्यक्ति अप्रमत्तसयत नामक सातवें गुणस्थानका धारी समझा जाता है। प्रमाद आत्मसाधनाके मार्गसे विचलित करता है, किन्तु यह साधना णमो-कारमन्त्रके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि णमोकारमन्त्रके प्रतिपाद्य आत्मा शुद्ध और निर्मल हैं। इस आध्यात्मिक भूमिमे पहुँचकर साधक अपनी शक्तिका विकास करता है, आस्रवके कारणोंको रोकता है और अवशेष मोहनीयकी प्रकृतियोंको नष्ट करनेकी तैयारी करता है। इससे आगे अपूर्वकरणके परिणामों-द्वारा आत्माका विकास करता है और णमोकारमन्त्रकी आराधनामे आत्माराधनाका दर्शन और तादात्म्यकरण करता है तथा मोहके सस्कारोंके प्रभावको क्रमशः दबाता हुआ आगे बढता है और अन्तमे उसे बिलकुल ही उपशान्त कर देता है। कोई-कोई साधक ऐसा भी होता है, जो मोहभावको नाश करता है। आठवें गुणस्थानसे आगे णमोकारमन्त्रकी आराधना—आत्मस्वरूपके चिन्तन द्वारा क्रोध, मान और मायाको नष्टकर साधक अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थानमें पहुँचता है तथा इससे आगे लोभ कषायका भी दमनकर, दशवें गुणस्थानमे पहुँचता है। यहाँसे बारहवें गुणस्थानमें स्थित होकर समस्त मोहभावको नष्ट कर देता है। अनन्तर अपने स्वरूपके ध्यान द्वारा केवलज्ञानको प्राप्तकर जिन बन जाता है। कुछ दिनोंके पश्चात् शुक्लध्यानके बलसे योगोंका निरोधकर चौदहवें गुणस्थानमें पहुँच क्षणभरमे, निर्वाण लाभ करता है। यह आत्माकी चरम शुद्धावस्था है, इसीको प्राप्तकर आत्मा कर्मजालसे युक्त होनेपर भी सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है। आत्माकी सिद्धिका प्रधान कारण इस मन्त्रकी आराधना ही है। इसीसे कर्मजालको नष्टकर स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिका यह कारण बनता है।

उपर्युक्त गुणस्थान-विकासकी परम्पराको देखनेसे प्रतीत होता है कि णमोकार मन्त्र-द्वारा कर्मोंके आस्रवको रोका जा सकता है तथा सचित

कर्मोंको निर्जरा-द्वारा क्षयकर निर्वाणलाभ किया जा सकता है। इतना ही नहीं बल्कि णमोकारमन्त्रकी आराधनासे कर्मोंकी अवस्थाओंमें भी परिवर्तन किया जा सकता है। प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग इन चारों बन्धोंमेंसे इस मन्त्रकी साधनासे स्थिति और अनुभाग बन्धको घटाया जा सकता है। शुभकर्मोंमें उत्कर्षण और अशुभ कर्मोंमें अपकर्षणकरण किया जा सकता है। इस मन्त्रकी पवित्र साधनासे उत्पन्न हुई निर्मलतासे किन्हीं विशेष कर्मोंकी उदीरणा भी की जा सकती है। अतएव कर्म-सिद्धान्तकी अपेक्षासे भी इस महामन्त्रका बड़ा भारी महत्त्व है। आत्मविकासके लिए यह एक सबल साधन है।

कर्म सिद्धान्तके अनेक तत्त्वोंकी उत्पत्तिका स्थान—णमोकारमन्त्र

अनादिनिधन इस णमोकारमन्त्रमें आठ कर्म, कर्मोंके आस्रवके प्रत्यय—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, बन्ध क्रिया और बन्धके द्रव्य भाव भेद तथा उसके प्रभेद, कर्मोंके करण, बन्धके चार प्रधान भेद, सात तत्त्व, नव पदार्थ, बन्ध, उदय, सत्त्व, चारगति, चार कषाय, चौदह मार्गणा, चौदह गुण स्थान, पाँच अस्तिकाय, छः द्रव्य, त्रेसट शलाका पुरुष आदि निहित हैं। स्वर, व्यञ्जन, पद आदि इस मन्त्रमें निहित है। स्वर, व्यञ्जन, पद, अक्षर इनके सयोग, वियोग, गुणन आदिके द्वारा उक्त तथ्य सिद्ध किये जाते हैं। जिस प्रकार द्वादशाग जिन-वाणीके समस्त अक्षर इस मन्त्रमें निहित है, उसी प्रकार इसमें उक्त सिद्धान्त भी। यद्यपि द्वादशाग जिन-वाणीके अन्तर्गत सभी तथ्य यों ही आ जाते हैं, फिर भी इनका पृथक् विचार कर लेना आवश्यक है।

इस मन्त्रमें [१] णमो अरिहंताणं, [२] णमो सिद्धाणं, [३] णमो आइरियाणं, [४] णमो उवज्झायाणं, [५] णमो लोए सव्वसाहूणं, ये पाँच पद है। विशेषापेक्षया [१] णमो [२] अरिहंताणं [३] णमो [४] सिद्धाणं [५] णमो [६] आइरियाणं [७] णमो [८] उवज्झायाणं

[९] णमो [१०] लोए [११] सव्वसाहूण, ये ग्यारह पद हैं। अक्षर इसमें ३५, स्वर ३४, व्यञ्जन ३० हैं। इस आधार परसे निम्न निष्कर्ष निकलते हैं। ३४ स्वर संख्यामेंसे इकाई, दहाईके अंकोंको पृथक् किया तो, ३ और ४ अंक हुए। व्यंजनोंमें ३० की संख्याको पृथक् किया तो, ३ और ० हुए। कुल स्वर ३४ और व्यंजन ३० की संख्याके योगको पृथक् किया तो ३४+३०=६४. ६ और ४ हुए। इस मन्त्रके अक्षरोंकी संख्याको पृथक् किया तो ३ और ५ हुए। अतः—

३×५= १५ योग, ३+५=८ कर्म, ५—३=२ जीव और अजीव तत्त्व, ५ ÷ ३=१ लब्ध और शेष २, मूल दो तत्त्व, अजीव कर्मके हटनेपर लब्धरूप शुद्ध जीव एक।

स्वरोंमें—३×४=१२ अविरति, ३+४=७ तत्त्व, ४—३=१ प्रधानताकी अपेक्षा जीव। पाँच यह पञ्चास्तिकाय। स्वर+व्यञ्जन+अक्षर =३४+३०+३५=९९, फल योग ९+९=१८, इनसे योगान्तर १+८=९ पदार्थ। ९९ ÷ ३४=२ लब्ध और ३१ शेष, ३+१=४ गति, कषाय, विकथा विशेषापेक्षया ११ पद, सामान्यापेक्षया ५, ३४ स्वर, ३० व्यञ्जन, ३५ अक्षर इनपरसे विस्तार किया तो ३४+३०=६४×५= ३२० ÷ ३४=९ लब्ध और १४ शेष। यह १४ संख्या गुणस्थान और मार्गणा की है। अथवा ६४×११=७०४ ÷ ३०=२३ लब्ध, १४ शेष। यही शेष संख्या गुण स्थान और मार्गणा है। नियम यह है कि समस्त स्वर और व्यञ्जनोंकी संख्याको सामान्य पद संख्यासे गुणाकर स्वरकी संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य गुणस्थान और मार्गणा अथवा समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्याको विशेष पद संख्यासे गुणाकर व्यञ्जनोंकी संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य गुणस्थान और मार्गणाकी संख्या आती है। छः द्रव्य और छः कायके जीवोंकी संख्या निकालनेके लिए यह नियम है कि समस्त स्वर और व्यंजनोंकी संख्या (६४)को व्यञ्जनोंकी संख्यासे गुणाकर विशेष पद संख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य द्रव्योंकी तथा जीवोंके कायकी

सख्या अथवा समस्त स्वर और व्यञ्जनोंकी सख्याको स्वर सख्यासे गुणाकर सामान्य पद सख्याका भाग देनेपर शेष तुल्य द्रव्योकी तथा जीवोके कायकी सख्या आती है। यथा ६४×३० = १६२० - ११ = १७४ लब्ध, ६ शेष, यही शेष तुल्य द्रव्य और कायकी सख्या है। अथवा ६४×३४ = २१७६ - ५ = ४३४ लब्ध ६ शेप। यही शेष प्रमाण द्रव्य और कायकी सख्या है। इस महामन्त्रमें कुल मात्राएँ ५८ हैं। प्रथम पदके 'णमो अरिहंताणं' मे = १+२+१+१+२+२+२ = ११, द्वितीयपद 'णमो सिद्धाण' मे = १+२+२+२+२ = ८, तृतीयपद 'णमो आइरियाणं' मे = १+२+२+१+१+२+२ = ११, चतुर्थपद 'णमो उवज्झा-याणं' मे = १+२+१+२+२+२+२ = १२, पंचमपद 'णमो लोए सव्वसाहूण' मे = १ + २+२+२ + २+१+२ + २+२ = १६, समस्त मात्राओंका योग = ११+८+११+१२+१६ = ५८। इस विश्लेषणसे समस्त कर्म-प्रकृतियोंका योग निकलता है। यह जीव कुल १४८ प्रकृतियोको बाँधता है। मात्राएँ+स्वर+व्यजन+विशेषपद+सामान्यपदका गुणन = ५८+३४+३०+११+१५ = १४८। इन १४८ प्रकृतियोंमे १२२ प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं और बन्ध योग्य १२० प्रकृतियाँ हैं। उनका क्रम इस प्रकार है। ५८+६४ = १२२ ये ही उदय योग्य है। क्योंकि १४८ मेंसे २६ निम्न प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। स्पर्शादि २० की जगह ४ का ग्रहण किया जाता है, इस प्रकार १६ प्रकृतियाँ घट जाती हैं और पाँचो शरीरोंके पॉच बन्धन और पाँच सघातोंका ग्रहण नहीं किया गया है। इस प्रकार २६ घटनेसे १२२ उदयमे तथा बन्धमें दर्शन मोहनीयकी एक ही प्रकृति बँधती है और उदयमे यही तीन रूपमें परिवर्तित हो जाती है। कहा गया है—

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसम्मभावजंतेण।
मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा॥ —कर्मकाण्ड

अर्थात्—प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामरूप यन्त्रसे मिथ्यात्वरूपी कर्मद्रव्य

द्रव्यप्रमाणमे क्रमसे असख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कम होकर तीन प्रकारका हो जाता है। अर्थात् बन्ध केवल मिथ्यात्व प्रकृतिका होता है और उदयमे वही मिथ्यात्व तीन रूपमे बदल जाता है। जैसे धानके चावल, कण और भूसा ये तीन अश हो जाते हैं अर्थात् केवल धान उत्पन्न होता है, पर उपयोगकालमे उसी धानके चावल, कण और भूसा ये तीन अश हो जाते है। यही बात मिथ्यात्वके सम्बन्धमे भी है।

इस प्रकार णमोकारमन्त्र बन्ध, उदय और सत्त्वकी प्रकृतियोंकी सख्या पर समुचित प्रकाश डालता है। कुल प्रकृति सख्या १४८, बन्ध सख्या १२०, उदय सख्या १२२ और सत्त्वसख्या १४८ इसी मन्त्रमे निहित है। १२० सख्या निकालनेका क्रम यह है—३४ स्वर, ३० व्यजन बताये गये हैं। ३×४=१२, ३×०=० गुणनशक्तिके अनुसार शून्य को दस मान लेने पर गुणनफल=१२०।

३०, ३+०=३ रत्नत्रय सख्या, ३×०=० कर्माभावरूप मोक्ष। ३०+३४=६४, ६×४=२४ तीर्थंकर, ३×४=१२ चक्रवर्ती, ६४+३५=९९, ९+९=१८, ८+१=९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलदेव, इस प्रकार कुल २४+१२+९+९+९=६३ शलाका पुरुष। ५८ मात्राएँ, इनके विश्लेषण-द्वारा ५+८=१३ चारित्र, ५×८=४०, ४+०=४ प्रकारके बन्ध—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग। प्रमाणके भेद-प्रभेद भी इसमे निहित हैं। प्रमाणके मूलभेद दो हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। ५-३=१ ल० शेष २, यही दो भेद वस्तुके व्यवस्थापक प्रमाणके भेद हैं। परोक्षमे पॉच भेद—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम रूप पॉच पद है। नयके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेदोंके साथ नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत। ये सात भी ३+४=७ रूपमे विद्यमान हैं। इस प्रकार इस महामन्त्रमें कर्मबन्धक सामग्री—मिथ्यात्व ५, अविरति १२, प्रमाद १५, कषाय २५ और योग १५ की सख्या भी विद्यमान है। साथ ही कर्मबन्धनसे मुक्त करानेवाली

सामग्री ५ समिति, ३ गुप्ति, ५ महाव्रत, २२ परीषहजय, १२ अनुप्रेक्षा और १० धर्मकी संख्या भी निहित है। १० धर्मकी संख्या तथा कर्मोंके १० करणोंकी संख्या निम्न प्रकार आती है। ३५ अक्षरोंका विश्लेषण सामान्य पदोंके साथ किया तो ३×५=१५—५ पद=१०। इस मन्त्रके अकोंमें द्वादशागके पृथक्-पृथक् पदोंकी संख्या भी निहित है, आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथाग, उपासकाध्ययनाग आदि अगोंकी पदसंख्या क्रमशः अठारह हजार, छत्तीस हजार, ब्यालीस हजार, एक लाख चौसठ हजार, दो लाख अट्ठाईस हजार, पॉच लाख छप्पन हजार, ग्यारह लाख सत्तर हजार, तेईस लाख अट्ठाईस हजार, बानवे लाख चवालीस हजार, तिरानवे लाख सोलह हजार और एक करोड़ चौरासी लाख पद हैं। इन सब संख्याओंकी उत्पत्ति इस महामन्त्रसे हुई है। दृष्टि-वादके पदोंकी संख्या भी इस मन्त्रमें विद्यमान हैं।

जिसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छः द्रव्योंका, जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वोंका एव पुण्य-पापका निरूपण किया जाय, उसे द्रव्यानु-योग कहते हैं। इस अनुयोगकी दृष्टिसे णमोकार महा-मन्त्रकी विशेष महत्ता है। णमोकार स्वय द्रव्य है, शब्दोंकी दृष्टिसे पुद्गल द्रव्य है और अर्थकी दृष्टिसे शुद्धात्माओंका वर्णन करनेके कारण जीवद्रव्य है। सम्यक्त्वकी प्राप्तिका यह बहुत बड़ा साधन है। द्रव्योंके विवेचनसे प्रतीत होता है कि णमोकारमन्त्रका आत्मद्रव्यके साथ निकटतम सम्बन्ध है तथा इसके द्वारा कल्याणका मार्ग किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। इस मन्त्रमें द्रव्य, तत्त्व, अस्तिकाय आदिका निर्देश विद्यमान है।

द्रव्यानुयोग और णमोकारमन्त्र

जीव—आत्मा स्वतन्त्र द्रव्य है, अनन्त ज्ञानदर्शनवाला, अमूर्त्तिक, चैतन्य, ज्ञानादिपर्यायोंका कर्त्ता, कर्मफलभोक्ता और स्वयं प्रभु है। कुन्द-कुन्दाचार्यने बतलाया है कि—"जिसमें रूप, रस, गन्ध न हो तथा इन

गुणोंके न रहनेसे जो अव्यक्त है, शब्दरूप भी नहीं है, किसी भौतिक चिह्न से भी जिसे कोई नहीं जान सकता, जिसका न कोई निर्दिष्ट आकार है, उस चैतन्य गुणविशिष्ट द्रव्यको जीव कहते हैं।" व्यवहार नयसे जो इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इन चार प्राणों-द्वारा जीता है, पहले जिया था और आगे जीवित रहेगा, उसे जीवद्रव्य तथा निश्चय नयकी अपेक्षासे जिसमें चेतना पाई जाय, उसे जीव द्रव्य कहते हैं। णमोकारमन्त्रमें वर्णित आत्माओंमें उपर्युक्त निश्चय और व्यवहार दोनों ही लक्षण पाये जाते हैं। निश्चय नय द्वारा वर्णित शुद्धात्मा अरिहत और सिद्ध की है। वे दोनों चैतन्यरूप हैं। ज्ञानादि पर्यायोंके कर्ता और उनके भोक्ता है। आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठीकी आत्माओंमें व्यवहार-नयका लक्षण भी घटित होता है।

पुद्गल—जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाये जायँ उसे पुद्गल कहते हैं। इसके दो भेद हैं—अणु और स्कन्ध। अन्य प्रकारसे पुद्गलके तेईस भेद माने गये हैं, जिनमें आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा मनोवर्गणा और कार्माणवर्गणा ये पाँच ग्राह्य वर्गणाएँ होती हैं। शब्द भाषावर्गणाका व्यक्तरूप है। अतः णमोकार मन्त्रके शब्द भाषावर्गणाके अग हैं। ये वर्गणाएँ द्रव्य दृष्टिसे नित्य और पर्याय दृष्टिसे अनित्य होती हैं। अतः णमोकार मन्त्रके शब्द पुद्गल द्रव्य हैं।

धर्म और अधर्म—ये दोनों द्रव्य क्रमशः जीव और पुद्गलोंको चलने और ठहरनेमें सहायता करते हैं। णमोकार महामन्त्रका अनादि परम्परासे जो परिवर्तन होता आ रहा है तथा अनेक कल्पकालके अनेक तीर्थंकरोंने इस महामन्त्रका प्रवचन किया है इसमें कारण ये दोनों द्रव्य है। इन द्रव्योंके कारण ही शब्द और अर्थ रूप परिणमन करनेमें स्वयं परिवर्तन करते हुए इस मन्त्रको ये दोनों द्रव्य सहायता प्रदान करते हैं।

आकाश—समस्त वस्तुओंको अवकाश—स्थान प्रदान करता है। णमोकार मन्त्र भी द्रव्य है, उसे भी इसके द्वारा अवकाश—स्थान मिलता

है। यह मन्त्र शब्दरूपमे लिखित किसी कागज पर उसमें निवास करनेवाले आकाश द्रव्यके कारण ही स्थित है। क्योंकि आकाशका अस्तित्व पुस्तक, ताम्रपत्र, ताडपत्र, भोजपत्र, कागज आदि सभी मे है। अतः यह मन्त्र भी लिखित या अलिखित रूपमें आकाश द्रव्यमे ही वर्तमान है।

काल—इस द्रव्यके निमित्तसे वस्तुओंकी अवस्थाएँ बदलती हैं। पर्यायोंका होना तथा उत्पाद-व्ययरूप परिणतिका होना कालद्रव्यपर निर्भर है। कालद्रव्यकी सहायताके बिना इस मन्त्रका आविर्भाव और तिरोभाव सभव नहीं है।

णमोकार महामन्त्र द्रव्य है, इसमे गुण और पर्यायें पायी जाती हैं। इस मन्त्रमें द्रव्य, द्रव्याश, गुण, गुणाश रूप स्वचतुष्टय वर्तमान है जिसे दूसरे शब्दोंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव कहा जाता है। इसका अपना चतुष्टय होनेसे ही यह द्रव्यापेक्षया अनादि माना जाता है। द्रव्यानुयोगकी अपेक्षासे भी यह मन्त्र आत्मकल्याणमें सहायक है, क्योंकि इसके द्वारा आत्मिक गुणोंका निश्चय होता है। स्वानुभूतिकी इसके साथ अन्वय और व्यतिरेक दोनों प्रकारकी व्याप्तियाँ वर्तमान हैं। तात्पर्य यह है कि णमोकार मन्त्रसे स्वानुभूति होती है, अतः णमोकार मन्त्रकी उपयोगावस्थामे स्वानुभवके साथ विषमा व्याप्ति और लब्धि रूप णमोकार मन्त्रके साथ स्वानुभवकी समा व्याप्ति होती है।

इस महामन्त्रसे जीवादि तत्त्वोंके विषयमे श्रद्धा, रुचि, प्रतीति और आचरण उत्पन्न होते हैं। तत्त्वार्थके जाननेके लिए उन्नत बुद्धिका होना श्रद्धा, तत्त्वार्थमें आत्मिकभावका होना रुचि, तत्त्वार्थ को ज्यों का त्यों स्वीकार करना प्रतीति एव तत्त्वार्थके अनुकूल क्रिया करना आचरण है। श्रद्धा, रुचि प्रतीति ये तीनो णमोकारमन्त्रके द्रव्याश और गुणाश है। अथवा यों समझना चाहिए कि ये तीनों ज्ञानात्मक हैं, णमोकारमन्त्र श्रुतज्ञान रूप है, अतः ये तीनो ज्ञानकी पर्याय होनेसे णमोकार मन्त्रकी भी पर्याय है।

स्वानुभूतिके साथ णमोकार मन्त्रकी आराधना करनेसे सम्यग्दर्शन तो उत्पन्न ही होता है, पर विवेक और आचरण भी प्राप्त हो जाते हैं।

इस महामन्त्रकी अनुभूति आत्मामें हो जानेपर प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुणोंका प्रादुर्भाव हो जाता है तथा आत्मानुभूति हो जानेसे बाह्य विषयोंसे अरुचि भी हो जाती है। प्रशम गुणके उत्पन्न होनेसे पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी विषयोंमें और असंख्यात लोकप्रमाण क्रोधादि भावोंमें स्वभावसे ही मनकी प्रवृत्ति नहीं होती है। क्योंकि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभका उदय उसके नहीं होता है तथा अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषायोंका मन्दोदय हो जाता है। संवेग गुणकी उत्पत्ति होनेसे आत्माका धर्म और धर्मके फलमें पूरा उत्साह रहता है तथा साधर्मी भाइयोंसे वात्सल्यभाव रहने लगता है। समस्त प्रकारकी अभिलाषाएँ भी इस गुणके प्रादुर्भूत होनेसे दूर हो जाती हैं, क्योंकि सभी अभिलाषाएँ मिथ्यात्व कर्मके उदयसे उत्पन्न होती हैं। णमोकार मन्त्रकी अनुभूति न होना या इस महामन्त्रके प्रति हार्दिक श्रद्धा भावनाका न होना मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टिसे णमोकार महामन्त्रकी अनुभूति हो ही जाती है, अतः सभी सांसारिक अभिलाषाओंका अभाव हो जाता है। पञ्चाध्यायीकारने संवेग गुणका वर्णन करते हुए कहा है—

त्यागः सर्वाभिलाषस्य निर्वेदो लक्षणात्तथा।
स संवेगोऽथवा धर्मः साभिलाषो न धर्मवान् ॥ ४४३ ॥
नित्यं रागी कुदृष्टिः स्यान्न स्यात्क्वचिदरागवान्।
अस्तरागोऽस्ति सद्दृष्टिर्नित्यं वा स्यान्न रागवान् ॥ ४४५ ॥

—पं० अ० २

अर्थ—सम्पूर्ण अभिलाषाओंका त्याग करना अथवा वैराग्य धारण करना संवेग है और उसीका नाम धर्म है। क्योंकि जिसके अभिलाषा पायी जाती है, वह धर्मात्मा कभी नहीं हो सकता। मिथ्यादृष्टि पुरुष सदा रागी भी है, वह कभी भी रागरहित नहीं होता। पर णमोकार मन्त्रकी आराधना

करनेवाले सम्यग्दृष्टिका राग नष्ट हो जाता है। अतः वह रागी नहीं, अपितु विरागी है। संवेग गुण आत्माको आसक्तिसे हटाता है और स्वरूपमें लीन करता है।

णमोकार मन्त्रकी अनुभूति होनेसे तीसरा आस्तिक्य गुण प्रकट होता है। इस गुणके प्रकट होते ही 'सत्त्वेषु मैत्री' भी भावना आ जाती है। समस्त प्राणियोंके ऊपर दयाभाव होने लगता है। 'सर्वभूतेषु समता'के आ जानेपर इस गुणका धारक जीव अपने हृदयमे चुभनेवाले माया, मिथ्यात्व और निदान शल्यको भी दूर कर देता है तथा स्व-पर अनुकम्पाका पालन करने लगता है। चौथे आस्तिक्य गुणके प्रकट होनेसे द्रव्य, गुण, पर्याय आदिमें यथार्थ निश्चय बुद्धि उत्पन्न हो जाती है तथा निश्चय और व्यवहारके द्वारा सभी द्रव्योंकी वास्तविकताका हृदयगम भी होने लगता है। द्वादशागवाणीका सार यह णमोकार मन्त्र सम्यक्त्वके उक्त चारो गुणोंको उत्पन्न करता है।

आत्माको सामान्य-विशेष स्वरूप माना गया है। ज्ञानकी अपेक्षा आत्मा सामान्य है और उस ज्ञानमे समय-समय पर जो पर्यायें होती है, वह विशेष है। सामान्य स्वय ध्रौव्यरूप रहकर विशेष रूपमें परिणमन करता है, इस विशेषपर्यायमे यदि स्वरूपकी रुचि हो तो समय-समय पर विशेषमे शुद्धता आती जाती है। यदि उस विशेष पर्यायमे ऐसी विपरीत रुचि हो कि 'जो रागादि तथा देहादि हैं, वह मैं हूँ' तो विशेषमे अशुद्धता होती है। स्वरूपमें रुचि होने पर शुद्ध पर्याय क्रमबद्ध और विपरीत होने पर अशुद्ध पर्याय क्रमबद्ध प्रकट होती हैं। चैतन्यकी क्रमबद्ध पर्यायोंमें अन्तर नहीं पडता, किन्तु जीव जिघर रुचि करता है, उस ओरकी क्रमबद्ध दशा प्रकट होती है। णमोकार मन्त्र आत्माकी ओर रुचि करता है तथा रागादि और देहादिसे रुचिको दूर करता है, अतः आत्माकी शुद्ध कमबद्ध दशाओंको प्रकट करनेमे प्रधान कारण यही कहा जा सकता है। यह आत्माकी ओर वह पुरुषार्थ है जो क्रमबद्ध चैतन्य पर्यायोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। अतएव

द्रव्यानुयोगकी अपेक्षा णमोकार मन्त्रकी अनुभूति विपरीत मान्यता और अनन्तानुबन्धी कषायको नाशकर विशुद्ध चैतन्य पर्यायोंकी ओर जीवनको प्रेरित करती है। आत्माकी शुद्धिके लिए इस महामन्त्रका उच्चारण, मनन और ध्यान करना आवश्यक है।

गणितशास्त्र और णमोकार मन्त्र

यों तो गणितशास्त्रका उपयोग लोक-व्यवहार चलानेके लिए होता है, पर आध्यात्मिक क्षेत्रमें भी इस शास्त्रका व्यवहार प्राचीनकालसे होता चला आ रहा है। मनको स्थिर करनेके लिए गणित एक प्रधान साधन है। गणितकी पेचीदी गुत्थियोंमें उलझकर मन स्थिर हो जाता है तथा एक निश्चित केन्द्रबिन्दु पर आश्रित होकर आत्मिक विकासमें सहायक होता है। णमोकार मन्त्र, षट्खण्डागमका गणित, गोम्मटसार और त्रिलोकसारके गणित मनकी सासारिक प्रवृत्तियोंको रोकते हैं और उसे कल्याणके पथपर अग्रसर करते हैं। वास्तवमें गणितविज्ञान भी इसी प्रकार का है जिसे एकबार इसमें रस मिल जाता है, वह फिर इस विज्ञानको जीवन भर छोड़ नहीं सकता है। जैनाचार्योंने धार्मिक गणितका विधानकर मनको स्थिर करनेका सुन्दर और व्यवस्थित मार्ग बतलाया है। क्योंकि निकम्मा मन प्रमाद करता है, जब तक यह किसी दायित्वपूर्ण कार्यमें लगा रहता है, तब तक इसे व्यर्थकी अनावश्यक एव न करने योग्य बातोंके सोचनेका अवसर ही नहीं मिलता है पर जहाँ इसे दायित्वसे छुटकारा मिला—स्वच्छन्द हुआ कि यह उन विषयोंको सोचेगा, जिनका स्मरण भी कभी कार्य करते समय नहीं होता था। मनकी गति बड़ी विचित्र है। एक ध्येयमें केंद्रित कर देने पर यह स्थिर हो जाता है।

नया साधक जब ध्यानका अभ्यास आरम्भ करता है, तब उसके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि अन्य समय जिन सड़ी-गली, गन्दी एवं घिनौनी बातोंकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी, वे ही उसे याद आती हैं और वह घबड़ा जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि जिसका वह

ध्यान करना चाहता है, उसमें मन अभ्यस्त नहीं है और जिनमे मन अभ्यस्त है, उनसे उसे हटा दिया गया है, अतः इस प्रकारकी परिस्थितिमे मन निकम्मा हो जाता है। किन्तु मनको निकम्मा रहना आता नहीं, जिससे वह उन पुराने चित्रोंको उधेडने लगता है, जिनका प्रथम सस्कार उसके ऊपर पडा है। वह पुरानी बातोंके विचारमे सलग्न हो जाता है।

आचार्यने धार्मिक गणितकी गुत्थियोंको सुलझानेके मार्ग-द्वारा मनको स्थिर करनेकी प्रक्रिया बतलायी है क्योंकि नये विषयमें लगनेसे मन ऊबता है, घबड़ाता है, रुकता है और कभी-कभी विरोध भी करने लगता है। जिस प्रकार पशु किसी नवीन स्थान पर नये खूँटेसे बाँधने पर विद्रोह करता है, चाहे नयी जगह उसके लिए कितनी ही सुखप्रद क्यो न हो, फिर भी अवसर पाते ही रस्सी तोड़कर अपने पुराने स्थान पर भाग जाना चाहता है। इसी प्रकार मन भी नये विचारमें लगना नहीं चाहता। कारण स्पष्ट है, क्योंकि विषयचिन्तनका अभ्यस्त मन आत्मचिन्तनमे लगनेसे घबड़ाता है। यह बड़ा ही दुर्निग्रह और चञ्चल है। धार्मिक गणितके सतत अभ्याससे यह आत्मचिन्तनमे लगता है और व्यर्थकी अनावश्यक बातें विचारक्षेत्रमें प्रविष्ट नहीं हो पातीं।

णमोकार महामन्त्रका गणित इसी प्रकारका है, जिससे इसके अभ्यास-द्वारा मन विषय-चिन्तनसे विमुख हो जाता है और णमोकार मन्त्रकी साधनामे लग जाता है। प्रारम्भमे साधक जब णमोकार मन्त्रका ध्यान करना शुरू करता है तो उसका मन स्थिर नहीं रहता है। किन्तु इस महामन्त्रके गणित-द्वारा मनको थोड़े ही दिनमे अभ्यस्त कर लिया जाता है। इधर-उधर विषयोकी ओर भटकनेवाला चञ्चल मन, जो कि घर द्वार छोड़कर वनमे रहने पर भी व्यक्तिको आन्दोलित रखता है, वह इस मन्त्रके गणितके सतत अभ्यास-द्वारा इस मन्त्रके अर्थचिन्तनमे स्थिर हो जाता है तथा पञ्च-परमेष्ठी—शुद्धात्माका ध्यान करने लगता है।

प्रस्तार, भङ्गसख्या, नष्ट, उद्दिष्ट, आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी इन गणित-विधियों द्वारा णमोकार महामन्त्रका वर्णन किया गया है। इस छः प्रकारके गणितोंमे चञ्चल मन एकाग्र हो जाता है। मनके एकाग्र होनेसे आत्माकी मलिनता दूर होने लगती है तथा स्वरूपाचरणकी प्राप्ति हो जाती है। णमोकार मन्त्रमें सामान्यकी अपेक्षा, पाँच या विशेषकी अपेक्षा ग्यारह पद, चौंतीस स्वर, तीस व्यञ्जन, अट्ठावन मात्राओं द्वारा गणित क्रिया सम्पन्न की जाती है। यहाँ सक्षेपमें उक्त छहों प्रकारकी विधियोंका दिग्दर्शन कराया जायगा।

भङ्गसख्या—किसी भी अभीष्ट पदसख्यामें एक, दो, तीन आदि सख्याको अन्तिम गच्छ सख्या एक रखकर परस्पर गुणा करने पर कुल भगसख्या आती है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धनाथ चक्रवर्तीने भगसख्या निकालनेके लिए निम्न करण सूत्र बतलाया है—

सव्वेपि पुव्वभंगा उवरिमभगेसु एक्कमेक्केसु।
मेलंतित्ति य कमतो गुणिदे उप्पज्जदे संख्या ॥३६॥

अर्थ—पूर्वके सभी भग आगेके प्रत्येक भगमें मिलते हैं, इसलिए क्रमसे गुणा करने पर सख्या उत्पन्न होती है।

उदाहरणके लिए णमोकार मन्त्रकी सामान्य पदसख्या ५ तथा विशेष पदसख्या ११ तथा मात्राओंकी सख्या ५८ को ही लिया जाता है। जिस सख्याके भग निकालने हैं, वही सख्या गच्छ कहलायेगी। अतः यहाँ सर्व प्रथम ११ पदोंकी भगसख्या लानी है, इसलिए ११ गच्छ हुआ। इसको एक दो-तीन आदि कर स्थापित किया तो—१।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।

इस पदसख्यामे एक सख्याका भग एक ही हुआ, क्योंकि एकका पूर्ववर्ती कोई अङ्क नहीं है, अतः एकको किसीसे भी गुणा नहीं किया जा सकता है। दो सख्याके भंग दो हुए, क्योंकि दोको एक भंगसख्यासे गुणा

करने पर दो गुणनफल निकला। तीन सख्याके भग छः हुए; क्योंकि तीनको दोकी भगसख्यासे गुणा करने पर छः हुए। चार सख्याके भग चौबीस हुए, क्योंकि तीनकी भगसख्या छः को चारसे गुणा करने पर चौबीस गुणनफल निष्पन्न हुआ। पाँच सख्याके भग एक सौ बीस हैं, क्योंकि पूर्वोक्त सख्याके चौबीस भागोंको पाँचसे गुणा किया, जिससे १२० फल आया। छः सख्याके भग ७२० आये, क्योंकि पूर्वोक्त भगसख्या १२०×६=७२० सख्या निष्पन्न हुई। सात सख्याके भग ५०४० हुए, क्योंकि पूर्वोक्त भगसंख्याको सातसे गुणा करने पर ७२०×७=५०४० सख्या निष्पन्न हुई। आठ सख्याके भग ४०३२० आये, क्योंकि पूर्वोक्त सात अककी भंगसख्याको आठसे गुणा किया तो ५०४०×८=४०३२० भगोंकी सख्या निष्पन्न हुई। नौ संख्याके भंग ३६२८८० हुए, क्योंकि पूर्वोक्त आठ अककी भगसख्याको ९ से गुणा किया। अतः ४०३२×९= ३६२८८० भगसख्या हुई। दस सख्याकी भगसख्या लानेके लिए पूर्वोक्त नौ अककी भगसख्याको दससे गुणा कर देने पर अभीष्ट अक दसकी भगसख्या निकल आयेगी। अतः ३६२८८०×१०=३६२८८०० भगसख्या दसके अककी हुई। ग्यारहवें पदकी भंगसख्या लानेके लिए पूर्वोक्त दसकी भगसख्याको ग्यारहसे गुणा कर देने पर ग्यारहवें पदकी भगसख्या निकल आयेगी। अतः ३६२८८००×११=३९९१६८०० ग्यारहवें पदकी भगसख्या हुई।

प्रधान रूपसे णमोकार मन्त्रमें पॉच पद हैं। इनकी भगसख्या= १।२।३।४।५, १×१=१, १×२=२, २×३=६, ६×४=२४, २४×५=१२० हुई। ५८ मात्राओं, ३४ स्वरों और ३० व्यञ्जनों-को भी गच्छ वनाकर पूर्वोक्त विधिसे भगसख्या निकाल लेनी चाहिए। भग सख्या लानेका एक सस्कृत करणसूत्र निम्न है। इस करणसूत्रका आशय पूर्वोक्त गाथा करणसूत्रसे भिन्न नहीं है। मात्र जानकारीकी दृष्टिसे इस करणसूत्रको दिया जा रहा है। इसमे गाथोक्त 'मेलता' के स्थान पर

'परस्परहता:' पाठ है, जो सरलताकी दृष्टिसे अच्छा मालूम होता है। यद्यपि गाथाने भी 'गुणिदा' आगेवाला पद उसी अर्थका द्योतक है। कहा गया है कि पदोंको रखकर "एकाद्या गच्छपर्यन्ताः परस्परहता.। राशयस्तद्धि विज्ञेयं विकल्पगणिते फलम् ॥" अर्थात् एकादि गच्छोंका परस्पर गुणा कर देनेसे भगसख्या निकल आती है।

इस गणितका अभिप्राय णमोकार मन्त्रके पदों-द्वारा भङ्ग-सख्या निकालना है। मनको अभ्यस्त और एकाग्र करनेके लिए णमोकार मन्त्रके पदोंका सीधा-साधा क्रमबद्ध स्मरण न कर व्यतिक्रम रूपसे स्मरण करना है। जैसे पहले 'णमो सिद्धाणं' कहनेके अनन्तर 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पदका स्मरण करना। अर्थात् 'णमो सिद्धाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं. णमो आइरियाण, णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं' इस प्रकार स्मरण करना अथवा 'णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो आइरियाणं, णमो सिद्धाणं' इस रूप स्मरण करना या किन्ही दो पद, तीन पद या चार पदोंका स्मरण कर उस संख्याको निकालना। पदोंके क्रममें किसी भी प्रकारका उलट-फेर किया जा सकता है।

यहाँ यह आशंका उठती है कि णमोकार मन्त्रके क्रमको बदल कर उच्चारण, स्मरण या मनन करने पर पाप लगेगा. क्योंकि इस अनादि मन्त्रका क्रम भग होनेसे विपरीत फल होगा। अत. यह पद-विपर्ययका सिद्धान्त ठीक नहीं जॅचता। श्रद्धालु व्यक्ति जब साधारण मन्त्रोंके पद-विपर्ययसे डरता है तथा अनिष्ट फल प्राप्त होनेके अनेक उदाहरण सामने प्रस्तुत हैं, तब इस महामन्त्रमे इस प्रकारका परिवर्तन उचित नहीं लगता।

इस शकाका उत्तर यह है कि किसी फलकी प्राप्ति करनेके लिए गृहस्थको भगसख्या-द्वारा णमोकारमन्त्रके ध्यानकी आवश्यकता नहीं। जब तक गृहस्थ अपरिग्रही नहीं बना है, घरमे रहकर ही साधना करना चाहता है, तब तक उसे उक्त क्रमसे ध्यान नहीं करना चाहिए। अतः जिस

गृहस्थ व्यक्तिका मन ससारके कार्योंमें आसक्त है, वह इस भगसंख्या द्वारा मनको स्थिर नहीं कर सकता है। त्रिगुप्तियोंका पालन करना जिसने आरम्भ कर दिया है, ऐसा दिगम्बर, अपरिग्रही साधु अपने मनको एकाग्र करनेके लिए उक्त क्रम-द्वारा ध्यान करता है। मनको स्थिर करनेके लिए क्रम-व्यतिक्रम रूपसे ध्यान करनेकी आवश्यकता पड़ती है। अतः गृहस्थको उक्त प्रयोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें आवश्यकता नहीं है। हाँ, ऐसा व्रती श्रावक, जो प्रतिमा योग धारण करता है, वह इस विधिसे णमोकार मन्त्रका ध्यान करनेका अधिकारी है। अतएव ध्यान करते समय अपना पद, अपनी शक्ति और अपने परिणामोंका विचार कर ही आगे बढ़ना चाहिए।

प्रस्तार—आनुपूर्वी और अनानुपूर्वीके अंगोंका विस्तार करना प्रस्तार है। अथवा लोम-विलोम क्रमसे आनुपूर्वीकी संख्याको निकालना प्रस्तार है। णमोकारमन्त्रके पाँच पदोंकी भगसख्या १२० आयी है, इसकी प्रस्तार-पक्तियाँ भी १२० होती है, इन प्रस्तार-पक्तियोंमें मनको स्थिर किया जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने गोम्मटसार जीवकाण्डमें प्रमादका प्रस्तार निकाला है। इसी क्रमसे णमोकार मन्त्रके पदोंका भी प्रस्तार निकालना है। गाथा सूत्र निम्न प्रकार हैं—

पढमं पमदपमाणं कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च।
पिंडं पडि एक्केक्कं णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥३७॥
णिक्खित्तु बिदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं।
पिंड पडि णिक्खेओ एवं सव्वत्थकायव्वो ॥३८॥

अर्थात्—गच्छ प्रमाण पद सख्याका विरलन करके उसके एक-एक रूपके प्रति उसके पिण्डका निक्षेपण करनेपर प्रस्तार होता है। अथवा आगेवाले गच्छ प्रमाणका विरलनकर, उससे पूर्ववाले भगोंको उस विरलन पर रख देने और योग कर देनेसे प्रस्तारकी रचना होती है। जैसे यहाँ ३ पदसख्याका ४ पदसख्याके साथ प्रस्तार तय्यार करना है। तीन पद-

सख्याके अग ६ आये हैं। अतः प्रथम रीतिसे प्रस्तार तय्यार करनेके लिए तीन पदकी भगमख्याका विरलन किया तो १।१।१।१।१।१ हुआ। इसके ऊपर आगेकी पद सख्याकी स्थापना की तो— ४।४।४।४।४।४ / १।१।१।१।१।१ = २४ हुए। इनका आगेवाली पद संख्याके साथ प्रस्तार बनाना हो तो इस २४ सख्याका विरलन किया ५ / १। ५ ५ / १।१। और इसके ऊपर आगेवाली सख्या स्थापित कर दी तो सबको जोड़ देनेपर प्रस्तार बन जाता है। यह प्रस्तारसख्या १२० हुई। द्वितीय विधिसे प्रस्तार निकालनेके लिए जिस गच्छ प्रमाणका प्रस्तार बनाना हो, उसीका विरलन कर, पूर्वकी भगसख्याको उसके नीचे स्थापित कर दिया जाता है और सबको जोड देने पर प्रस्तार हो जाता है। जैसे यह ४ पद-सख्या का प्रस्तार निकालना है तो इस चारका विरलन कर दिया— १।१।१।१ / ६।६।६।६ और इस विरलनके नीचे पूर्वकी भगसख्याको स्थापित कर दिया और सबको जोड़ दिया तो २४ सख्या चौथे पदकी आयी। यदि पाँचवें पदका प्रस्तार बनाना हो तो इस पाँचका विरलन कर चौथे पदकी सख्याको इसके नीचे स्थापित कर देनेसे द्वितीय विधिके अनुसार प्रस्तार आयगा। अतः १।१।१।१।१ / २४।२४।२४।२४।२४ इसका योग किया तो १२० प्रभाव आया। इस प्रकार णमोकार मन्त्रके ५ पदोंकी पक्तियाँ १२० होती हैं। यहाँ पर छः छः पक्तियों के दस वर्ग बनाकर लिखे जाते है। इन वर्गोंसे इस मन्त्रकी ध्यान विधि पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।

प्रथम वर्ग

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

द्वितीय वर्ग

१	२	३	५	४
२	१	३	५	४
१	३	२	५	४
३	१	२	५	४
२	३	१	५	४
३	२	१	५	४

तृतीय वर्ग

१	२	४	५	३
२	१	४	५	३
१	४	२	५	३
४	१	२	५	३
२	४	१	५	३
४	२	१	५	३

चतुर्थ वर्ग

१	३	४	५	२
३	१	४	५	२
१	४	३	५	२
४	१	३	५	२
३	४	१	५	२
४	३	१	५	२

पञ्चम वर्ग

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

षष्ठ वर्ग

१	२	४	३	५
२	१	४	३	५
१	४	२	३	५
२	४	१	३	५
४	२	१	३	५
४	१	२	३	५

सप्तम वर्ग

१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

अष्टम वर्ग				
१	२	५	३	४
२	१	५	३	४
१	५	२	३	४
५	१	२	३	४
२	५	१	३	४
५	२	१	३	४

नवम वर्ग				
१	३	५	४	२
३	१	५	४	२
१	५	३	४	२
५	१	३	४	२
१	५	१	४	२
५	३	१	४	२

दशम वर्ग				
२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

इस प्रकार क्रम-व्यतिक्रम स्थापन-द्वारा एक सौ बीस पंक्तियाँ भी बनायी जाती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रथम वर्गकी प्रथम पंक्तिमें णमोकार मन्त्र ज्योंका त्यों है; द्वितीय पंक्तिमें प्रथम दो अंकसख्या रहनेसे इस मन्त्रका प्रथम द्वितीय पद, अनन्तर एक संख्या होनेसे प्रथम पद, पश्चात् तीन सख्या होनेसे तृतीयपद, अनन्तर चार अंक संख्या होनेसे चतुर्थपद और अन्तमें पाँच अंक संख्या होने से पञ्चम पदका इस मन्त्रमें उच्चारण किया जायगा अर्थात् प्रथम वर्गकी द्वितीय पंक्तिका मन्त्र इस प्रकार रहेगा—"णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।" प्रथम वर्गकी तृतीय पंक्तिमें पहला एकका अंक है, अतः इस मन्त्रका प्रथम पद, दूसरा तीनका अंक है, अतः इस मन्त्रका तृतीयपद; तीसरा दोका अंक है, अतः इस मन्त्रका द्वितीय पद चौथा चारका अंक है, अतः मन्त्रका चतुर्थपद एवं पाँचवाँ पाँचका अंक है, अतः इस मन्त्रका पञ्चमपदका उच्चारण किया जायगा। अर्थात् मन्त्रका रूप "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए

सव्वसाहूणं" होगा। इसी प्रकार चौथी पक्तिमे प्रथम स्थानमे तृतीयपद, द्वितीयमे प्रथम पद, तृतीयमे द्वितीयपद, चतुर्थ स्थानमे चतुर्थपद और पञ्चम स्थानमे पञ्चम पद होनेसे—"णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्रका रूप होगा। प्रथम वर्गकी पाँचवीं पक्तिके प्रथम स्थानमे द्वितीय पद, द्वितीय स्थानमे तृतीय पद, तृतीय स्थानमें प्रथम पद, चतुर्थ स्थानमें चतुर्थपद और पञ्चम स्थानमें पञ्चमपद होनेसे "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्रका रूप हुआ। छठवीं पक्तिमें प्रथम स्थानमें तृतीयपद, द्वितीय स्थानमे द्वितीयपद, तृतीय स्थानमे प्रथम पद, चतुर्थ स्थानमें चतुर्थ पद और पञ्चम स्थानमे पञ्चम पदके होनेसे "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं, णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झा-याणं, णमो लोए सव्वसाहूणं" मन्त्रका रूप होगा।

इसी प्रकार द्वितीय वर्गकी प्रथम पंक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं यह मन्त्रका रूप होगा। द्वितीय पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मंत्र, तृतीय पक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, 'चतुर्थ पक्तिमे "णमो आइ-रियाण णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, पञ्चम पक्ति मे "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो अरिहताण णमो लोए सव्वसाहूण णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र और षष्ठ पक्तिमे "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाण णमो अरिहताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

तृतीय वर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उव-ज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाण" द्वितीय पक्तिमे 'णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो

आइरियाणं', यह मन्त्र, तृतीय पक्तिमे "णमो अरिहंताणं, णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र, चतुर्थ पक्तिमें 'णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्व-साहूणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्र, पञ्चम पक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाण" यह मन्त्र; और छठवीं पक्तिमे "णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाण णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

चतुर्थ वर्गकी प्रथम पक्तिमें "णमो अरिहंताणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूंणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र, द्वितीय पंक्तिमे "णमो आइरियाणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र, तृतीय पंक्तिमे "णमो अरिहताण णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र, चतुर्थ पक्तिमे णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र, पञ्चम पक्तिमे "णमो आइ-रियाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं" यह मत्र और छठवीं पक्तिमे "णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं, णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो सिद्धाणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

पञ्चम वर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र, द्वितीय पक्तिमे "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र, तृतीय पंक्तिमे "णमो सिद्धाण णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरि-हंताणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पक्तिमें "णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं, णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र, पञ्चम

पक्तिमे "णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताण" यह मन्त्र और षष्ठ पक्तिमे "णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

षष्ठ वर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र, द्वितीय पक्तिमें "णमो सिद्धाणं णमो अरिहताणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाण णमो लोए सव्वसाहूण" यह मन्त्र, तृतीय पक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाण णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र, चतुर्थ पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र, पञ्चम पक्तिमें "णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्र और षष्ठ पक्तिमें "णमो उवज्झायाण णमो अरिहताणं णमो सिद्धाण णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" यह मन्त्रका रूप होगा।

सप्तम वर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाण णमो लोए सव्वसाहूण णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, द्वितीय पंक्तिमें "णमो सिद्धाण णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, तृतीय पक्तिमें णमो अरिहंताण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, चतुर्थ पक्तिमे "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं" यह मन्त्र, पञ्चम पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाण" यह मन्त्र और षष्ठ पक्तिमे "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाण णमो अरिहंताणं णमो आइरियाण णमो उवज्झयाण" यह मन्त्रका रूप होता है।

अष्टम वर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाण" यह मन्त्र, द्वितीय पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताणं णमो लोए सव्वसाहूण णमो उवज्झायाण णमो आइरियाण" यह मन्त्र, तृतीय पक्तिमे "णमो अरिहताण णमो लोए सव्वसाहूण णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाण" यह मन्त्र, चतुर्थ पक्तिमे "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाण णमो आइरियाण" यह मन्त्र, पञ्चम पक्तिमें "णमो सिद्धाण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताण णमो उवज्झायाण णमो आइरियाण" यह मन्त्र और षष्ठ पक्तिमे "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो अरिहंताण णमो उवज्झायाणं णमो आइरियाण" यह मन्त्रका रूप होता है।

नवम वर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो अरिहताणं णमो आइरियाण णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाण णमो सिद्धाणं" यह मन्त्र, द्वितीय पक्तिमे "णमो आइरियाण णमो अरिहताणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाण" यह मन्त्र, तृतीय पक्तिमे "णमो अरिहताण णमो लोए सव्वसाहूण णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाण" यह मन्त्र; चतुर्थ पक्तिमे "णमो लोए सव्वसाहूण णमो अरिहंताण णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाण" यह मन्त्र, पञ्चम पक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो अरिहंताणं णमो उवज्झायाण णमो सिद्धाण" यह मन्त्र और षष्ठ पक्तिमे "णमो लोए सव्वसाहूण णमो आइरियाणं णमो अरिहंताण णमो उवज्झायाणं णमो सिद्धाणं" यह मन्त्रका रूप होता है।

दशमवर्गकी प्रथम पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र, द्वितीय पक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो सिद्धाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र, तृतीय पक्तिमे "णमो सिद्धाणं णमो

लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र; चतुर्थ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताणं" यह मन्त्र, पञ्चम पंक्तिमें "णमो आइरियाणं णमो लोए सव्वसाहूणं णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाण णमो अरिहंताण" यह मन्त्र और षष्ठ पंक्तिमें "णमो लोए सव्वसाहूणं णमो आइरियाण णमो सिद्धाणं णमो उवज्झायाणं णमो अरिहंताण" यह मन्त्रका रूप होता है। इस प्रकार १२० रूपान्तर णमोकार मन्त्रके होते हैं।

णमोकार मन्त्रका उपर्युक्त विधिसे उच्चारण तथा ध्यान करने पर लक्ष्यकी दृढ़ता होती है तथा मन एकाग्र होता है, जिससे कर्मोंकी असंख्यात-गुणी निर्जरा होती है। इन अंकोंको क्रमबद्ध इसलिए नहीं रखा गया है कि क्रमबद्ध होनेसे मनको विचार करनेका अवसर कम मिलता है, फलतः मन संसारतन्त्रमें पड़कर धर्मकी जगह मार धाड़ कर बैठता है। आनु-पूर्वीक्रमसे मन्त्रका स्मरण और मनन करनेसे आत्मिक शान्ति मिलती है। जो गृहस्थ व्रतोपवास करके धर्मध्यान पूर्वक अपना दिन व्यतीत करना चाहता है, वह दिनभर पूजा तो कर नहीं सकता। हाँ, स्वाध्याय अवश्य अधिक देर तक कर सकता है। अतः व्रती श्रावकको उपर्युक्त विधिसे इस मन्त्रका जाप कर मन पवित्र करना चाहिए। जिसे केवल एक माला फेरनी हो, उसे तो सीधे रूपमें ही णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। पर जिस गृहस्थको मनको एकाग्र करना हो, उसे उपर्युक्त क्रमसे जाप करनेसे अधिक शान्ति मिलती है। जो व्यक्ति स्नानादि क्रियाओंसे पवित्र होकर श्वेत वस्त्र पहनकर कुशासन पर बैठ उपर्युक्त विधिसे इस मन्त्रका १०८ बार स्मरण करता है अर्थात् १२०×१०८ बार उपांशु जाप—बाहरी-भीतरी प्रयास तो दिखलायी पड़े, पर कण्ठसे शब्दोच्चारण न हो, कण्ठमें ही शब्द अन्तर्जल्प करते रहें, करे तो वह कठिनसे कठिन कार्यको सरलतापूर्वक सिद्ध कर लेता है। लौकिक सभी प्रकारकी मनःकामनाएँ उक्त प्रकारसे जाप करने पर सिद्ध होती हैं। दिगम्बर मुनि कर्म क्षय करनेके लिए उक्त

प्रकारका जाप करते हैं। जब तक रूपातीत ध्यानकी प्राप्ति नहीं होती, तब तक इस मन्त्र-द्वारा किया पदस्थ ध्यान असंख्यातगुणी निर्जराका कारण है।

परिवर्तन—भग सख्यामें अन्त्य गच्छका भाग देनेसे जो लब्ध आवे, वह उस अन्त्य गच्छका परिवर्तनाङ्क होता है, इसी प्रकार उत्तरोत्तर गच्छोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह उत्तरोत्तर गच्छ सम्बन्धी परिवर्तनाङ्क संख्या होती है। उदाहरणार्थ—पूर्वोक्त भगसंख्या ३९९१६८०० में अन्त्यगच्छ ११ का भाग दिया तो ३९९१६८०० ÷ ११ = ३६२८८०० परिवर्तनाङ्क अन्त्यगच्छका हुआ। इसी तरह ३६२८८०० ÷ १० = ३६२८८० यह परिवर्तनाङ्क दस गच्छका आया। ३६२८८० ÷ ९ = ४०३२० यह परिवर्तनाङ्क नौ गच्छका आया। ४०३२० ÷ ८ = ५०४० यह परिवर्तनाङ्क आठ गच्छका हुआ। ५०४० ÷ ७ = ७२० परिवर्तनाङ्क सात गच्छका आया। ७२० ÷ ६ = १२० यह परिवर्तनाङ्क छः गच्छका; १२० ÷ ५ = २४ परिवर्तनाङ्क पाँच गच्छका, २४ ÷ ४ = ६ परिवर्तनाङ्क चार गच्छका, ६ ÷ ३ = २ परिवर्तनाङ्क तीन गच्छका, २ ÷ २ = १ परिवर्तनाङ्क दो गच्छका एवं १ ÷ १ = १ परिवर्तनाङ्क एक गच्छका हुआ। परिवर्तनाङ्क चक्र निम्न प्रकार बनाया जायगा।

परिवर्तनाङ्क चक्र

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१	१	२	६	२४	१२०	७२०	५०४०	४०३२०	३६२८८०	३६२८८००

नष्ट और उद्दिष्ट—"रूपं दृष्ट्वा पदानयनं नष्टः"—संख्याको रख कर पदका प्रमाण निकालना नष्ट है। इसकी विधि है कि भंगसंख्यामें [illegible] देनेपर जो शेष रहे, उस शेष [illegible] भग ही पदका मान होगा। [illegible] २४-२४ भंगोंके [illegible] बनाये गये हैं। अतः शेष तुल्य पद [illegible] चाहिए। एक शेषमें 'णमो अरिहंताणं' दो शेषमें 'णमो सिद्धाणं' [illegible]

शेषमें 'णमो आइरियाणं' चार शेषमें 'णमो उवज्झायाणं' और पाँच शेषमे 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पद समझना चाहिए। उदाहरणार्थ—४२ सख्याका पद लाना है। यहाँ सामान्य पद संख्या ५ से भाग दिया तो—४२ ÷ ५ = ८, शेष २। यहाँ शेष पद 'णमो सिद्धाणं' हुआ। ४२ वाॅ भग पूर्वोक्त वर्गोंमें देखा तो 'णमो सिद्धाणं' का आया।

"पदं धृत्वा रूपानयनमुद्दिष्टः"—पदको रखकर सख्याका प्रमाण निकालना उद्दिष्ट होता है। इसकी विधि यह है कि 'णमोकार मन्त्रके पदको रखकर सख्या निकालनेके लिए "संठाविदूण रूवं उवरीयो संगुणित्तु सगमाणे। अवणिज्ज अणंकदियं कुज्जा एसेव सव्वत्थ"। अर्थात् एकका अक स्थापनकर उसे सामान्यपदसंख्यासे गुणा कर दे। गुणनफलमेंसे अनकित पदको घटा दे, जो शेष आवे, उसमें ५, १०, १५, २०, २५, ३०, ३५, ४०, ४५, ५०, ५५, ६०, ६५, ७०, ७५, ८०, ८५, ९०, ९५, १००, १०५, ११०, ११५, जोड़ देनेपर भग सख्या आती है। अपुनरुक्त भग सख्या १२० है, अतः ११५ ही उसमे जोडना चाहिए। उदाहरण 'णमो सिद्धाणं' पदकी भंगसंख्या निकालनी है। अतः यहाॅ १ सख्या स्थापित कर गच्छ प्रमाणसे गुणा किया। १×५=५, इसमेंसे अनकित पद सख्याको घटाया तो यहाॅ यह अनकित सख्या ३ है। अतः ५−३=२ सख्या हुई। २+५=७ वाँ भग, २+१०=१२ वाॅ भंग, १५+२=१७ वाॅ भग, २०+२=२२ वाँ भग, २५+२=२७ वाॅ भग, ३०+२=३२ वाॅ भग, ३५+२=३७ वाॅ भंग, ४०+२=४२ वाँ भग, ४५+२=४७ वाँ भग, ५०+२=५२ वाॅ भंग, ५५+२=५७ वाँ भग, ६०+२=६२ वाॅ भग, ६५+२=६७ वाँ भग, ७०+२=७२ वाॅ भग, ७५+२=७७ वाँ भग, ८०+२=८२ वाॅ भग, ८५+२=८७ वाँ भग, ९०+२=९२ वाँ भंग, ९५+२=९७ वाॅ १००+२+१०२ वाँ भंग, १०५+२=१०७ वाॅ भंग, ११०+२=११२ वाँ भग, ११५+२=११७ वाँ भंग, हुआ। अर्थात् 'णमो

सिद्धाणं' यह पद २ रा, ७ वाँ, १२ वाँ, १७ वाँ,......११७ वाँ भंग है। इसी प्रकार नष्टोद्दिष्टके गणित किये जाते है। इन गणितोंके द्वारा भी मनको एकाग्र किया जाता है तथा विभिन्न क्रमो-द्वारा णमोकार मन्त्रके जाप द्वारा ध्यानकी सिद्धि की जाती है। यह पदस्थ ध्यानके अन्तर्गत है तथा पदस्थध्यानकी पूर्णता इस महामन्त्रको उपर्युक्त जाप विधिके द्वारा सम्पन्न होती है। साधक इस महामन्त्रके उक्त क्रमसे जाप करनेपर सहस्रों पापोका नाश करता है। आत्माके मोह और क्षोभको उक्त भगजाल-द्वारा णमोकार मन्त्रके जापसे दूर किया जाता है।

आचारशास्त्र और णमोकारमन्त्र

मानव जीवनको सुव्यवस्थित रूपसे यापन करने तथा इस अमूल्य मानवशरीर द्वारा चिरसञ्चित कर्मकालिमाको दूर करनेका मार्ग बतलाना आचारशास्त्रका विषय है। आचारशास्त्र जीवनके विकासके लिए विधानका प्रतिपादन करता है, यह आबालवृद्ध सभीके जीवनको सुखी बनानेवाले नियमोंका निर्धारण कर वैयक्तिक और सामाजिक जीवनको व्यवस्थित बनाता है। यों तो आचार शब्दका अर्थ इतना व्यापक है कि मनुष्यका सोचना, बोलना, करना आदि सभी क्रियाएँ इसमे परिगणित हो जाती हैं। अभिप्राय यह है कि मनुष्यकी प्रत्येक प्रवृत्ति और निवृत्तिको आचार कहा जाता है। प्रवृत्तिका अर्थ है, इच्छा पूर्वक किसी काममे लगना और निवृत्तिका अर्थ है, प्रवृत्तिसे रोकना। प्रवृत्ति अच्छी और बुरी दोनो प्रकार की होती है। मन, वचन और कायके द्वारा प्रवृत्ति सम्पन्न की जाती है। अच्छा सोचना, अच्छे वचन बोलना, अच्छे कार्य करना, मन, वचन, कायकी सत्प्रवृत्ति और बुरा सोचना, बुरे वचन बोलना, बुरे कार्य करना असत्प्रवृत्ति है।

अनादिकालीन कर्मसंस्कारोंके कारण जीव वास्तविक स्वभावसे [illegible] हुए है, अतः यह [illegible] विषयवासनाजन्य सुखको ही वास्तविक सुख समझ [illegible] है। ये विषय सुख भी आरम्भ में बड़े सुन्दर मालूम होते है, इनका [illegible] लुभावना है, जिसकी भी दृष्टि इन पर पड़ती है, वही इनकी

ओर आकृष्ट हो जाता है, पर इनका परिणाम हलाहल विषके समान होता है। कहा भी है—"आपातरम्ये परिणामदुःखे सुखे कथं वैषयिके रतोऽसि" अर्थात्—वैषयिक सुख परिणाममें दुःखकारक होते हैं, इनसे जीवनको क्षणिक शान्ति मिल सकती है, किन्तु अन्तमें दुःखदायक ही होते हैं। आचारशास्त्र जीवको सचेत करता है तथा उसे विषय-सुखोंमें रत होनेसे रोकता है। मोह और तृष्णाके दूर होने पर प्रवृत्ति सत् हो जाती है, परन्तु यह सत्प्रवृत्ति भी जब-तब अपनी मर्यादाका उल्लघन कर देती है। अतएव प्रवृत्तिकी अपेक्षा निवृत्ति पर ही आचारशास्त्र जोर देता है। निवृत्ति मार्ग ही व्यक्तिकी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तिका विकास करता है, प्रवृत्तिमार्ग नहीं। प्रवृत्तिमार्गमें सभल कर चलने पर भी जोखिम उठानी पड़ती है, भोग-विलास जब तब जीवनको अशान्त बना देते हैं, किन्तु निवृत्तिमार्गमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता। इसमें आत्मा रत्नत्रय रूप आचरणकी ओर बढता है तथा अनुभव होने लगता है कि जो आत्मा ज्ञाता, द्रष्टा है, जिसमें अपरिमित बल है, वह मैं हूँ। मेरा सासारिक विषयोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मेरा आत्मा शुद्ध है, इसमें परमात्माके सभी गुण वर्तमान हैं। शुद्ध आत्माको ही परमात्मा कहा जाता है। अतः शक्तिकी अपेक्षा प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा है। इस प्रकार जैसे-जैसे आत्म-तत्त्वका अनुभव होता है, वैसे-वैसे ऐन्द्रियिक सुख सुलभ होते हुए भी नहीं रुचते हैं।

निवृत्तिमार्गकी ओर अथवा सत्प्रवृत्ति मार्गकी ओर जीवकी प्रवृत्ति तभी होती है, जब यह रत्नत्रय रूप आत्मतत्त्वकी आराधना करता है। णमोकार मन्त्रमें आराधना ही है। इस मन्त्रका चिन्तन मनन और स्मरण करनेसे रत्नत्रयरूप आत्माका अनुभव होता है, जिससे मन, वचन और कायकी सत्प्रवृत्ति होती है तथा कुछ दिनोंके पश्चात् निवृत्तिमार्गकी ओर भी व्यक्ति अपने आप झुक जाता है। विषय कषायोंसे इसे अरुचि हो जाती है। इस महामन्त्रके जप और मननमें ऐसी शक्ति है कि व्यक्ति जिन बाह्य पदार्थोंमें सुख समझता था, जिनके प्राप्त होनेसे प्रसन्न होता था, जिनके पृथक् होनेसे

इसे दुःखका अनुभव होता था, उन तत्त्वों जगाम में छोड़ देता है। आत्मा के अहितकारक विषय और कषायोंसे भी इसकी प्रवृत्ति हट जाती है। इन्द्रियोंकी पराधीनता, जो कि कुगतिकी ओर जीवको ले जानेवाली है समाप्त हो जाती है। मंगल वाक्यका चिन्तन समस्त पापको गलाने—नष्ट करनेवाला होता है और अनेक प्रकारके सुखोंको उत्पन्न करनेवाला होता है। अत सुखाकाङ्क्षीको णमोकार मन्त्र जैसे महा पावन मगल वाक्योंका चिन्तन मनन और स्मरण करना आवश्यक है: जिससे उसकी राग-द्वेष निवृत्ति हो जाती है। करणलब्धिकी प्राप्तिमे सहायक णमोकार मन्त्र है, इससे अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्वका अभाव होते ही आत्माने पुण्यास्रव होनेसे बद्ध कर्मजाल विशृङ्खलित होने लगता है।

णमोकार मन्त्रमे पञ्चपरमेष्ठीका ही स्मरण किया गया है। पञ्चपरमेष्ठीकी शरण जाने, उनकी स्मृति और चिन्तनसे रागद्वेष रूप प्रवृत्ति रुक जाती है, पुरुषार्थकी वृद्धि होने लगती है तथा रत्नत्रय गुण आत्मामें आविर्भूत होने लगता है। आत्माके गुणोंको आच्छादित करनेवाला मोह ही सबसे प्रधान है, इसको दूर करनेके लिए एकमात्र रामवाण पञ्च परमेष्ठीके स्वरूपका मनन, चिन्तन और स्मरण ही है। णमोकार मन्त्रके उच्चारण मात्रसे आत्मामे एक प्रकारकी विद्युत् उत्पन्न हो जाती है जिससे सम्यक्त्वकी निर्मलताके साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रकी भी वृद्धि होती है। क्योंकि इस महामन्त्रकी आराधना किसी अन्य परमात्मा या शक्ति विशेषकी आराधना नहीं है, प्रत्युत अपनी आत्माकी ही उपासना है। ज्ञान, दर्शन मय अखण्ड चैतन्य आत्माके स्वरूपका अनुभवकर अपने अखण्ड साधक स्वभावकी उपलब्धिके लिए इस महामन्त्र द्वारा ही प्रयत्न किया जाता है।

णमोकार मन्त्र या इस मन्त्रके अंगभूत प्रभाव आदि बीजमन्त्रोंके ध्यानसे आत्मामे केवलज्ञानपर्यायको उत्पन्न किया जा सकता है। साधक बाह्य जगत्से अपनी प्रवृत्तिको रोककर जब आत्ममय कर देता है, तो उस

पर्यायकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। णमोकार मन्त्रमें इतनी बड़ी शक्ति है जिससे यह मन्त्र श्रद्धा पूर्वक साधना करनेवालोंको आत्मानुभूति उत्पन्न कर देता है तथा इस मन्त्रके साधकमें प्रथम गुण आ जाता है। अतः णमोकार मन्त्रके द्वारा सम्यक्त्व और केवलज्ञान पर्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। यद्यपि निश्चय नयकी अपेक्षा सम्यक्त्व और केवलज्ञान आत्मामें सर्वदा विद्यमान है, क्योंकि ये आत्माका स्वभाव हैं, इनमें परके अवलम्बनकी आवश्यकता नहीं। णमोकार मन्त्र आत्मासे पर नहीं है, यह आत्मस्वरूप है। अतएव निष्कामकी अपेक्षा यह महामन्त्र आत्मोत्थानके लिए आलम्बन नहीं है, किन्तु आत्मा ही स्वय उपादान और निमित्त है यथा आत्माकी शुद्धिके लिए शुद्धात्माको अवलबन बनाया जाता है, इसका अर्थ है कि शुद्धात्माको देखकर उनके ध्यान-द्वारा अपनी अशुद्धताको दूर किया जाता है अर्थात् आत्मा स्वय ही अपनी शुद्धिके लिए प्रयत्नशील होता है। णमोकार मन्त्र भाव और द्रव्य रूपसे आत्मामें इतनी शुद्धि उत्पन्न करता है जिससे श्रद्धागुणके साथ श्रावक गुण भी उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि यह आनन्द आत्माके भीतर ही वर्तमान है, कहीं बाहरसे प्राप्त नहीं किया जाता है, किन्तु णमोकार मन्त्रके निमित्तके मिलते ही उद्बुद्ध हो जाता है। चरित्र और वीर्य आदि गुण भी इस महामन्त्रके निमित्तसे उपलब्ध किये जा सकते हैं। अतएव आत्माके प्रधान कार्य रत्नत्रय या उत्तम क्षमादि पक्ष धर्मकी उपलब्धिमें यह मन्त्र परम सहायक है।

मुनि पञ्च महाव्रत, पॉच समिति, पॉच इन्द्रियजय, षट् आवश्यक, स्नानत्याग, दन्तधावनका त्याग, पृथ्वीपर शयन, खड़े होकर भोजन लेना, दिनमें एकबार शुद्ध निर्दोष आहार लेना, नग्न रहना, और केशलुञ्च करना इन अट्ठाईस मूल गुणोंका पालन करते हैं। ये मध्य रात्रिमें चार घड़ी निद्रा लेते हैं,

मुनिका आचार और णमोकार मन्त्र

पश्चात् स्वाध्याय करते हैं। दो घड़ी रात शेष रह जाने पर स्वाध्याय समाप्त कर प्रतिक्रमण करते हैं। तीनों सन्ध्याओंमें जिनदेवकी वन्दना

तथा उनके पवित्र गुणोंका स्मरण करते है। कायोत्सर्ग करते समय हृदय-कमलमे प्राणवायुके साथ मनका नियमन करके "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धांणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं" मन्त्रका प्राणायामकी विधिसे नौ बार जप करते है। कायोत्सर्गके पश्चात् स्तुति, वन्दना आदि क्रियाएँ करते है। इन क्रियाओंमे भी णमोकार मन्त्रके ध्यानकी उन्हे आवश्यकता होती है। दैवसिक प्रतिक्रमणके अन्तमे मुनि कहता है—"पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-लोच-षडावश्यकक्रिया-अष्टाविंशतिमूलगुणाः उत्तमक्षमामार्दवार्जव-शौच-सत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादशशीलसहस्राणि, चतुरशीतिलक्ष गुणाः, त्रयोदशविधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुसाक्षिकं सम्यक्त्वपूर्वकं दृढव्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।

अथ सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं दैवसिकप्रतिक्रमणक्रियायां कृतदोष निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावन्दनास्तवसमेतं आलोचनासिद्धभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं—इति प्रतिज्ञाप्य णमो अरिहंताणं इत्यादि सामायिकदण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात्।

इस उद्धरणसे स्पष्ट है कि मुनिराज सर्व अतिचारकी शुद्धिके लिए दैवसिक प्रतिक्रमण करते हैं, उस समय सकल कर्मोंके विनाशके लिए भाव पूजा वन्दना और स्तवन करते हुए कायोत्सर्ग क्रिया करते हैं तथा इस क्रियामे णमोकार मन्त्रका उच्चारण करना परमावश्यक होता है। नैशिक प्रतिक्रमणके समय भी "सर्वातिचारविशुद्ध्यर्थं नैशिकप्रतिक्रमण-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण भावपूजावन्दनास्तवसमेतं प्रतिक्रमणभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्" पढ़कर णमोकार मन्त्ररूप दडकको पढकर कायोत्सर्गकी क्रिया सम्पन्न करता है। पाक्षिक प्रतिक्रमणके समय तो अढाई द्वीप, पन्द्रह कर्म भूमियोंमे जितने अरिहंत, केवलीजिन, तीर्थंकर, सिद्ध, धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, धर्म नायक, उपाध्याय, साधुकी भक्ति करते हुए इस मन्त्रके २७ श्वासोच्छ्वा-

सोंमे ९ जाप करने चाहिए। प्रतिक्रमण दण्डक आरम्भमें ही 'णमो अरिहं-ताणं आदि णमोकार मन्त्रके साथ "णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं, णमो परमोहिजिणाणं, णमो सव्वोहिजिणाणं, णमो अणंतोहि जिणाणं, णमो मोहबुद्धीणं, णमो बीजबुद्धीणं, णमो पादाणुसारीणं, णमो संभिण्ण-सोदाराणं, णमो सयंबुद्धाणं, णमो पत्तेयबुद्धाणं, णमो बोहियबुद्धाण" आदि जिनेन्द्रोंको नमस्कार करते हुए प्रतिक्रमणके मध्यमें अनेक बार णमो-कार मन्त्रका ध्यान किया गया है। प्रत्येक महाव्रतकी भावनाको दृढ करनेके लिए भी णमोकार मन्त्रका जाप करना आवश्यक समझा जाता है। अतः "प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणां सम्यक्त्वपूर्वकं दृढ़व्रतं सुव्रतं समारूढ ते मे भवतु" कहकर "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाण" आदि मन्त्रका २७ श्वासोच्छ्वासोंमें नौ बार जाप किया जाता है। प्रत्येक महाव्रतकी भावनाके पश्चात् यह क्रिया करनी पडती है। प्रतिक्रमणमें आगे बढने पर "अइचारं पड्किक्कमामि णिंदामि गरहांदि अप्पाणं वोस्सरामि जाव अर-हंताणं भयवताणं णमोक्कारं करेमि पज्जुवासं करेमि ताव काय पावकम्म दुच्चरिणं वोस्सरामि। णमो अरिहताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं"रूपसे कायोत्सर्ग करता है। वार्षिक प्रतिक्रमण क्रियामें तो णमोकार मन्त्रके जापकी अनेक बार आवश्यकता होती है। मुनिराजकी कोई भी प्रतिक्रमणक्रिया इस णमोकारमन्त्रके स्मरणके बिना सभव नहीं है। २७ श्वासोच्छ्वासोमें इस महामन्त्रका ९ बार उच्चारण किया जाता है।

इसी प्रकार प्रातःकालीन देववदनाके अनन्तर मुनिराज सिद्ध, शास्त्र, तीर्थंकर, निर्वाण, चैत्य और आचार्य आदि भक्तियोका पाठ करते हैं। प्रत्येक भक्तिके अन्तमे दण्डक--णमोकार मन्त्रका नौ बार जाप करते हैं। यह भक्तिपाठ ४८ मिनट तक प्रात कालमें किया जाता है। पश्चात् स्वाध्याय आरम्भ करते है। मुनिराज शास्त्र पढनेके पूर्व नौ बार णमोकार मन्त्र तथा शास्त्र समाप्त करनेके पश्चात् नौ बार णमोकार मन्त्रका ध्यान करते हैं।

इतना ही नहीं, गमन करने, बैठने, आहार करने, शुद्धि करने, उपदेश देने, शयन करने आदि समस्त क्रियाओंके आरम्भ करनेके पूर्व और समस्त क्रियाओंकी समाप्तिके पश्चात् नौ बार णमोकार मन्त्रका जाप करना परम आवश्यक माना गया है। षट् आवश्यकोंके पालनेमें तो पद-पद पर इस महामन्त्रकी आवश्यकता है। मुनिधर्मकी ऐसी एक भी क्रिया नहीं है, जो इस महामन्त्रके जाप बिना सम्पन्न की जा सके। जितनी भी सामान्य या विशेष क्रियाएँ हैं, वे सब इस महामन्त्रकी आराधनापूर्वक ही सम्पन्न की जाती हैं। द्रव्यलिंगी मुनिको भी इन क्रियाओंकी समाप्ति इस मन्त्रके ध्यानके साथ ही सम्पन्न करनी होती है। किन्तु भावलिंगी मुनि अपनी भावनाओंको निर्मल करता हुआ इस मंत्रकी आराधना करता है तथा सामायिक कालमे इस मन्त्रका ध्यान करता हुआ अपने कर्मोंकी निर्जरा करता है। पूज्यपाद स्वामीने पञ्चगुरु भक्तिमे बताया है कि मुनिराज भक्ति-पाठ करते णमोकार मन्त्रका आदर्श सामने रखते है, जिससे उन्हे, परम शान्ति मिलती है। मन एकाग्र होता है और आत्मा धर्ममय हो जाती है। बतलाया गया है—

जिनसिद्धसूरिदेशकसाधुवरानमलगुणगणोपान्।
पञ्चनमस्कारपदैस्त्रिसन्ध्यमभिनौमि मोक्षलाभाय ॥ ६ ॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधव ।
कुर्वन्तु मङ्गलाः सर्वे निर्वाणपरमश्रियम् ॥ ८ ॥
पान्तु श्रीपादपद्मानि पञ्चानां परमेष्ठिनाम् ।
ललितानि सुराधीशचूडामणिमरीचिभिः ॥ १० ॥
अरहा सिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
एयाण णमुक्कारा भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥

अर्थात्—निर्मल पवित्र गुणोंसे युक्त अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुको मैं मोक्ष-प्राप्तिके लिए तीनों सन्ध्याओंमें नमस्कार करता हूँ। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पञ्चपर-

मेष्ठी हमारा मगल करें, निर्वाण पदकी प्राप्ति हो। पञ्चपरमेष्ठियोंके वे चरणकमल रक्षा करें, जो इन्द्रके नमस्कार करनेके कारण मुकुट मणियोंसे निरन्तर उद्भासित होते रहते हैं। पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार करनेसे भव-भवमें सुखकी प्राप्ति होती है। जन्म-जन्मान्तरका सचित पाप नष्ट हो जाता है और आत्मा निर्मल निकल आता है। अतः मुनिराज अपनी प्रत्येक क्रियाके आरम्भ और अन्तमे इस महामन्त्रका स्मरण करते हैं।

प्रवचनसारमें कुन्दकुन्द स्वामीने बताया है कि जो अरिहतके आत्माको ठीक तरहसे समझ लेता है, वह निज आत्माको भी द्रव्य-गुण पर्यायसे युक्त अवगत कर सकता है। णमोकार मन्त्रकी आराधना स्थिर सचित पापको भस्म करनेवाली है। इस मन्त्रके ध्यानसे अरिहत और सिद्धकी आत्माका ध्यान किया जाता है, आत्मा कर्मकलङ्कसे रहित निज स्वरूपको अवगत करने लगता है। कहा गया है—

जो जाणदि अरिहंत दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥ ८०॥

अ० १

"यो हि नामार्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः परिच्छिनत्ति स खल्वात्मानं परिच्छिनत्ति, उभयोरादिनिश्चयेनाविशेपात्। अर्हतोऽपि पाककाष्ठागतकार्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मरूपं ततस्तत्परिच्छेदे सर्वात्मपरिच्छेदः। तत्रान्वयो द्रव्यं, अन्वयं विशेषण गुणः, अन्वयव्यतिरेकाः पर्यायाः।"

अर्थात् जो अरिहतको द्रव्य, गुण और पर्याय रूपसे जानता है, वह अपने आत्माको जानता है, और उसका मोह नष्ट हो जाता है। क्योंकि जो अरिहतका स्वरूप है, वही स्वभाव दृष्टिसे आत्माका भी यथार्थ स्वरूप है। अतएव मुनिराज सर्वदा इस महामन्त्रके स्मरण द्वारा अपने आत्मामे पवित्रता लाते हैं।

समाधिकी प्राप्तिके लिए प्रयत्नवाले साधक मुनि तो इसी महामन्त्रकी आराधना करते हैं। अतः मुनिके आचारके साथ इस महामन्त्रका विशेष

सम्बन्ध है। जब मुनिदीक्षा ग्रहण की जाती है, उस समय इसी महामन्त्रके अनुष्ठान द्वारा दीक्षाविधि सम्पन्न की जाती है।

श्रावकाचारकी प्रत्येक क्रियाके साथ इस महामन्त्रका घनिष्ट सम्बन्ध है। धार्मिक एवं लौकिक सभी कृत्योंके प्रारम्भमें श्रावक इस महामन्त्रका स्मरण करता है। श्रावककी दिनचर्याका वर्णन करते हुए बताया गया है कि प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें शय्या त्याग करनेके अनन्तर णमोकार मन्त्रका स्मरणकर अपने कर्तव्यका विचार करना चाहिए। जो श्रावक प्रातःकालीन नित्य क्रियाओं-के अनन्तर देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान इन षट्कर्मोंको सम्पन्न करता है। विधिपूर्वक अहिंसात्मक ढगसे अपनी आजीविका अर्जन कर आसक्तिरहित हो अपने कार्योंको सम्पन्न करता है, वह धन्य है। श्रावकके इन षट्कर्मोंमे णमोकार महामन्त्र पूर्णतया व्याप्त है। देवपूजाके प्रारम्भमें भी णमोकार मन्त्र पढकर "ओ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नम. पुष्पाञ्जलिम्" कहकर पुष्पाञ्जलि अर्पण किया जाता है। पूजनके बीच-बीचमे भी णमोकार महामन्त्र आता है। यह बार-बार व्यक्तिको आत्मस्वरूपका बोध कराता है। तथा आत्मिक गुणोंकी चर्चा करनेके लिए प्रेरित करता है।

श्रावणकाचार और णमोकार महामन्त्र

गुरुभक्तिमे भी णमोकार मन्त्रका उच्चारण करना आवश्यक है। गुरुपूजाके आरम्भमे भी णमोकार मन्त्रको पढ़कर पुष्प चढ़ाये जाते हैं पश्चात् जल, चन्दन आदि द्रव्योंसे पूजा की जाती है। यों तो णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित आत्मा ही गुरु हो सकते हैं। अतः गुरु अर्पण रूप भी यही मन्त्र है। स्वाध्याय करनेमें तो णमोकार मन्त्रके स्वरूपका ही मनन किया जाता है। श्रावक इस महामन्त्रके अर्थको अवगत करनेके लिए द्वादशाग जिनवाणीका अध्ययन करता है। यद्यपि यह महामन्त्र समस्त द्वादशागका सार है, अथवा द्वादशाग रूप ही है। ससारकी समस्त बाधाओंको दूर करनेवाला है। शास्त्र प्रवचन आरम्भ करनेके पूर्व जो मगलाचरण पढ़ा जाता है, उसमे णमोकारमन्त्र व्याप्त है। कर्तव्यमार्गका

परिज्ञान करानेके लिए इसके समान कोई भी अन्य साधन नहीं हो सकता है। जीवनके अज्ञानभाव और अनात्मिक विश्वास इस मन्त्रके स्वाध्याय द्वारा दूर हो जाते हैं। लोकैषणा, पुत्रैषणा और वित्तैषणाएँ इस महामन्त्रके प्रभावसे नष्ट हो जाती हैं तथा आत्माके विकार नष्ट होकर आत्मा शुद्ध निकल आता है। स्वाध्यायके साथ तो इस महामन्त्रका सम्बन्ध वर्णनातीत है। अतः गुरुभक्ति और स्वाध्याय इन दोनों आवश्यक कर्त्तव्योंके साथ इस महामन्त्रका अपूर्व सम्बन्ध है। श्रावककी ये क्रियाएँ इस मन्त्रके सहयोगके बिना सम्भव ही नहीं है। ज्ञान, विवेक और आत्मजागरणकी उपलब्धिके लिए णमोकार मन्त्रके भावध्यानकी आवश्यकता है।

इच्छाओं, वासनाओं और कषायों पर नियन्त्रण करना सयम है। शक्तिके अनुसार सर्वदा सयमका धारण करना प्रत्येक श्रावकके लिए आवश्यक है। पञ्चेन्द्रियोंका जय, मन-वचन-कायकी अशुभ प्रवृत्तिका त्याग तथा प्राणीमात्रकी रक्षा करना प्रत्येक व्यक्तिके लिए आवश्यक है। यह सयम ही कल्याणका मार्ग है। संयमके दो भेद हैं—प्राणीसयम और शक्ति-सयम। अन्य प्राणियोंको किञ्चित् भी दुःख नहीं देना, समस्त प्राणियोंके साथ भ्रातृत्व भावनाका निर्वाह करना और अपने समान सभीको सुख-आनन्द भोगनेका अधिकारी समझना प्राणी सयम है। इन्द्रियोंको जीतना तथा उनकी उद्दाम प्रवृत्तिको रोकना इन्द्रिय-सयम है। णमोकार मन्त्रकी आराधनाके बिना श्रावक सयमका पालन नहीं कर सकता है, क्योंकि इसी मन्त्रका पवित्र स्मरण सयमकी ओर जीवको झुकाता है। इच्छाओंका निरोध करना तप है, णमोकार महामन्त्रका मनन, ध्यान और उच्चारण इच्छाओंको रोकता है। व्यर्थकी अनावश्यक इच्छाएँ, जो व्यक्तिको दिनरात परेशान करती रहती हैं, इस महामन्त्रके करणसे रुक जाती हैं, इच्छाओ पर नियन्त्रण हो जाता है तथा सारे अनर्थोंकी जड़ चित्तकी चचलता और उसका सतत सस्कार युक्त रहना, इस महामन्त्रके ध्यानसे रुक जाता है। अहकारवेष्टित बुद्धिके ऊपर अधिकार प्राप्त करनेमें इससे बढ़कर अन्य कोई

साधन नहीं है। अतएव संयम और तपकी सिद्धि इस मन्त्रकी आराधना द्वारा ही सम्भव है।

दान देना गृहस्थका नित्य प्रतिका कर्तव्य है। दान देनेके प्रारम्भमे भी णमोकार मन्त्रका स्मरण किया जाता है। इस मन्त्रका उच्चारण किये विना कोई भी श्रावक दानकी क्रिया सम्पन्न कर ही नहीं सकता है। दान देनेका ध्येय भी त्यागवृत्ति द्वारा अपनी आत्माको निर्मल करना और मोह को दूर करना है। इस मन्त्रकी आराधना-द्वारा राग-मोह दूर होते है और आत्मामे रत्नत्रयका विकास होता है। अतएव दैनिक षट्कर्मोंमें णमोकार मन्त्र अधिक सहायक है।

श्रावककी दैनिक क्रियाओंका दर्शन करते हुए बताया गया है कि प्रातः-काल नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर जिनमन्दिरमे जाकर भगवान्‌के सामने णमोकार मन्त्रका स्मरण करना चाहिए। दर्शनस्तोत्रादि पढ़नेके अनन्तर ईर्यापथशुद्धि करना आवश्यक है। इसके पश्चात् प्रतिक्रमण करते हुए कहना चाहिए कि 'हे प्रभो! मेरे चलनेमे जो कुछ जीवोंकी हिंसा की हो, उसके लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मन, वचन, कायको वशमें न रखनेसे, बहुत चलनेसे, इधर-उधर फिरनेसे, आनेजानेसे, द्वीन्द्रियादिक प्राणियों एव हरित काय पर पैर रखनेसे, मल-मूत्र थूक आदिका उत्क्षेपण करनेसे, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय या पञ्चेन्द्रिय अपने स्थान पर रोके गये हों, तो मैं उसका प्रायश्चित्त करता हूँ। उन दोषोंकी शुद्धिके लिए अरहतोंको नमस्कार करता हूँ और ऐसे पापकर्म तथा दुष्टाचारका त्याग करता हूँ।" "णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झा-याणं णमो लोए सव्वसाहूणं" इस मन्त्रका नौ बार जापकर प्रायश्चित्त विधिपूर्वक किया जाता है। प्रायश्चित्त विधिमे इस मन्त्रकी उपयोगिता अत्यधिक है। इसके विना यह विधि सम्पन्न नहीं की जाती है। २७ श्वासो-च्छ्वासमें ९ बार इसे पढ़ा जाता है।

आलोचनाके समय सोचे कि पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिम चारों

दिशाओं और ईशान आदि विदिशाओंमें इधर-उधर घूमने या ऊपर-की ओर मुँहकर चलनेमें प्रमादवश एकेन्द्रियादि जीवोंकी हिंसा की हो, करायी हो, अनुमति दी हो, वे सब पाप मेरे मिथ्या हों। मैं दुष्कर्मोंकी शान्तिके लिए पञ्चपरमेष्ठीको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार मनमें सोचकर अथवा वचनोंसे उच्चारण कर नौ बार णमोकार मन्त्रका पाठ करना चाहिए।

सन्ध्या-वन्दनाके समय "ओ ह्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं द मं हं सं तं पं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा।" इस मन्त्र-द्वारा द्वादशांगोंका स्पर्श कर प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाममें दायें हाथकी पाँचो अंगुलियोंसे नाक पकड़कर अंगूठेसे दायें छिद्रको दबाकर बायें छिद्रसे वायुको खींचे। खींचते समय 'णमो अरिहंताणं' और 'णमो सिद्धाणं' इन दोनों पदोंका जाप करे। पूरी वायु खींच लेने पर अंगुलियोंसे बायें छिद्रको दबाकर वायुको रोक ले। इस समय 'णमो आइरियाणं' और 'णमो उवज्झायाणं' इन पदोंका जप करे। अन्तमें अंगूठेको ढीलाकर धीरे-धीरे दाहिने छिद्रसे वायुको निकालना चाहिए तथा 'णमो लोए सव्वसाहूणं' पदका जाप करना चाहिए। इस तरह सन्ध्यावन्दनके अन्तमें नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़कर चारों दिशाओंको नमस्कार कर विधि समाप्त करना चाहिए। हरिवंशपुराणमें बताया गया है कि णमोकार मन्त्र और चतुरुत्तममंगल श्रावक की प्रत्येक क्रियाके साथ सम्बद्ध हैं, श्रावककी कोई भी क्रिया इस मन्त्रके बिना सम्पन्न नहीं की जाती है। दैनिक पूजन आरम्भ करनेके पहले ही सर्वपाप और विघ्नका नाशक होनेके कारण इसका स्मरण कर पुष्पाञ्जलि क्षेपण की जाती है। श्रावक स्वस्ति-वाचन करता हुआ इस महामन्त्रका पाठ करता है। बताया गया है—

पुण्यपञ्चनमस्कारपदपाठपवित्रितौ।
चतुरुत्तममाङ्गल्यशरणप्रतिपादिनौ॥

आचार्यकल्प श्री पं० आशाधरजीने भी श्रावकोंकी क्रियाओंके प्रारम्भ में णमोकार महामन्त्रके पाठको प्राधान्य दिया है। पूज्यपाद स्वामीने

दशभक्तिमे तथा उस ग्रन्थके टीकाकार प्रभाचन्द्रने इस महामन्त्रको दण्डक कहा है। इसे दण्डक कहे जानेका अभिप्राय ही यह है कि श्रावककी समस्त क्रियाओमे इसका उपयोग किया जाता है। श्रावककी एक भी क्रिया इस महामन्त्रके विना सम्पन्न नहीं की जा सकती है।

षोडशकारण संस्कारोंके अवसरपर इस मन्त्रका उच्चारण किया जाता है। ऐसा कोई भी मागलिक कार्य नहीं, जिसके आरम्भमे इसका उपयोग न किया जाय। मृत्युके समय भी महामन्त्रका स्मरण आत्माके लिए अत्यन्त कल्याणकारक बताया है। जैनाचार्योंने बतलाया है कि जीवन भर धर्म साधना करनेपर भी कोई व्यक्ति अन्तिम समयमे आत्मसाधन—णमोकार मन्त्रकी आराधना-द्वारा निजको पवित्र करना भूल जाय, तो वह उसी प्रकारका माना जायगा, जिस प्रकार निरन्तर अस्त्र-शस्त्रोंका अभ्यास करनेवाला व्यक्ति युद्धके समय शस्त्र-प्रयोग करना भूल जाय। अतएव अन्तिम समयमे अनाद्यनिधन इस महामन्त्रका जाप करके अपनी आत्माको अवश्य पवित्र करना चाहिए। कहा गया है—

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरणवाहिवेयण-खयकरणं सव्वदुक्खाण ॥

—मूलाचार

अर्थात् जिनेन्द्र भगवानकी वचनरूपी औषधि इन्द्रिय-जनित विषय-सुखोंका विरेचन करनेवाली है,—मूलाचार अमृत स्वरूप है और जरा, मरण, व्याधिवेदना आदि सब दुःखोंका नाश करनेवाली है। इस प्रकार जो पञ्चपरमेष्ठीके स्वरूपका स्मरण करनेवाले णमोकार मन्त्रका ध्यान करता है, वह निश्चयतः सल्लेखनाव्रतको धारण करता है। श्रावकको ससारके नाश करनेमे समर्थ इस महामन्त्रकी आराधना अवश्य करनी चाहिए। अमितगति आचार्यने कहा है—

सप्तविंशतिरुच्छ्वासा संसारोन्मूलनक्षमे।
सन्ति पञ्चनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति ॥

इस प्रकार श्रावक अन्तिम समयमे णमोकार मन्त्रकी साधनाकर उत्तमगतिकी प्राप्ति करता है और जन्म-जन्मान्तरके पापोंका विनाश होता है। अन्तिम समयमे ध्यान किया गया मन्त्र अत्यन्त कल्याणकारी होता है।

व्रतविधान और णमोकार मन्त्र

व्रतोका पालन आत्मकल्याण और जीवन सस्कारके लिए होता है। व्रतोंकी विधिका वर्णन कई श्रावकाचारोंमे आया है। कर्मोंकी असख्यात-गुणी निर्जरा करनेके लिए श्रावक व्रतोपवास करता है, जिससे उसकी आत्माके विकार शान्त होते हैं और त्यागकी महत्ता जीवनमे आती है। सप्तव्यसनके त्यागके साथ, आठ मूलगुण, बारह व्रत और अन्तिम समयमे सल्लेखना धारणकर विशेष उपवासोंके द्वारा श्रावक अपनी आत्माको शुद्ध करनेका अभ्यास करता है। व्रत प्रधान रूपसे नौ प्रकारके होते हैं—सावधि, निरवधि, दैवसिक, नैशिक, मासावधिक, वार्षिक, काम्य, अकाम्य और उत्तमार्थ। सावधि व्रत दो प्रकारके हैं—तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले और दिनों की अवधिसे किये जानेवाले। तिथिकी अवधिसे किये जानेवाले सुखचिन्ता-मणि, पञ्चविंशतिभावना, द्वात्रिंशत्भावना, सम्यक्त्वपञ्चविंशतिभावना और णमोकार पञ्चत्रिंशत् भावना आदि हैं। दिनोंकी अवधिसे किये जाने-वाले व्रतोंमें दुःखहरण व्रत, धर्मचक्रव्रत, जिनगुणसम्पत्ति, सुखसम्पत्ति, शीलकल्याणक, श्रुतिकल्याणक और चक्रकल्याणक आदि। निरवधिमें कवलचन्द्रायण, तपोऽञ्जलि, जिनमुखावलोकन, मुक्तावली, द्विकावली और एकावली आदि हैं। दैवसिक व्रतोंमे दशलक्षण, पुष्पाञ्जलि, रत्नत्रय आदि हैं। आकाशपञ्चमी नैशिक व्रत है। षोड़शकारण, मेघमाला आदि मासिक हैं। जो व्रत किसी कामनाकी पूर्तिके लिए किये जाते है, वे काम्य और जो निष्कामरूपसे किये जाते हैं, वे निष्काम कहलाते हैं। काम्य व्रतोंमे सकटहरण, दुःखहरण, धनदकलश आदि व्रतोंकी गणना की जाती है। उत्तम व्रतोंमे कर्मचूर, कर्मनिर्जरा, महासर्वतोभद्र आदि है। अकाम्य व्रतोंमें मेरुपक्ति आदिकी गणना है। इन समस्त व्रतोंके विधानमें

जाप्य मन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। यो तो णमोकार मन्त्रके नामपर णमोकारपञ्चत्रिंशत्भावना व्रत भी है। इस व्रतका वर्णन करते हुए बताया गया है कि इस व्रतका पालन करनेसे अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंके साथ मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। कहा गया है—

अपराजित है मन्त्र णमोकार, अक्षर तहँ पैंतीस विचार।
कर उपवास वरण परिमाण, सोहं सात करो बुधिवान॥
पुनि चौदा चौदशि व्रत साँच, पाचैं तिथिके प्रोपध पाँच।
नवमी नव करिये भवि सात, सव प्रोषध पैंतीस गणात॥
पैंतीसो णवकार सु येह, जांप्यमन्त्र नवकार जयेह।
मन वच तन नरनारी करे, सुरनर सुख लह शिवतिय वरे॥

अर्थात्—यह णमोकारपैंतीसी व्रत एक वर्ष छः महीनेमें समाप्त होता है। इस डेढ़ वर्षकी अवधिमें केवल ३५ दिन व्रतके होते हैं। व्रतारम्भ करनेकी यह विधि है—[१] प्रथम आपाढ़ शुक्ला सप्तमीका उपवास करे, फिर श्रावण महीने की दोनों सप्तमी, भाद्रपद महीनेकी दोनो सप्तमी और आश्विन महीनेकी दो सप्तमी इस प्रकार कुल सात सप्तमियोके उपवास करे। [२] पश्चात् कार्त्तिक कृष्णा पञ्चमीसे पौष कृष्णा पञ्चमी तक अर्थात् कुल पाँच पञ्चमियोके उपवास करे। [३] तदनन्तर पौष कृष्णा चतुर्दशीसे चैत्र कृष्णा चतुर्दशी तक सात चतुर्दशियोंके उपवास करे [४] अनन्तर चैत्र शुक्ला चतुर्दशीसे आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी तक सात चतुर्दशियोंके सात उपवास करे [५] तत्पश्चात् श्रावण कृष्णा नवमीसे अगहन कृष्णा नवमी तक नौ नवमियोके नौ उपवास करे। इस प्रकार कुल ३५ अक्षरोंके पैंतीस उपवास किये जाते हैं। णमोकार मन्त्रके प्रथम पदमें ७ अक्षर, द्वितीयमें ५, तृतीयमें ७, चतुर्थमे ७ और पचममें ९ हैं, अतः उपवासोंका क्रम भी ऊपर इसीके अनुसार रखा गया है। उपवासके दिन व्रत करते हुए भगवान्का अभिषेक करनेके उपरान्त णमोकार मन्त्रका पूजन तथा त्रिकाल इस मन्त्रका जाप किया जाता है। व्रतके पूर्ण हो जाने पर उद्यापन कर देना चाहिए।

इस व्रतका पालन गोपाल नामक ग्वालने किया था, जो चम्पानगरीमें तद्भव-मोक्षगामी सुदर्शन हुआ। वर्धमानपुराणमें णमोकार व्रतको ७० दिनमें ही समाप्त कर देनेका विधान है।

णमोकार व्रत अब सुन राज, सत्तर दिन एकान्तर साज।

अर्थात् ७० दिनों तक लगातार एकाशन करे। प्रतिदिन भगवान्के अभिषेकपूर्वक णमोकरमन्त्रका पूजन करे। त्रिकाल णमोकार मन्त्रका जाप करे। रात्रिमें पञ्चपरमेष्ठीके स्वरूपका चिन्तन करते हुए या इस महामन्त्रका ध्यान करते हुए अल्प निद्रा ले। जो व्यक्ति इस व्रतका पालन करता है, उसकी आत्मामें महान् पुण्यका सञ्चय होता है और समस्त पाप भस्म हो जाते हैं।

णमोकार मन्त्रका त्रिकाल जाप त्रेपन क्रिया व्रत, लघुपल्यविधान, बृहद्पल्यविधान, नक्षत्रमाला, सप्तकुम्भ, लघुसिंहनिष्क्रीडित, बृहत्सिंह-निष्क्रीडित, भाद्रवनसिंहनिष्क्रीडित, त्रिगुणसार, सर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, दुःखहरण, जिनपूजापुरन्दरव्रत, लघुधर्मचक्र, बृहद्धर्मचक्र, बृहद् जिनगुण-सम्पत्ति, लघुजिनगुणसम्पत्ति, बृहत्सुखसम्पत्ति, मध्यमसुखसम्पत्ति, लघुसुख-सम्पत्ति, रुद्रवसत व्रत, शीलकल्याणकव्रत, श्रुतिकल्याणकव्रत, चन्द्रकल्याणक-व्रत, लघुकल्याणकव्रत, बृहद्रत्नावलीव्रत, मध्यमरत्नावलीव्रत, लघुरत्नावली-व्रत, बृहद्मुक्तावलीव्रत, मध्यममुक्तावलीव्रत, लघुमुक्तावलीव्रत, एकावलीव्रत, लघु एकावलीव्रत, द्विकावलीव्रत, लघुद्विकावलीव्रत, लघुकनकावली व्रत, बृहद्कनकावलीव्रत, लघुमृदंगमध्यव्रत, बृहद्मृदंगमध्यव्रत, मुरजमध्यव्रत, वज्रमध्यव्रत, अक्षयनिधिव्रत, मेघमालाव्रत, सुखकारणव्रत, आकाशपञ्चमी, निर्दोषसप्तमी, चन्दनषष्ठी, श्रवणद्वादशी, श्वेतपञ्चमी, सर्वार्थसिद्धिव्रत, जिनमुखावलोकनव्रत, जिनरात्रिव्रत, नवनिधिव्रत, अशोकरोहिणीव्रत, कोकिला-पञ्चमीव्रत, रुक्मिणीव्रत, अनस्तमीव्रत, निर्जरपञ्चमीव्रत, कवलचन्द्रायण-व्रत, बारह बिजोराव्रत, ऐसोनवव्रत, ऐसोदशव्रत, कांजिकव्रत, कृष्णपञ्चमी-व्रत, निःशल्य अष्टमी व्रत, लक्षणपंक्तिव्रत, दुग्धरसीव्रत, धनकलशव्रत,

लिकचतुर्दशी, शीलसप्तमीव्रत, नन्दसप्तमीव्रत, ऋषिपञ्चमीव्रत, सुदर्शनव्रत, गन्धअष्टमी व्रत, शिवकुमारवेला व्रत, मौनव्रत, बारहतपव्रत और परमेष्ठि-गुणव्रतके विधानमे बतलाया गया है। अर्थात् उपर्युक्त व्रतोंको णमोकार-मन्त्रके जाप-द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। कुल २५-२६ व्रत ऐसे है; जिनमे णमोकारमन्त्रसे उत्पन्न मन्त्रोंके जापका विधान है। इस मन्त्रका व्रत साधनाके लिए कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह उपर्युक्त व्रतोंकी नामावलीसे ही स्पष्ट है। श्रावक व्रतोंके पालन-द्वारा अनेक प्रकारके पुण्यका अर्जन करता है। बताया गया है कि—

अनेकपुण्यसन्तानकारणं स्वर्निबन्धनम्।
पापघ्नं च क्रमादेतत् व्रतं मुक्तिवशीकरम्॥
यो विधत्ते व्रतं सारमेतत्सर्वसुखावहम्।
प्राप्य षोडशमं नाकं स गच्छेत् क्रमशः शिवम्॥

अर्थात्—व्रत अनेक पुण्यकी सन्तानका कारण है, ससारके समस्त पापोंको नाश करनेवाला है एव मुक्ति-लक्ष्मीको वशमे करनेवाला है, जो महानुभाव सर्वसुखोत्पादक श्रेष्ठ व्रत धारण करते है, वे सोलहवे स्वर्गके सुखोंका अनुभव कर अनुक्रमसे अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं। अतएव यह स्पष्ट है कि व्रतोंके सम्यक् पालन करनेके लिए णमोकार मन्त्रका ध्यान करना अत्यावश्यक है।

णमोकार मन्त्रके महत्त्व और फलको प्रकट करनेवाली अनेक कथाएँ जैन साहित्यमे आती हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायके धर्म-

कथा-साहित्य और णमोकार मन्त्र

कथा-साहित्यमे इस महामन्त्रका बड़ा भारी फल बतलाया गया है। पुण्यास्रव और आराधना कथा-कोषके अतिरिक्त अन्य पुराणोंमे भी इस महामन्त्रके महत्त्वको प्रकट करनेवाली कथाएँ है। एक बार जिसने भी भक्तिभावपूर्वक इस महामन्त्रका उच्चारण किया वही उन्नत हो गया। नीच से नीच प्राणी भी इस महामन्त्रके प्रभावसे स्वर्ग और अपवर्गके सुख प्राप्त करता

है। धर्मामृतकी पहली कथामे आया है कि वसुभूति ब्राह्मणने लोभसे आकृष्ट होकर दिगम्बरमुनिव्रत धारण किये थे तथा दयामित्रके अष्टाह्निक पर्वको सम्पन्न करानेके लिए दक्षिणा प्राप्तिके लोभसे उसने केशलुञ्च एव द्रव्यलिंगी साधुके अन्य व्रत धारण किये थे। दयामित्र जब जगलमें जा रहा था तो एक दिन रातको जगली लुटेरोंने दयामित्र सेठके साथवाले व्यापारियों पर आक्रमण किया। दयामित्र वीरतापूर्वक लुटेरोंके साथ युद्ध करने लगा। उसने अपार वाण वर्षा की, जिससे लुटेरोंके पैर उखड़ गये और वे भागने पर उतारू हो गये। युद्ध समय वसुभूति दयामित्रके तम्बूमे सो रहा था। लुटेरोंका एक वाण आकर वसुभूतिको लगा और वह घायल होकर पीडासे तडफडाने लगा। यद्यपि दयामित्रके उपदेशसे उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो चुकी थी, तो भी साधारण-सा कष्ट उसे था। दयामित्रने उसे समझाया कि आत्माका कल्याण समाधिमरणके द्वारा ही सभव है, अतः उसे समाधिमरण धारण कर लेना चाहिए। सल्लेखनासे आत्मामे अहिंसाकी शक्ति उत्पन्न होती है, अहिंसक ही सच्चा वीर होता है। अतः मृत्युका भय त्याग कर णमोकार मन्त्रका चिन्तन करें। इस मन्त्रकी महिमा अद्भुत है। भक्तिभाव पूर्वक इस मन्त्रका ध्यान करनेसे परिणाम स्थिर होते है तथा सभी प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ टल जाती है। मनुष्यकी तो बात ही क्या, तिर्यञ्च भी इस महामन्त्रके प्रभावसे स्वर्गादि सुखोंको प्राप्त हुए है। हॉ, इस मन्त्रके प्रति अटूट श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धाके द्वारा ही इसका वास्तविक फल प्राप्त होगा। यों तो इन मन्त्रके उच्चारण मात्रसे आत्मामे असख्यातगुणी विशुद्धि उत्पन्न होती है।

दयामित्रके इस उपदेशको सुनकर वसुभूति स्थिर हो गया। उसने अपने परिणामोंको बाह्य पदार्थोंसे हटाकर आत्माकी ओर लगाया और णमोकार मन्त्रका ध्यान करने लगा। ध्यानावस्थामे ही उसने शरीरका त्याग किया, जिसके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गके मणिप्रभा विमानमे मणिकुण्डल नामक देव हुआ। स्वर्गके दिव्य भोगोंको देखकर वसुभूतिके जीव मणिकुण्डलने

अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तत्काल ही भवप्रत्यय अवधिज्ञानके उत्पन्न होते ही उसने अपने पूर्वभवकी सब घटना अवगत कर ली और णमोकार मन्त्रके दृढ श्रद्धानका फल समझ अपने उपकारी दयामित्रके दर्शन करनेको आया और उसकी भक्तिकर अपने स्थानको चला गया। वसुभूतिका जीव स्वर्गसे चयकर अभयकुमार नामक राजा श्रेणिकका पुत्र हुआ। इसने वयस्क होते ही दीक्षा ले ली और कठोर तपश्चरण कर समाधिके साथ शरीर त्याग किया, जिससे सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्र हुआ। वहाँसे चयकर निर्वाण प्राप्त करेगा। णमोकार मन्त्रके दृढ श्रद्धान-द्वारा व्यक्ति सभी प्रकारके सुख प्राप्त कर सकता है। ससारका कोई भी कार्य उसके लिए दुर्लभ नहीं होता है।

इसी ग्रन्थकी दूसरी कथामे बताया गया है कि ललितागदेव जैसे व्यभिचारी, चोर, लम्पट, हिंसक व्यक्ति भी इस मन्त्रके प्रभावसे अपना कल्याण कर लिये हैं, तो अन्य व्यक्तियोंकी बात ही क्या? यही ललितागदेव आगे चलकर अजनचोर नामसे प्रसिद्ध हुआ है, क्योंकि यह चोरको कलामें इतना निपुण था कि लोगोंके देखते हुए उनके सामनेसे वस्तुओंका अपहरण कर लेता था। इसका प्रेम राजगृह नगरीकी प्रधान वेश्या माणिकाजनासे था। वेश्याने ललितागदेव उर्फ अजनचोरसे कहा—"प्राणवल्लभ! आज मैंने प्रजापाल महाराजकी कनकावती नामकी पट्टरानीके गलेमे ज्योतिप्रभा नामक रत्नहार देखा है। वह बहुत ही सुन्दर है। मैं उस हारके बिना एक घड़ी भी नहीं रह सकती हूँ। अतः तत्काल मुझे उस हारको ला दीजिए।" ललितागदेव उर्फ अजनचोरने कहा—"प्रिये, वह बहुत बड़ी बात नहीं है, मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। पर अभी थोड़े दिन तक धैर्य रखिये। आज कल शुक्लपक्ष है, मेरी विद्या कृष्णपक्षकी अष्टमीसे कार्य करती है, अतः दो-चार दिनकी बात है, हार तुम्हें लाकर जरूर दूँगा।"

वेश्याने स्त्रियोचित भावभगी प्रदर्शित करते हुए कहा—"यदि आप इस छोटी-सी मेरी इच्छाको पूरा नहीं कर सकते, तो फिर और मेरा कौन

वह बोला—"मेरा नाम वारिषेण है। मैं गगनगामी विद्याको सिद्ध कर रहा हूँ। मैं पवित्र णमोकार मन्त्रका जाप कर इस विद्याको साधना चाहता हूँ। मुझे यह विधि और मन्त्र जिनदत्त श्रेष्ठिसे मिले हैं। अजनचोर उसकी बातोंको सुनकर हँसने लगा और बोला—'तुम डरपोक हो, तुम्हें मन्त्र पर विश्वास नहीं है। अत: तुम्हें विद्या सिद्ध नहीं हो सकती है। इस प्रकार कहकर अजनचोर सोचने लगा कि मुझे तो मरना ही है जैसे भी मरूँ। अतः जिनदत्त श्रेष्ठिके द्वारा प्रतिपादित इस मन्त्र और विधि पर विश्वास कर मरना ज्यादा अच्छा है, इससे स्वर्ग मिलेगा। जरा भी देर होती है तो पहरेदारोंके साथ कोतवाल आयगा और पकड़कर फाँसी पर चढा देगा। इस प्रकार विचारकर उसने वारिषेणसे कहा—'भाई! तुम्हें विश्वास नहीं

है, तो मुझे इस मन्त्रकी साधना करने दीजिए।' वारिषेण प्राणोंके मोहमें पड़कर घबड़ा गया और उसने मन्त्र तथा उसकी विधि अजनचोरको बतला दी। उसने दृढ श्रद्धानके साथ मन्त्रकी साधना की तथा १०८ रस्सियोंको काट दिया। अब वह नीचे गिरनेको ही था, कि इसी बीच आकाशगामिनी विद्या प्रकट हुई और उसने गिरते हुए अजनचोरको ऊपर ही उठा लिया। विद्या प्राप्तिके अनन्तर वह अपने उपकारी जिनदत्त सेठके दर्शन करनेके लिए सुमेरु पर्वत पर स्थित नन्दन और भद्रशालके चैत्यालयोंमें गया। वहाँ पर वह भगवान्‌की पूजा कर रहा था। इस प्रकार अजनचोरको आकाशगामिनी विद्याकी प्राप्तिके अनन्तर संसारसे विरक्ति हो गयी, अतः उसने देवर्षि नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिके पास दीक्षा ग्रहण की और दुर्धर तपकर कर्मोंका नाश कर कैलाश पर्वत पर मोक्ष प्राप्त किया। णमोकार महामन्त्रमें इतनी बड़ी शक्ति है कि इसकी साधनासे अजनचोर जैसे व्यसनी व्यक्ति भी तद्भवमें निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। इसी कथामें यह भी बतलाया गया है कि धन्वतरि और विश्वानुलोम जैसे दुराचारी व्यक्ति णमोकार मन्त्रकी दृढ साधना-द्वारा कल्याणको प्राप्त हुए हैं।

धर्मामृतकी तीसरी कथामें अनन्तमतीके व्रतोंकी दृढताका वर्णन करते हुए बताया गया है कि अनन्तमतीने अपने संकट दूर करनेके लिए कई बार इस महामन्त्रका ध्यान किया। इस मन्त्रके स्मरणसे उसका बड़ासे बड़ा कष्ट दूर हुआ है। जब वेश्याके यहाँ अनन्तमतीके ऊपर उपसर्ग आया था, उस समय उसके दूर होने तक उसने समाधिमरण ग्रहण कर लिया और अन्न-पानीका त्यागकर पञ्चपरमेष्ठीके ध्यानमें लीन हो गई। णमोकार मन्त्रका आश्रय ही उसके प्राणोंका रक्षक था। जब वेश्याने देखा कि यह इस तरह माननेवाली नहीं है, तो उसने सोचा कि इसके प्राण लेनेसे अच्छा है कि इसे राजाके हाथ बेच दिया जाय। राजा इस अनुपम सुन्दरीको प्राप्त कर बहुत प्रसन्न होगा और मुझे अपार धन देगा, जिससे मेरे जन्म-जन्मान्तरके दारिद्र्य

दूर हो जायेंगे। इस प्रकार विचार कर वह वेश्या अनन्तमतीको राजा सिंहव्रतके पास ले गयी और दरबारमें जाकर बोली—'देव, इस रमणीरत्नको आपकी सेवामें अर्पण करने आयी हूँ। यह अनाघ्रात कलिका आपके भोग करने योग्य है। दासीने इसे पानेके लिए अपार धन खर्च किया है।' राजा उस दिव्य सुन्दरीको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस वेश्याको विपुल धन-राशि देकर विदा किया।

सन्ध्या होते ही राजा अनन्तमतीसे बोला—'हे कमलमुखी! तुम्हारे रूपका जादू मुझपर चल गया है, मेरे समस्त अंगोपांग शिथिल हो रहे हैं, मेरा मन मेरे अधीन नहीं रहा है। मैं अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। आजसे यह राज्य तुम्हारा है। हम सब तुम्हारे हैं, अतः अब शीघ्र ही मनःकामना पूर्ण करो। हाय! इतना सौन्दर्य तो देवियोंमें भी नहीं होगा।'

अनन्तमती णमोकारमन्त्रका स्मरण करती हुई ध्यानमें लीन थी। उसे राजाकी बातोंका बिलकुल पता नहीं था। उसके मुखपर अद्भुत तेज था। सतीत्वकी किरणें निकल रही थीं। वह एक मात्र णमोकार मन्त्रकी आराधनामें डूबी हुई थी। कहा गया है "सापि पञ्चनमस्कारं संस्मरन्ती सुखप्रदम्" अर्थात् वह मौनकर एकाग्रभावसे णमोकार मन्त्रकी साधनामें इतनी लीन हो गयी कि उसने राजाकी बातें ही नहीं सुनीं। अब अनन्त-मतीसे उत्तर न पाकर राजाका क्रोध उमड़ा और उसने अनन्तमतीको पीटना आरम्भ किया। अनन्तमतीके ऊपर होनेवाले इस प्रकारके अत्या-चारोंको देखकर णमोकार मन्त्रके प्रभावसे उस नगरके शासन देवका आसन हिला और उसने ज्ञानबलसे सारी घटनाएँ अवगत कर लीं। वह अनन्त-मतीके पास पहुँचा और अदृश्य होकर राजाको पीटने लगा। आश्चर्यकी बात यह थी कि मारनेवाला कोई नहीं दिखलाई पड़ता था, केवल मार ही दिखलाई पड़ती थी। कोड़े लगनेके कारण युवराजके मुँहसे खून निकल रहा था। राजा-अमात्य सभी मूर्छित थे, फिर भी मार पड़ना बन्द नहीं

हुआ था। हल्ला-गुल्ला और चीत्कार सुनकर दरबारके अनेक व्यक्ति एकत्र हो गये। रानियाँ आ गईं, पर युवराजकी रक्षा कोई नहीं कर सका। जब सब लोगोने मिलकर मारनेवालेकी स्तुति की तो शासनदेवने प्रत्यक्ष हो कहा—"आप लोग इसी सतीको प्रसन्न करे, मै तो सतीका दास हूँ। यह कुमारी णमोकार मन्त्रके ध्यानमे इतनी लीन है कि मुझे इसकी सेवाके लिए आना पडा है। जो भगवान्की भक्तिमे निरन्तर लीन रहते हैं, उनकी आराधना और सेवा आबालवृद्ध सभी करते हैं। जो मोहवशमे आकर भक्तिका तिरस्कार करता है, वह अत्यन्त नीच है। जिसके पास धर्म रहता है उसके पास संसारकी सभी अलभ्य वस्तुएँ रहती हैं। व्रतविभूषित व्यक्ति यदि भगवान्के चरणोंकी भक्ति करता है, तो उसे ससारके सभी दुर्लभ पदार्थ अपने-आप प्राप्त हो जाते हैं। णमोकार मन्त्रका ध्यान समस्त अरिष्टोको दूर करनेवाला है। जो विपत्तिमें इस मन्त्रका स्मरण करता है, उसके सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। पञ्चपरमेष्ठीकी भक्ति और उनका स्मरण सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करता है। पश्चात् देवने कुमारीसे कहा—'हे अनन्तमति! तुम्हारा सकट दूर हुआ, नेत्रोन्मीलन करो। ये सब भक्त तुम्हारी चरण धूल लेनेके लिए आये हैं। जिस प्रकार अग्निका स्वभाव जलना, पानीका स्वभाव शीतल, वायुका स्वभाव बहना है; उसी प्रकार णमोकारमन्त्रकी आराधनाका फल समस्त उपसर्ग और कष्टोंका दूर होना है। अब इस राजकुमारको आप क्षमा करें। ये सभी नगरनिवासी आपसे क्षमायाचनाके लिए आये हैं।" इस प्रकार शासनदेवने अनन्तमतीके द्वारा राजकुमारको क्षमा प्रदान कराई। राजा, अमात्य तथा रानियोंने मिलकर अनन्तमतीकी पूजा की और हाथ जोडकर वे कहने लगे—"धर्म-मूर्त्ते! हमने बिना जाने बडा अपराध किया। हम लोगोंके समान संसारमें कौन पापी हो सकता है। अब आप हमे क्षमा करे, यह सारा राज्य और सारा वैभव आपके चरणोंमे अर्पित है। अनन्तमतीने कहा—'राजन्! धर्मसे बढ़कर कोई भी वस्तु हितकारी नहीं है। आप धर्ममे स्थिर हो

जाइये। णमोकारमन्त्रका विज्ञान कीजिए। इसी मन्त्रके स्मरण, ध्यान और चिन्तनसे आपके समस्त पाप नष्ट हो जायँगे। पञ्चपरमेष्ठी वाचक इस महामन्त्रका ध्यान सभी पापोंको भस्म करनेवाला है। पापीसे पापी व्यक्ति भी इस महामन्त्रके ध्यानसे सभी प्रकारके सुख प्राप्त करता है।" राजाने रानियों और अमात्य सहित णमोकार मन्त्रका ध्यान किया, जिससे उनकी आत्मामें विशुद्धि उत्पन्न हो गयी।

वहाँसे चलकर अनन्तमती जिनालयमें पहुँची और वहाँ आर्यिकाके पास जाकर धर्म श्रवण किया। यहीं पर उसके माता-पितासे मुलाकात हुई। पिताने अनन्तमतीको घर ले जाना चाहा, पर उसने घर जाना पसन्द नहीं किया और पितासे स्वीकृति लेकर वरदत्त मुनिराजकी शिष्या कमलश्री आर्यिकासे जिन-दीक्षा ले ली तथा निःकांक्षित हो व्रत पालन करने लगी। वह दिन-रात णमोकार मन्त्रके ध्यानमें लीन रहती थी तथा उग्र तपश्चरण करनेमें लीन थी। अन्तिम समयमें उसने समाधिमरण धारण किया, जिससे स्त्रीलिङ्गका छेदकर बारहवें स्वर्गमें १८ सागरकी आयु प्राप्त कर देव हुई। इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी साधनासे अनन्तमतीने अपने सांसारिक कष्टोंको दूर कर आत्म-कल्याण किया।

धर्मामृतकी चौथी कथामें बताया गया है कि नारायणदत्ता नामक सन्यासिनीके बहकानेमें आकर मालवनरेश चण्डप्रद्योतने रौरवपुर नरेश उद्दायनकी पत्नी प्रभावतीके रूप-सौन्दर्यका लोभी बनकर राजा उद्दायनकी अनुपस्थितिमें रौरवपुर पर आक्रमण किया। उस समय रानी प्रभावतीके शीलकी रक्षा णमोकार मन्त्रकी आराधनासे ही हुई। प्रभावतीने अन्न-जलका त्यागकर इस मन्त्रका ध्यान किया। राजा चण्डप्रद्योतकी सेना जिस समय नगरमें उपद्रव कर रही थी, उसी समय आकाशमार्गसे अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वन्दनाके लिए देव जा रहे थे। प्रभावतीके मन्त्रस्मरणके प्रभावसे देवोंका विमान रौरवपुरके ऊपरसे नहीं जा सका। देवोंने अवधि-ज्ञानसे विमानके अटकनेका कारण अवगत किया तो उन्हें मालूम हुआ

कि इस नगरमे घिरी सतीके ऊपर विपत्ति आई है। सतीके ऊपर होनेवाले अत्याचारको अवगतकर एक सम्यग्दृष्टि देव उसकी रक्षाके लिए उद्यत हुआ। उसने अपनी शक्तिसे चण्डप्रद्योत की सेनाको उड़ाकर उज्जयिनीमे पहुँचा दिया और नगरका सारा उपद्रव शान्त कर दिया।

रानी प्रभावतीकी परीक्षा करनेके लिए उस देवने चण्डप्रद्योतका रूप धारण किया और समस्त प्रजाको महानिद्रामे मग्नकर विक्रिया ऋद्धिके बलसे चतुरग सेना तैयार की और गढ़को चारों ओरसे घेर लिया। नगरमे मायावी आग लगा दी, मार्ग और सडकों पर कृत्रिम रक्तकी धार बहने लगी, सर्वत्र भय व्याप्त कर दिया और प्रभावती देवीके पास आकर बोला 'मैंने तुम्हारी सेनाको मार डाला है अब आप पूरी तरहसे मेरे आधीन हैं, अतः आँखें खोलकर मेरी ओर देखिये ! आपके पति उदायन राजाको भी पकड़कर कैद-कर लिया है। अब मेरा सामना करनेवाला कोई नहीं है। आप मेरे साथ चलिये और पटरानी बनकर ससारका आनन्द लीजिए। आपको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होने दूँगा।'

रानी राजा चण्डप्रद्योतके रूपधारी देवके वचनोंको सुनकर णमोकार मन्त्रके ध्यानमें और भी लीन हो गयी और स्थिरतापूर्वक जिनेन्द्र प्रभुके गुणों-का चिन्तन करने लगी। उसने निश्चय किया कि प्राण जाने तक शीलको नहीं छोड़ूँगी। इस समय णमोकार मन्त्र ही मेरा रक्षक है। पञ्चपरमेष्ठीकी शरण ही मेरे लिए सहायक है। इस प्रकार निश्चय कर वह ध्यानमे और दृढ हो गयी। देवने पुनः कहा—"अब इस ध्यानसे कुछ नहीं होगा, तुम्हे मेरे वचन मानने पड़ेंगे।" परन्तु प्रभावती तनिक भी विचलित नहीं हुई और णमोकार मन्त्रका ध्यान करती रही। प्रभावतीकी दृढ़तासे प्रसन्न होकर देवने अपना वास्तविक रूप धारण किया और रानीसे बोला—"देवि ! आप धन्य हैं। मैं देव हूँ, मैंने चण्डप्रद्योतकी सेनाको उज्जयिनी पहुँचा दिया है तथा विक्रियाबलसे आपकी सेना और प्रजाको मूर्छित कर दिया है। मै आपके सतीत्व और भक्तिभावकी परीक्षा कर रहा था। मैं आपसे बहुत

प्रसन्न हूँ। आपके ऊपर किसी भी प्रकारकी अब विपत्ति नहीं है। मध्यलोक वास्तवमें सती नारियोंके सतीत्व पर ही अवलम्बित हैं।" इस प्रकार कहकर पारिजात पुष्पोंसे रानीकी पूजा की, आकाशमें दुन्दुभि बाजे बजने लगे, पुष्प-वृष्टि होने लगी। पञ्चपरमेष्ठीकी जय और जिनेन्द्र भगवान् की जयके नारे सर्वत्र सुनाई पड़ते थे। णमोकारकी आराधनाके प्रभावसे रानी प्रभावतीने अपने शीलकी रक्षा की तथा आर्यिकासे दीक्षा ग्रहणकर तप किया, जिससे ब्रह्म स्वर्गमें दस सागरोपम आयु प्राप्त कर महर्धिदेव हुई।

इसी ग्रन्थकी बाहरवीं कथामें बताया गया है कि जिनपालित मुनि एक दिन एकाकी विहार करते हुए आ रहे थे। उज्जयिनीके पास आते-आते सूर्यास्त हो गया, अतः रातमें गमन निषिद्ध होनेसे वह भयकर श्मशान-भूमिमें जाकर ध्यानस्थ हो गये। सूर्योदयतक इसी स्थान पर ध्यान पर रहेंगे, ऐसा नियम कर वहीं एक ही करवट लेट गये। धनुषाकार होकर उन्होंने ध्यान लगाया। योगमें मुनिराज इतने लीन थे कि उन्हें अपने शरीरका भी होश नहीं था।

मध्यरात्रिमें उज्जयिनीका विडम्ब नामक साधक मन्त्रविद्या सिद्ध करनेके लिए उसी श्मशान भूमिमें आया। उसने योगस्थ जिनपालित मुनिको मुर्दा समझा, अतः पासकी चिताओंसे दो-तीन मुर्दे और खींच लाया। जिनपालित मुनि और अन्य मुर्दोंको मिलाकर उसने चूल्हा तैयार किया और इस चूल्लेमें आग जलाकर भात बनाना आरम्भ किया। जब आगकी लपटें जिनपालित मुनिके मस्तकके पास पहुँची, तब भी वह ध्यानस्थ रहे। उन्होंने अग्निकी कुछ भी परवाह नहीं की। मुनिराज सोचने लगे—"स्त्री बिना पुत्र, दूध बिना मक्खन, सूत्र बिना कपड़ा और मिट्टी बिना घड़ेका बनना जैसे असम्भव है, उसी प्रकार उपसर्ग बिना सहे कर्मोंका नष्ट होना असम्भव है। उपसर्गकी आगसे कर्मरूपी लकडी जलकर भस्म हो जाती है। इस पर्यायकी प्राप्ति, और इसमें भी दिगम्बर दीक्षाका मिलना बड़े सौभाग्यकी बात है। जो व्यक्ति इस प्रकारके अवसरों पर विचलित हो

जाते है, वे कहींके नहीं रहते। जीवके परिणाम ही उन्नति-अवनतिके स ध हैं। परिणाम जैसे-जैसे विशुद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे यह जीव अ . कल्याणमें प्रवृत्त हो जाता है। परिणामोंकी शुद्धिका साधन णमोकार मन्त्र है। इसी मन्त्रकी आराधनासे परिणामोंमें निर्मलता आ जाती है, आत्मा अपने ज्ञान, दर्शन, चैतन्यमय स्वरूपको समझ लेता है। अतः णमोकार मन्त्रकी साधना ही सकटकालमें सहायक होती है। इसीके द्वारा मोह-ममताको जीता जा सकता है। जड़ और चेतनका भेद-भाव इसी महामन्त्रकी साधनासे प्राप्त होता है। आत्मरसका स्वाद भी पञ्चपरमेष्ठीके गुणचिन्तनसे प्राप्त होता है। इस प्रकार जिनपालित मुनिने द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन किया। महाव्रत और समितिके स्वरूपका विचारकर परिणामोंको दृढ किया। अनन्तर सोचने लगे कि व्रतोंकी महिमा अचिन्त्य है। व्रत पालन करनेसे चाण्डाल भी देव हो गया, कौवेका मास छोड़नेसे खदिरसागर इन्द्र पदवीको प्राप्त हुआ। णमोकारमन्त्रके प्रभावसे कितने ही भव्य जीवोंने कल्याण प्राप्त किया है। दृढ़सूर्य नामका चोर चोरी करते पकड़ा गया, दण्डस्वरूप शूली पर चढ़ाया गया, पर णमोकारमन्त्रके स्मरणसे देवपद प्राप्त हो गया। सोमशर्माकी स्त्रीने वरदत्त मुनिराजको भक्तिभावपूर्वक आहार दान दिया था तथा अन्तिम समयमें णमोकारमन्त्रकी आराधना की थी, जिससे वह देवाङ्गना हुई। नमि और विनमिने भगवान् आदिनाथकी आराधना की थी, जिससे धरणेन्द्रने आकर उनकी सेवा की। क्या पञ्च-परमेष्ठीकी आराधना करना सामान्य बात है। द्रुमसेनने जिनेश्वर मार्गको समझकर णमोकार मन्त्रकी साधना की, जिससे पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ ध्यानके अनन्तर रूपातीत ध्यान किया और कर्मोका नाशकर मोक्ष लाभ लिया। अतः इस समय सभी प्रकारके उपसर्गोंको जीतना परम आवश्यक है। णमोकारमन्त्र ही मेरे लिए शरण है।

अग्नि उत्तरोत्तर बढ रही थी। जिनपालितका सारा शरीर भस्म हो रहा था, पर वह णमोकारमन्त्रकी साधनामें लीन थे। परिणाम और

विशुद्ध हुए और णमोकार मन्त्रके प्रभावसे श्मशान-भूमिके रक्षक देवने प्रकट हो उपसर्ग दूर किया तथा मुनिराजके चरण-कमलोंकी पूजा की। इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी साधनासे जिनपालित मुनिने अपूर्व आत्म सिद्धि प्राप्त की।

इस ग्रन्थकी तेरहवीं कथामें आया है कि एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्यों-सहित मालवदेश पहुँचे, यहाँका राजा सिंहसेन था। इसकी स्त्रीका नाम चन्द्रलेखा था। चन्द्रलेखा अपनी सखियोंके साथ सहस्रकूट चैत्यालय-का दर्शन कर लौट रही थी। इतनेमें एक मदोन्मत्त हाथी चिंग्घाड़ता हुआ और मार्गमें मिलनेवालोंको रौंदता हुआ चन्द्रलेखाके निकट आया। चारों ओर हाहाकार मच गया, चन्द्रलेखाकी सखियाँ तो इधर-उधर भाग गईं, किन्तु वह अपने स्थानपर ही घबराकर गिर गयी। उसने उपसर्गके दूर होने तक संन्यास ले लिया और णमोकारमन्त्रके ध्यानमें लीन हो गई। हाथी चन्द्रलेखाको पैरोंके नीचे कुचलनेवाला ही था, सभी लोग किनारे पर खड़े इस दयनीय दृश्यको देख रहे थे। द्रोणाचार्यके शिष्य भी इस अप्रत्याशित घटनाको देखकर घबरा गये। प्रमातिकुमारको चन्द्रलेखापर दया आई, अतः वह हाथीको पकड़नेके लिए दौड़ा। अपने अपूर्व बलसे तथा चन्द्रलेखाके णमोकारमन्त्रके प्रभावसे उसने हाथीको पकड़ लिया, जिससे चन्द्रलेखाके प्राण बच गये। यह कुमारी णमोकारमन्त्रकी अत्यन्त भक्तिन बन गयी और सर्वथा इस मन्त्रका चिन्तन किया करती थी। चन्द्र-लेखाका विवाह भी प्रमातिकुमारके साथ हो गया, क्योंकि प्रमातिकुमारने ही स्वयवरमें चन्द्रवेध किया। प्रमातिकुमारके इस कौशलके कारण उसके साथी भी उससे ईर्ष्या रखते थे। एक दिन वह जगलमें गया था, वहाँ एक मदोन्मत्त वनगज सामने आता हुआ दिखलाई दिया। प्रमातिकुमारने धैर्य पूर्वक णमोकारमन्त्रका स्मरण किया और हाथीको पकड़ लिया। इस कार्यसे उसके साथियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा और वे अपना वैर-विरोध भूलकर उससे प्रेम करने लगे।

एक दिन कौशाम्बी नगरीसे दूत आया और उसने कहा कि दन्तिबल राजा पर एक माण्डलिक राजाने आक्रमण कर दिया है। शत्रुओंने कौशाम्बीके नगरको तोड दिया है। राजा दन्तिबल वीरतापूर्वक युद्ध कर रहा है, पर युद्धमे विजय प्राप्त करना कठिन है। प्रभातिकुमारने मालव-नरेशसे भी आज्ञा नहीं ली और चन्द्रलेखाके साथ रातमे णमोकारमन्त्रका जाप करता हुआ चला। मार्गमे चोर-सरदारसे मुठभेड़ भी हुई, पर उसे परास्त कर कोशाम्बी चला आया और वीरतापूर्वक युद्ध करने लगा। राजा दन्तिबलने जब देखा कि कोई उसकी सहायता कर रहा है, तो उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। प्रभातिकुमारने वीरतापूर्वक युद्ध किया जिससे शत्रुके पैर उखड़ गये और वह मैदान छोडकर भाग गया। राजा दन्तिबल पुत्रको प्राप्तकर बहुत प्रसन्न हुए। चन्द्रलेखाने ससुरकी चरणधूलि सिरपर धारण की। दन्तिबलको वृद्धावस्था आ जानेसे ससारसे विरक्ति हो गई। फिर उन्होंने प्रभातिकुमारको राज्यभार दे दिया। प्रभाति-कुमार न्याय-नीतिपूर्वक प्रजाका शासन करने लगा। एक दिन वनमें मुनिराजका आगमन सुनकर वह अमात्य, सामन्त और महाजनो सहित मुनिराजके दर्शन करनेको गया। उसने भक्तिभावपूर्वक मुनिराजकी वन्दना की और उनका धर्मोपदेश सुनकर ससारसे विरक्त रहने लगा। कुछ दिनोंके उपरान्त एक दिन अपने श्वेत केश देखकर उसे ससारसे बहुत घृणा हुई और अपने पुत्र विमलकीर्तिको बुलाकर राज्यभार सौंप दिया और स्वयं दिगम्बर दीक्षा ग्रहणकर घोर तपश्चरण करने लगा। मरणकाल निकट जान-कर प्रभातिकुमारने सल्लेखनामरण धारण किया तथा णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए प्राणोंका त्याग किया, जिससे पन्द्रहवें स्वर्गमे कीर्त्तिधर नामक महर्द्धिकदेव हुआ। णमोकारमन्त्रका ऐसा ही प्रभाव है, जिससे इस मन्त्रके ध्यानसे सासारिक कष्ट दूर होते है, साथ ही परलोकमें महान् सुख प्राप्त होता है। धर्मामृतकी सभी कथाओंमे णमोकार मन्त्रकी महत्ता प्रदर्शित की गयी है। यद्यपि ये कथाएँ सम्यक्त्वके आठ अग तथा पञ्चाणुव्रतोंकी

महत्ता दिखलानेके लिए लिखी गयी है, पर इस मन्त्रका प्रभाव सभी पात्रों पर है।

पुण्यास्रव कथाकोषमें इस महामन्त्रके महत्त्वको प्रकट करनेवाली आठ कथाएँ आई हैं। प्रथम कथाका वर्णन करते हुए बताया गया है कि इस महामन्त्रकी आराधना करके तिर्यञ्च भी मानव पर्यायको प्राप्त होते है। कहा है—

प्रथम मन्त्र नवकार सुन तिरो बैलको जीव।
ता प्रतीत हिरदै, धरी भयो राम सुग्रीव॥
ताके बरनन करत हूं जानो मन वच काय।
महामन्त्र हिरदै धरै सकल पाप मिट जाय॥
णमोकारका महापुण्य है अकथनीय उसकी महिमा।
जिसके फलसे नीच बैलने पाई सद्गति गरिमा॥
देखो! पदमरुचिर जिस फलसे हुए रामसे नृपति महान्।
करो ध्यान युत उसकी पूजा यही जगतमें सच्चा मान॥

अयोध्यामें जब महाराज रामचन्द्रजी राज्य करते थे, उस समय सकलभूषण केवलज्ञानके धारी मुनिराज इस नगरके एक उद्यानमें पधारे। पूजा स्तुति करनेके उपरान्त विभीषणने मुनिराजसे पूछा कि "प्रभो! कृपा कर यह बतलाइये कि किस पुण्यके प्रभावसे सुग्रीव इतना गुणी और प्रभावशाली राजा हुआ है। महाराज रामचन्द्रजीकी तथा सुग्रीवकी पूर्व भवावलि जाननेकी बड़ी भारी इच्छा है।

केवली भगवान् कहने लगे—इस भरत क्षेत्रके आर्यखण्डमें श्रेष्ठपुरी नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है। इस नगरीमें पद्मरुचि नामका सेठ रहता था, जो अत्यन्त धर्मात्मा, श्रद्धालु और सम्यग्दृष्टि था। एक दिन यह गुरुका उपदेश सुनकर घर जा रहा था कि रास्तेमें एक घायल बैलको पीड़ासे छटपटाते हुए देखा। सेठने दयाकर उसके कानमें णमोकार मन्त्र सुनाया,

जिसके प्रभावसे मरकर वह बैल इसी नगरके राजाका वृषभध्वज नामका पुत्र हुआ। समय पाकर जब वह बड़ा हुआ तो एक दिन हाथी पर सवार होकर वह नगर-परिभ्रमणको चला। मार्गमें जब राजाका हाथी उस बैलके मरनेके स्थान पर पहुँचा तो उस राजाको अपने पूर्व भवका स्मरण हो आया तथा अपने उपकारीका पता लगानेके लिए उसने एक विशाल जिनालय बनवाया, जिसमें एक बैलके कानमें एक व्यक्ति णमोकार मन्त्र सुनाते हुए अंकित किया गया। उस बैलके पास एक पहरेदारको नियुक्त कर दिया तथा उस पहरेदारको समझा दिया कि जो कोई इस बैलके पास आकर आश्चर्य प्रकट करे, उसे दरबारमें ले आना।

एक दिन उस नवीन जिनालयके दर्शन करने सेठ पद्मरुचि आया और पत्थरके उस बैलके पास णमोकार मन्त्र सुनाती हुई प्रस्तर-मूर्त्ति अंकित देखकर आश्चर्यान्वित हुआ। वह सोचने लगा कि यह मेरी आजसे २५ वर्ष पहले की घटना यहाँ कैसे अंकित की गयी है। इसमें रहस्य है, इस प्रकार विचार करता हुआ आश्चर्य प्रकट करने लगा। पहरेदारने जब सेठको आश्चर्यमें पडा देखा तो वह उसे पकड़कर राजाके पास ले गया।

राजा—सेठजी! आपने उस प्रस्तर-मूर्तिको देखकर आश्चर्य क्यों प्रकट किया?

सेठ—राजन्! आजसे पच्चीस वर्ष पहलेकी घटनाका मुझे स्मरण आया। मैं जिनालयसे गुरुका उपदेश सुनकर अपने घर लौट रहा था कि रास्तेमें मुझे एक बैल मिला। मैंने उसे णमोकार मन्त्र सुनाया। यही घटना उस प्रस्तर-मूर्तिमें अंकित है। अतः उसे देखकर मुझे आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक है।

राजा—सेठजी! आज मैं अपने उपकारीको पाकर धन्य हो गया। आपकी कृपासे ही मैं राजा हुआ हूँ। आपने मुझे दयाकर णमोकार मन्त्र सुनाया, जिसके पुण्यके प्रभावसे मेरी तिर्यञ्च जाति छूट गयी तथा मनुष्य पर्याय और उत्तम कुलकी प्राप्ति हुई। अब मैं आत्मकल्याण करना

चाहता हूँ। मैंने आपका पता लगानेके लिए ही जिनालयमें वह प्रस्तर-मूर्ति अंकित करायी थी। कृपया आप इस राज्यभारको ग्रहण करें और मुझे आत्मकल्याणका अवसर दें। अब मैं इस मायाजालमें एक क्षण भी नहीं रहना चाहता हूँ। इतना कहकर राजाने सेठके मस्तक पर स्वय ही राजमुकुट पहना दिया तथा राज्यतिलक कर दिगम्बर दीक्षा धारण की। वह कठोर तपश्चरण करता हुआ णमोकार मन्त्रकी साधना करने लगा और अन्तिम समयमें सल्लेखना धारण कर प्राण त्याग दिये, जिससे वह सुग्रीव हुआ है। सेठ पद्मरुचिने अन्तिम समयमें सल्लेखना धारण की तथा णमोकार मन्त्रकी साधना की, जिससे उनका जीव महाराज रामचन्द्र हुआ है। इस णमोकार मन्त्रमें पाप मिटाने और पुण्य बढानेकी अपूर्व शक्ति है। केवली मुनिराजके द्वारा इस प्रकार णमोकार मन्त्रकी महिमाको सुनकर विभीषण, रामचन्द्र, लक्ष्मण और भरत आदि सभीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

णमोकार मन्त्रके स्मरणसे बन्दरने भी आत्मकल्याण किया है। कहा जाता है कि अर्धमृतक एक बन्दरको मुनिराजने दया कर णमोकार मन्त्र सुनाया। उस बन्दरने भी भक्तिभाव पूर्वक णमोकार मन्त्र सुना, जिसके प्रभावसे वह चित्राङ्गद नामका देव हुआ। चित्राङ्गदके जीवने च्युत होकर मानव पर्याय प्राप्त की और अपना वास्तविक कल्याण किया।

तीसरी कथामें बताया गया है कि काशीके राजाकी लडकीका नाम सुलोचना था। यह जैनधर्ममें अत्यन्त अनुरक्त थी। वह सतत विद्याभ्यासमें लीन रहती थी। अतः उसके पिताने अपने मित्रकी कन्याके साथ उसे रख दिया। दोनों सखियाँ बडे प्रेमके साथ विद्याभ्यास करने लगीं। सुलोचनाकी इस सखीका नाम विन्ध्यश्री था। एक दिन विन्ध्यश्री फूल तोडने बगीचेमें गयी, वहाँ एक साँपने उसे काट लिया, जिससे वह मूर्छित होकर गिर पडी। सुलोचनाने उसे णमोकार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभावसे वह मरकर गगादेवी हुई तथा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी। कहा है—

महामन्त्रको सुलोचनासे विन्ध्यश्रीने जब पाया।
भक्ति भावसे उसने पाई गंगा देवीकी काया॥
क्यों न कहेगा अकथनीय है नमस्कार महिमा सारी।
उसे भजेगा सतत नेमसे बन जावेगा सुखकारी॥

चौथी कथामें आया है कि चारुदत्तने एक अर्द्धदग्ध पुरुषको, जिसे एक संन्यासीने धोखा देकर रसायन निकालनेके लिए कुँएमें डाल दिया था और जिसका आधा शरीर वर्षोंसे उस अन्धकूपमें रहनेके कारण जल गया था, जिससे उसने चलने-फिरनेकी भी शक्ति नहीं थी, जिसके प्राणोंका अन्त ही होना चाहता था, उसे चारुदत्तने णमोकार मन्त्र सुनाया। अन्तिम समयमें इस महामन्त्रके श्रवण मात्रसे उसकी आत्मामें इतनी विशुद्धि आई जिससे वह प्रथम स्वर्गमें देव हुआ। आगे इसी कथामें बतलाया गया है कि चारुदत्तने एक मरणासन्न बकरेको भी णमोकार मन्त्र सुनाया, जिससे वह बकरेका जीव भी स्वर्गमें देव हुआ। आगे इसी कथामें बतलाया गया है कि चारुदत्तने एक मरणासन्न बकरेको भी णमोकार मन्त्र सुनाया, जिससे वह बकरेका जीव भी स्वर्गमें देव हुआ।

पुण्यास्रव-कथाकोषकी एक कथामें बतलाया गया है कि कीचड़में फँसी हुई हथिनी णमोकार मन्त्रके श्रवणसे उत्तम मानव पर्यायको प्राप्त हुई। कहा गया है कि गुणवतीका जीव अनेक पर्यायोंको धारण करनेके पश्चात् एक बार हथिनी हुआ। एक दिन वह हथिनी कीचड़में फँस गयी और उसका प्राणान्त होने लगा। इसी बीच सुरंग नामका विद्याधर आया और उसने हथिनीको णमोकार मन्त्र सुनाया; जिसके प्रभावसे वह मरकर नन्दवती कन्या हुई और पश्चात् सीताके समान सती-साध्वी नारी हुई। इस महामन्त्रका प्रभाव अद्भुत है। कहा गया है—

हथिनीकी कायामें कैसे हुई सती सीता नारी।
जिसने नारी युगमें पाई पातिव्रत पदवी भारी॥

नमस्कार ही महामन्त्र है भव सागरकी नैया।
सदा भजोगे पार करेगा वन पतवार खिवैया॥

पार्श्वपुराणमे बताया गया है कि भगवान् पार्श्वनाथने अपनी छद्मस्थ अवस्थामे जलते हुए नाग-नागिनीको णमोकार महामन्त्रका उपदेश दिया, जिसके प्रभावसे वे धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। इसी प्रकार जीवन्धर स्वामीने कुत्तेको णमोकार महामन्त्र सुनाया था, जिसके प्रभावसे कुत्ता स्वर्गमे देव हुआ। आराधना-कथाकोशमें इस महामन्त्रके माहात्म्यकी कथाका वर्णन करते हुए कहा है कि चम्पानगरीके सेठ वृषभदत्तके यहाँ एक ग्वाला नौकर था। एक दिन वह वनसे अपने घर आ रहा था। शीतकालका समय था, कड़ाकेकी सर्दी पड़ रही थी। उसे रास्तेमे ऋद्धिधारी मुनिके दर्शन हुए, जो एक शिलातल पर बैठकर ध्यान कर रहे थे। ग्वालेको मुनिराजके ऊपर दया आई और घर जाकर अपनी पत्नीसहित लौट आया तथा मुनिराजकी वैयावृत्ति करने लगा। प्रातःकाल होने पर मुनिराजका ध्यान भग हुआ और ग्वालेको निकट भव्य समझकर उसे णमोकार मन्त्रका उपदेश दिया। अब तो उस ग्वालेका यह नियम बन गया कि वह प्रत्येक कार्यके प्रारम्भ करने पर णमोकार मन्त्रका नौ बार उच्चारण करता। एक दिन वह भैंस चरानेके लिए गया था। भैंस नदीमे कूदकर उस पार जाने लगीं, अतः ग्वाला उन्हें लौटानेके लिए अपने नियमानुसार णमोकार मन्त्र पढ़कर नदीमे कूद पड़ा। पेटमे एक नुकीली लकडी चुभ जानेसे उसका प्राणान्त हो गया और णमोकार मन्त्रके प्रभावसे उसी सेठके यहाँ सुदर्शन नामका पुत्र हुआ। सुदर्शनने उसी भवसे निर्वाण प्राप्त किया। अतः कथाके अन्तमें कहा गया है—

"इत्थं ज्ञात्वा महाभव्यैः कर्त्तव्यः परया मुदा।
सारपञ्चनमस्कार-विश्वासः शर्मद सताम्।"

अर्थात् णमोकार मन्त्रका विश्वास सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है।

जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस महामन्त्रका उच्चारण, स्मरण या चिन्तन करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

इस महामन्त्रकी महत्ता बतलानेवाली एक कथा दृढसूर्य चोरकी भी इसी कथाकोशमें आई है। बताया गया है कि उज्जयिनी नगरीमें एक दिन वसन्तोत्सवके समय धनपाल राजाकी रानी बहुमूल्य हार पहन कर वनविहारके लिए जा रही थी। जब उसके हार पर वसन्तसेना वेश्याकी दृष्टि पड़ी तो वह उसपर मोहित हो गई और अपने प्रेमी दृढसूर्य से कहने लगी कि इस हारके बिना तो मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं। अतः किसी भी तरह हो, इस हारको ले आना चाहिए। दृढसूर्य राजमहलमें गया और उस हारको चुराकर ज्यों ही निकला, त्यों ही पकड़ लिया गया। दृढ़सूर्य फाँसी पर लटकाया जा चुका था, पर अभी उसके शरीरमें प्राण अवशेष थे। संयोगवश उसी मार्गसे धनदत्त सेठ जा रहा था। दृढसूर्यने उससे पानी पिलानेको कहा। सेठने उत्तर दिया—मेरे गुरुने मुझे णमोकार मन्त्र दिया है। अतः मैं तुम्हारा जब तक पानी लाता हूँ, तुम इसे स्मरण रखो।' इस प्रकार दृढसूर्यको णमोकारमन्त्र सिखलाकर धनदत्त पानी लेने चला गया। दृढ़सूर्यने णमोकार मन्त्रका जोर-जोरसे उच्चारण आरम्भ किया। आयुपूर्ण होनेसे उस चोरका मरण हो गया और वह णमोकारमन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।

जम्बूस्वामी-चरितमें आया है कि सेठ अर्हद्दासका अनुज सप्तव्यसनोंमें आसक्त था। एकबार वह जुएमें बहुत-सा धन हार गया और उस धनको न दे सकनेके कारण दूसरे जुआरियोंने उसे मार-मारकर अधमरा कर दिया। अर्हद्दासने अन्त समयमें णमोकारमन्त्र सुनाया, जिसके प्रभावसे वह यक्ष हुआ। इस प्रकार णमोकार मन्त्रके प्रभावसे अगणित व्यसनी और पापी व्यक्तियोंने अपना उद्धार किया है तथा वे सद्गतिको प्राप्त हुए हैं। इस महामन्त्रकी आराधना करनेवाले व्यक्तिको भूत, पिशाच और व्यन्तर आदिकी किसी

भी प्रकार की बाधा नहीं हो सकती है। धन्यकुमार-चरितकी सुभौम चक्रवर्तीकी निम्न कथासे यह बात सिद्ध हो जायगी।

आठवें चक्रवर्ती सुभौमके रसोइयेका नाम जयसेन था। एक दिन भोजनके समय इस पाचकने चक्रवर्तीके आगे गर्म गर्म खीर परोस दी। गर्म खीरसे चक्रवर्तीका मुँह जलने लगा, जिससे क्रोधमें आकर खीरके रखे हुए बर्तनको उस पाचकके सिरपर पटक दिया, जिससे उसका सिर जल गया। वह इस कष्टसे मरकर लवणसमुद्रमें व्यन्तर देव हुआ। जब उसने अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवकी जानकारी प्राप्त की तो उसे चक्रवर्तीके ऊपर बड़ा क्रोध आया। प्रतिहिंसाकी भावनासे उसका शरीर जलने लगा। अतः वह तपस्वीका वेष बनाकर चक्रवर्तीके यहाँ पहुँचा। उसके हाथमें कुछ मधुर और सुन्दर फल थे। उसने उन फलोंको चक्रवर्तीको दिया, वह फल खाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने उस तापससे कहा—"महाराज, ये फल अत्यन्त मधुर और स्वादिष्ट हैं। आप इन्हें कहाँसे लाये हैं और ये कहाँ मिलेंगे"। तापसरूपधारी व्यन्तरदेवने कहा—"समुद्रके बीचमें एक छोटा-सा टापू है। मैं वहीं निवास करता हूँ। यदि आप मुझ गरीबपर कृपाकर मेरे घर पधारें तो ऐसे अनेक फल भेंट करूँ। चक्रवर्ती जिह्वाके लोभमें फँसकर व्यन्तरके झाँसेमें आ गये और उसके साथ चल दिये। जब व्यन्तर समुद्रके बीचमें पहुँचा तब वह अपने प्रकृत रूपमें प्रकट होकर लाल-लाल आँखें कर बोला—"दुष्ट, जानता है, मैं तुझे यहाँ क्यों लाया हूँ। मैं ही तेरे उस पाचकका जीव हूँ, जिसे तूने निर्दयता पूर्वक मार डाला था। अभिमान सदा किसीका नहीं रहता। मैं तुझे उसीका बदला चुकानेके लिए लाया हूँ"। व्यन्तरके इन वचनोंको सुनकर चक्रवर्ती भयभीत हुआ और मन ही-मन णमोकारमन्त्रका ध्यान करने लगा। इस महामन्त्रके सामर्थ्यके समक्ष उस व्यन्तरकी शक्ति काम नहीं कर सकी। अतः उस व्यन्तरने पुन. चक्रवर्तीसे कहा—"यदि आप अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हैं तो पानीमें णमोकारमन्त्रको लिखकर उसे पैरके अँगूठेसे मिटा दें। मैं इसी शर्तके ऊपर

आपको जीवित छोड सकता हूँ। अन्यथा आपका मरण निश्चित है।" प्राण-रक्षाके लिए मनुष्यको भले-बुरेका विचार नहीं रहता, यही दशा चक्रवर्तीकी हुई। व्यन्तरदेवके कथनानुसार उनने णमोकार मन्त्रको लिखकर पैरके अँगूठेसे मिटा दिया। उनके उक्त क्रिया सम्पन्न करते ही, व्यन्तरने उन्हें मारकर समुद्रमें फेंक दिया। क्योंकि इस कृत्यके पूर्व वह णमोकारमन्त्रके श्रद्धानीको मारनेका साहस नहीं कर सकता था। यतः उस समय जिन शासनदेव उस व्यन्तरके इस अन्यायको रोक सकते थे, किन्तु णमोकार मन्त्रके मिटा देनेसे व्यन्तरदेवने समझ लिया कि यह धर्मद्वेषी है, भगवान्‌का भक्त नहीं। श्रद्धा या अटूट विश्वास इसमें नहीं है। अतः उस व्यन्तरने उसे मार डाला। णमोकारमन्त्रके अपमानके कारण उसे सप्तम नरककी प्राप्ति हुई। जो व्यक्ति णमोकार मन्त्रके दृढ श्रद्धानी हैं, उनकी आत्मामें इतनी अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे भूत, प्रेत, पिशाच आदि उनका बाल भी बाँका नहीं कर पाते। आत्मस्वरूप इस मन्त्रका श्रद्धान संसारसे पार उतारनेवाला है तथा सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। शान्ति, सुख और समताका कारण यही महामन्त्र है।

श्वेताम्बर धर्मकथासाहित्यमें भी इस महामन्त्रके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। कथारत्नकोषमें श्रीदेव नृपतिके कथानकमें इस महामन्त्रकी महत्ता बतलायी गयी है। णमोकार मन्त्रके एक अक्षर या एक पदके उच्चारणमात्रसे जन्म-जन्मान्तरके सञ्चित पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे अन्धकार नष्ट हो जाता है, कमलश्री वृद्धिगत होने लगती है, उसी प्रकार इस महामन्त्रकी आराधनासे पाप-तिमिर लुप्त हो जाते हैं और पुण्यश्री बढती है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या तिर्यञ्च, भील-भीलिनी, नीच-चाण्डाल आदि इस महामन्त्रके प्रभावसे मरकर स्वर्गमें देव हुए और वहाँसे चयकर मनुष्यकी पर्याय प्राप्त होकर निर्वाण प्राप्त किया है। स्त्रीलिङ्गका छेद और समाधिमरणकी सफलता इसी मन्त्रकी धारणा पर निर्भर है।

कथासाहित्यमें एक भील-भीलिनीकी कथा आयी है, जिसमें बताया गया है कि पुष्करावर्त्त द्वीपके भरत क्षेत्रमें सिद्धकूट नामका नगर है। उसमें एक दिन शान्त तपस्वी वीतरागी सुव्रत नामके आचार्य पधारे। वर्षाऋतु आरम्भ हो जानेके कारण चातुर्मास उन्होंने वहीं ग्रहण किया। एक दिन मुनिराज ध्यानस्थ थे कि भील-भीलिनी दम्पति वहाँ आये। मुनिराजका दर्शन करते ही उनका चिरसंचित पाप नष्ट हो गया, उसके मनमें अपूर्व प्रसन्नता हुई और दोनों मुनिराजका धर्मोपदेश सुननेके लिए वहीं पर ठहर गये। जब मुनिराजका ध्यान टूटा तो उन्होंने भील-भीलिनीको नमस्कार करते हुए देखा। महाराजने धर्मवृद्धिका आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद प्राप्त कर वे दोनों अत्यन्त आह्लादित हुए और हाथ जोड़कर कहने लगे—प्रभो! हमें कुछ धर्मोपदेश दीजिए। मुनिराजने णमोकार मन्त्र उनको सिखलाया, उन दोनोंने भक्ति-भावपूर्वक णमोकार मन्त्रका जप आरम्भ किया। श्रद्धापूर्वक सर्वदा त्रिकाल इस महामन्त्रका जाप करने लगे। भीलने मृत्युके समय भी भक्ति-भावपूर्वक इस महामन्त्रकी आराधना की, जिससे वह मरकर राजपुत्र हुआ। भीलिनीने भी सुगति पायी।

आगे बतलाया गया है कि जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें मणिमन्दिर नामका नगर था। इस नगरके निवासी अत्यन्त धर्मात्मा, दानपरायण, गुणग्राही और सत्पुरुष थे। इस नगरके राजाका नाम मृगांक था और इसकी रानीका नाम विजया। इन्हीं दम्पतिका पुत्र णमोकार मन्त्रके प्रभावसे उस भीलका जीव हुआ। इस भवमें इसका नाम राजसिंह रखा गया। बड़े होने पर राजसिंह मन्त्री-पुत्रके साथ भ्रमणके लिए गया। रास्तेमें थककर एक वृक्षकी छायामें विश्राम करने लगा। इतनेमें एक पथिक उसी मार्गसे आया और राजपुत्रके पास आकर विश्राम करने लगा। बात-चीतके सिलसिलेमें उसने बतलाया कि पद्मपुरमें पद्म नामक राजा रहता है, इसकी रत्नावती नामकी अनुपम सुन्दर पुत्री है। जब इसका विवाह सम्बन्ध ठीक हो रहा था, तब एक नटके नृत्यको देखकर उसे जाति-स्मरण हो गया, अतः उसने

निश्चय किया कि जो मेरे पूर्व भवके वृत्तान्तको बतलायेगा, उसीके साथ मैं विवाह करूँगी। अनेक देशोंके राजपुत्र आये, पर सभी निराश होकर लौट गये। राजकुमारीके पूर्वभवके वृत्तान्तको कोई नहीं बतला सका। अब उस राजकुमारीने पुरुषका मुँह देखना ही बन्द कर दिया है और वह एकान्त स्थानमें रहकर समय व्यतीत करती है।

पथिककी उपर्युक्त बातोंको सुनकर राजकुमारका आकर्षण राजकुमारीके प्रति हुआ और उसने मन-ही-मन उसके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की। वहाँसे चलकर मार्गमें मन्त्री-पुत्र और राजकुमारने णमोकार मन्त्रके प्रभावकी कथाओंका अध्ययन, मनन और चिन्तन किया, जिससे राजकुमारने अपने पूर्वभवके वृत्तान्तको अवगत कर लिया। पासमें रहनेवाली मणिके प्रभावसे दोनों कुमारोंने स्त्रीवेष बनाया और राजकुमारीके पास पहुँचे। राजसिंहने राजकुमारीके पूर्वभवका समस्त वृत्तान्त बतला दिया। तथा अपना वेष बदलकर वहाँ तक आनेकी बात भी कह दी। राजकुमारी अपने पूर्वभवके पतिको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे मालूम हो गया कि णमोकार मन्त्रके माहात्म्यसे मैं भीलिनीसे राजकुमारी हुई हूँ और यह भीलसे राजपुत्र। अतः हम दोनों पूर्वभवके पति-पत्नी हैं। उसने अपने पितासे भी यह सब वृत्तान्त कह दिया। राजाने रत्नावती और राजसिंहका विवाह कर दिया।

कुछ दिनों तक सांसारिक भोग भोगनेके उपरान्त राजसिंह अपने पुत्र प्रतापसिंहको राजगद्दी देकर धर्मसाधनके लिए रानीके साथ वनमें चला गया। राजसिंह जब बीमार होकर मृत्यु-शय्या पर पड़ा जीवनकी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था, उसी समय उसने जाते हुए एक मुनिको देखा और अपनी स्त्रीसे कहा कि आप उस साधुको बुला लाइये। जब मुनिराज उसके पास आये तो राजसिंहने धर्मोपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की। मुनिराजने णमोकार मन्त्रका व्याख्यान किया और इसी महामन्त्रका जप करनेको कहा। समाधिमरण भी उसने धारण किया और आरम्भ परिग्रहका त्यागकर इस महामन्त्रके चिन्तनमें लीन होकर प्राण

त्याग दिये, जिससे वह ब्रह्मलोकमे दस सागरकी आयुवाला एक भवावतारी देव हुआ। भीलिनीके जीव राजकुमारीने भी णमोकार महामन्त्रके प्रभावसे स्वर्गमे जन्म ग्रहण किया।

इस प्रकार श्वेताम्बर कथासाहित्यमे ऐसी अनेक कथाएँ आयी हैं, जिसमे इस महामन्त्रके ध्यान, स्मरण, उच्चारण और जपका अद्भुत फल बताया गया है। जो व्यक्ति भावसहित इस मन्त्रका अनुष्ठान करता है, वह अवश्य अपना कल्याण कर लेता है। सासारिक समस्त विभूतियाँ उसके चरणोमे लोटती है। वर्तमानमे भी श्रद्धापूर्वक णमोकार मंत्रके जापसे अनेक व्यक्तियोको अलौकिक सिद्धि प्राप्त हुई है। आनेवाली आपत्तियाँ इस महामन्त्रकी कृपासे दूर हो गयी हैं।

फल-प्राप्तिके आधुनिक उदाहरण

यहाँ दो चार उदाहरण दिये जाते हैं। इस मन्त्रके दृढ़ श्रद्धानसे जखौर (झाँसी) निवासी अब्दुल रज्जाक नामक मुसलमानकी सारी विपत्तियाँ दूर हो गयी थीं। उसने अपना एक पत्र जैनदर्शन वर्ष २ अंक ५-६ पृ० ३१ मे प्रकाशित कराया है। वहाँसे इस पत्रको ज्योका त्यों उद्धृत किया जाता है। पत्र इस प्रकार है—"मै ज्यादातर देखता या सुनता हूँ कि हमारे जैन भाई धर्मकी ओर ध्यान नहीं देते। और जो थोड़ा-बहुत कहने सुननेको देते भी है तो वे सामायिक और णमोकार-मन्त्रके प्रकाशसे अनभिज्ञ हैं। यानी अभी तक वे इसके महत्त्वको नहीं समझे है। रात-दिन शास्त्रोंका स्वाध्याय करते हुए भी अन्धकारकी ओर बढते जा रहे हैं। अगर उनसे कहा जाय कि भाई, सामायिक और णमोकार मन्त्र आत्माको शान्ति पैदा करनेवाला और आये हुए दुःखोंको टालनेवाला है, तो वे इस तरहसे जवाब देते हैं कि यह णमोकार मन्त्र तो हमारे यहाँके छोटे-छोटे बच्चे जानते हैं। इसको आप क्या बताते है, लेकिन मुझे अफसोसके साथ लिखना पड़ता है, कि उन्होंने सिर्फ दिखानेकी गरजसे मन्त्रको रट लिया है। उस पर उनका दृढ़ विश्वास न हुआ और न वे उसके महत्त्वको ही समझे। मैं

दावेके साथ कहता हूँ कि इस मन्त्रपर श्रद्धा रखनेवाला हर मुसीबतसे बच सकता है। क्योंकि मेरे ऊपर ये बातें बीत चुकी हैं।

मेरा नियम है कि जब मैं रातको सोता हूँ तो णमोकार मन्त्रको पढता हुआ सो जाता हूँ। एक मरतबे जाड़ेकी रातका ज़िक्र है कि मेरे साथ चारपाई पर एक बड़ा साँप लेट रहा, पर मुझे उसकी खबर नहीं। स्वप्नमें जरूर ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई कह रहा हो कि उठ साँप है। मैं दो-चार मरतबे उठा भी और उठकर लालटेन जलाकर नीचे ऊपर देखकर फिर लेट गया। लेकिन मन्त्रके प्रभावसे जिस ओर साँप लेटा था, उधरसे एक मरतबा भी नहीं उठा। जब सुबह हुआ, मै उठा और चाहा कि बिस्तर लपेट लूँ, तो क्या देखता हूँ कि बड़ा मोटा साँप लेटा हुआ है। मैंने जो पल्ली खींची तो वह झट उठ बैठा। और पल्ली के सहारे नीचे उतर कर अपने रास्ते चला गया।

दूसरे अभी दो-तीन माहका जिकर है कि जब मेरी बिरादरीवालोंको मालूम हुआ कि मैं जैन मत पालने लगा हूँ, तो उन्होने एक सभा की, उसमे मुझे बुलाया गया। मैं जखोरासे झाँसी जाकर सभामे शामिल हुआ। हर एकने अपनी-अपनी रायके अनुसार बहुत कुछ कहा सुना और बहुतसे सवाल पैदा किये, जिनका कि मै जवाब भी देता गया। बहुतसे महाशयोने यह भी कहा कि ऐसे आदमीको मार डालना ठीक है, लेकिन अपने धर्मसे दूसरे धर्ममें न जाने पावे। इस तरह जिसके दिलमे जो बात आई, कही। अन्तमें सब लोग अपने-अपने घर चले गये और मै भी अपने कमरेमे चला आया। क्योंकि मैं जब अपने माता-पिताके घर आता हूँ तो एक दूसरे कमरेमे ठहरता हूँ और अपने हाथसे भोजन पकाकर खाता हूँ। उनके हाथका बनाया हुआ भोजन नहीं खाता। जब शामका समय हुआ—यानी सूर्य अस्त होने लगा तो मै सामायिक करना आरम्भ किया और सामायिकसे निश्चिन्त होकर जब आँखें खोलीं तो देखता हूँ कि एक बड़ा साँप मेरे आस-पास चक्कर लगा रहा है और दरवाजे

पर एक बर्तन रक्खा हुआ मिला, जिससे मालूम हुआ कि कोई इसमें बन्द करके यहाँ छोड़ गया है। छोड़नेवालेकी नियत एकमात्र मुझे हानि पहुँचानेकी थी।

लेकिन उस साँपने मुझे कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। मैं वहाँसे डरकर आया और लोगोंसे पूछा कि यह काम किसने किया है, परन्तु कोई पता न लगा। दूसरे दिन सामायिक समय जब साँपने पासवाले पड़ोसीके बच्चेको डस लिया तब वह रोया और कहने लगा कि हाय मैंने बुरा किया कि दूसरेके वास्ते चार आने पैसे देकर वह साँप लाया था, उसने मेरे बच्चेको काट लिया। तब मुझे पता चला, बच्चेका इलाज हुआ, मैं भी इलाज करानेमें सना रहा, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। वह बच्चा मर गया। उसके १५ दिन बाद वह आदमी भी मर गया, उसके वही एक बच्चा था। देखिये सामायिक और णमोकार मन्त्र कितना जबरदस्त खम्भ है कि आगे आया हुआ काल प्रेमका बर्ताव करता हुआ चला गया। इस मन्त्रके ऊपर दृढ श्रद्धान होना चाहिए। इसके प्रतापसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

इस महामन्त्रके प्रभावकी निम्न घटना पूज्य भगतजी प्यारेलालजी, बेलगछिआ कलकत्ता निवासीने सुनाई है। घटना इस प्रकार है कि एक बार कलकत्तानिवासी स्व० सेठ बलदेवदासजीके पिता स्व० श्रीमान् सेठ दयाचन्दजी, भगतजी सा० तथा और भी कलकत्तेके चार छः आदमी थूबौनजीकी यात्राके लिए गये। जब यात्रासे वापस लौटने लगे तो मार्गमें रात हो गयी, जगली रास्ता था और चोर-डाकुओंका भय था। अँधेरा होनेसे मार्ग भी नहीं सूझता था, कि किधर जायँ और किस प्रकार स्टेशन पहुँचे। सभी लोग घबरा गये। सभीके मनमें भय और आतङ्क व्याप्त था। मार्ग दिखायी न पड़नेसे एक स्थान पर बैठ गये। भगतजी साहबने उन सबसे कहा कि अब घबरानेसे कुछ नहीं होगा, णमोकारमन्त्रका स्मरण ही इस सकटको टाल सकता है। अतः स्वयं भगतजी सा० ने तथा अन्य सब

लोगोंने णमोकारका ध्यान किया। इस मन्त्रके आधा घटा तक ध्यान करनेके उपरान्त एक आदमी वहाँ आया और कहने लगा कि आप लोग मार्ग भूल गये हैं, मेरे पीछे-पीछे चले आइये, मैं आप लोगोंको स्टेशन पहुँचा दूँगा। अन्यथा यह जंगल ऐसा है कि आप महीनों इसमें भटक सकते हैं। अतः वह आदमी आगे-आगे चलने लगा और सब यात्री पीछे-पीछे। जब स्टेशनके निकट पहुँचे और स्टेशनका प्रकाश दिखलाई पड़ने लगा तो उस उपकारी व्यक्तिकी इसलिए तलाश की जाने लगी कि उसे कुछ पारिश्रमिक दे दिया जाय। पर यह अत्यन्त आश्चर्यकी बात हुई कि उसका तलाश करने पर भी पता नहीं चला। सभी लोग अचम्भित थे, आखिर वह उपकारी व्यक्ति कौन था, जो स्टेशन छोड़कर चला गया। अन्तमें लोगोंने निश्चय किया कि 'णमोकारमन्त्र के स्मरणके प्रभावसे किसी रक्षकदेवने ही उसकी यह सहायता की। एक बात यह भी कि वह व्यक्ति पास नहीं रहता था, आगे आगे दूर-दूर ही चल रहा था कि आप लोग मेरे ऊपर अविश्वास मत कीजिए। मैं आपका सेवक और हितैषी हूँ। अतः यह लोगोंको निश्चय हो गया कि णमोकार मन्त्रके प्रभावसे किसी यक्षने इस प्रकारका कार्य किया है। यक्षके लिए इस प्रकारका कार्य करना असभव नहीं है।

पूज्य भगतजी सा० से यह भी मालूम हुआ कि णमोकार मन्त्रकी आराधनासे कई अवसरों पर उन्होंने चमत्कारपूर्ण कार्य सिद्ध किये हैं। उनके सम्पर्कमें आनेवाले कई जैनेतरोंने इस मन्त्रकी साधानासे अपनी मनोकामनाओंको सिद्ध किया है। मैंने स्वय उनके एक सिन्धी भक्तको देखा है जो णमोकार मन्त्रका श्रद्धानी है।

पूज्य बाबा भागीरथ वर्णी सन् १९३७-३८ में श्री स्याद्वादविद्यालय काशीमें पधारे हुए थे। बाबाजीको णमोकार मन्त्र पर बड़ी भारी श्रद्धा थी। श्रीछेदीलालजीके मन्दिरमें बाबाजी रहते थे। जाड़ेके दिन थे, बाबाजी धूपमे बैठकर छतके ऊपर स्वाध्याय करते रहते थे। एक लगूर कई दिनों

तक वहाँ आता रहा। बाबाजी उसे बगलमें बैठाकर णमोकार मन्त्र सुनाते रहे। यह लंगूर भी आधा घण्टे तक बाबाजीके पास बैठता रहा। यह क्रम दस-पाँच दिन तक चला। लड़कोंने बाबाजीसे कहा—'महाराज, यह चचल जातिका प्राणी है, इसका क्या विश्वास, यह आपको किसी दिन काट लेगा।' पर बाबाजी कहते रहे "भय्या, ये तिर्यञ्च जातिके प्राणी णमोकार मन्त्रके लिए लालायित हैं, ये अपना कल्याण करना चाहते हैं। हमे इनका उपकार करना है।" एक दिन प्रतिदिनवाला लंगूर न आकर दूसरा आया और उसने बाबाजीको काट लिया, इस पर भी बाबाजी उसे णमोकार मन्त्र सुनाते रहे, पर वह उन्हें काटकर भाग गया। पूज्य बाबाजीको इस महामन्त्र पर बडी भारी श्रद्धा थी और वह इसका उपदेश सभीको देते थे।

एक सज्जन हथुआ मिलमे कार्य करते हैं, उनका नाम ललितप्रसादजी है। वह होम्योपैथिक औषधका वितरण भी करते हैं। णमोकार मन्त्र पर उन्हें बड़ी भारी श्रद्धा है। वह बिच्छू, ततैया, हड्डा आदिके विषको इस मन्त्र-द्वारा ही उतार देते हैं। उसी मिलके कई व्यक्तियोंने बतलाया कि बिच्छूका ज़हर इन्होंने कई बार णमोकार मन्त्र द्वारा उतारा है। यों तो वह भगवान्के भक्त भी हैं, प्रतिदिन भगवान्की नियमित रूपसे पूजा करते हैं। किन्तु णमोकार मन्त्र पर उनका बड़ा भारी विश्वास है।

प्राचीन और आधुनिक अनेक उदाहरण इस प्रकार के विद्यमान हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि णमोकारमन्त्रकी आराधनासे

इष्ट-साधक और अनिष्ट निवारक णमोकार मन्त्र

सभी प्रकार के अरिष्ट दूर हो जाते हैं और सभी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। इस मन्त्रके जपसे पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन, और कीर्त्ति-अर्थी कीर्त्ति प्राप्त करते हैं। यह समस्त प्रकारकी ग्रह-बाधाओंको तथा भूत पिशाचादि व्यन्तरोंकी पीड़ाओंको दूर करनेवाला है। 'मन्त्रशास्त्र और णमोकार मन्त्र' शीर्षकमें पहले कहा जा चुका है कि इसी महासमुद्रसे समस्त मन्त्रोंकी उत्पत्ति हुई है तथा उन मन्त्रोंके जाप-द्वारा भिन्न-भिन्न अभीष्ट कार्योंकी

सिद्ध किया जा सकता है। जब इस महामन्त्रके ध्यानसे आत्मा निर्वाण पद प्राप्त कर सकता है, तब तुच्छ सासारिक कार्योंकी क्या गणना ? ये तो आनुषंगिक रूपसे अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। 'तिलोयपण्णत्ति' के प्रथम अधिकारमे पञ्चपरमेष्ठीके नमस्कारको समस्त विघ्न-बाधाओंको दूर करनेवाला, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, रागद्वेषादि भाव कर्म एवं शरीरादि नो कर्मोंको नाश करनेवाला बताया है। समस्त पापका नाशक होनेके कारण यह इष्ट-साधक और अनिष्टविनाशक है। क्योंकि तीव्र पापोदयसे ही कार्यमे विघ्न उत्पन्न होते हैं तथा कार्य सिद्ध नहीं होता है। अतः पापविनाशक मंगल-वाक्य होनेसे ही यह इष्टसाधक है। बताया गया है—

अब्भतरदव्वमलं जीवपदेसे णिबद्धमिदि देहो।
भावमलं णादव्वं अणाण दंसणादि परिणामो॥
अहवा बहुभेयगमं णाणावरणादिदव्वभावमलदेहा।
ताइं गालेइ पुढं जदो तदो मंगलं भणिदं॥
अहवा मंगं सुक्खं लादिहु गेण्हेदि मंगलं तम्हा।
एदेण कज्जसिद्धिं मंगइ गच्छेदि गंथकत्तारो॥
पावं मलंति भण्णइ उवचारसरूवएण जीवाणं।
तं मालेदि विणासं जेदि त्ति भणंति मगलं केइ॥

अर्थात्—ज्ञानावरणादि कर्मरूपी पापरज जीवोंके प्रदेशोंके साथ सम्बद्ध होनेके कारण आभ्यन्तर द्रव्यमल हैं तथा अज्ञान, अदर्शन आदि जीवके परिणाम भावमल हैं। अथवा ज्ञानावरणादि द्रव्यमलके और इस द्रव्यमल-से उत्पन्न परिणाम स्वरूप भावमलके अनेक भेद हैं। इन्हें यह णमोकारमन्त्र गलाता है, नष्ट करता है, इसलिए इसे मंगल कहा गया है अथवा यह मग अर्थात् सुखको लाता है, इसलिए इसे मगल कहा जाता है। इष्ट साधक और अनिष्ट-विनाशक होनेके कारण समस्त कार्योंका आरम्भ इस मन्त्रके मगल पाठके अनन्तर ही किया जाता है। अतः यह श्रेष्ठ मंगल है।

जीवोंके पापको उपचारसे मल कहा जाता है, यह णमोकार मन्त्र इस पापका नाश करता है, जिससे अनिष्ट बाधाओंका विनाश होता है और इष्ट कार्य सिद्ध होते है।

यह णमोकारमन्त्र समस्त हितोंको सिद्ध करनेवाला है इस कारण इसे सर्वोत्कृष्ट भाव मगल कहा गया है। **'मंग्यते साध्यते हितमनेनेति मगलम्'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार इसके द्वारा समस्त अभीष्ट कार्योंकी सिद्धि होती है। इसमें इस प्रकारकी शक्ति वर्तमान है, जिसमे इसके स्मरणसे आत्मिक गुणोंकी उपलब्धि सहजमें हो जाती है। यह मन्त्र रत्नत्रयधर्म तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दस धर्मोंको आत्मामें उत्पन्न करता है अतः **"मङ्गं धर्मं लातीति मंगलं"** यह व्युत्पत्ति की जाती है।

णमोकारमन्त्रका भावपूर्वक उच्चारण ससारके चक्रको दूर करनेवाला है, तथा सवर और निर्जराके द्वारा आत्मस्वरूपको प्राप्त करानेवाला है। आचार्योंने इसी कारण बताया है कि **"मं भभवाव् संसारात् गालयति अपनयतीति मंगलम्"** अर्थात् यह ससार-चक्रसे छुड़ाकर जीवोंको निर्वाण देता है और इसके नित्य मनन चिन्तन और ध्यानसे सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है। इस पञ्चम कालमें संसारत्रस्त जीवोंको सुन्दर सुशीतल छाया प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष यह महामन्त्र ही है। दुर्गति, पाप और दुराचरणसे पृथक् सद्गति, पुण्य और सदाचारके मार्गमें यह लगानेवाला है। इस महामन्त्रके जपसे सभी प्रकारकी आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं और सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। अतः अहितरूपी पाप या अधर्मका ध्वंसकर यह कल्याणरूपी धर्मके मार्गमें लगाता है। बड़ी से बड़ी विपत्तिका नाश णमोकारमन्त्रके प्रभावसे हो जाता है। द्रौपदीका चीर बढना, अजनचोरके कष्टका दूर होना, सेठ सुदर्शनका शूलीसे उतरना, सीताके लिए अग्निकुण्डका जलकुण्ड बनना, श्रीपालके कुष्ठ रोगका दूर होना, अजना सतीके सतीत्वकी रक्षाका होना, सेठके घरके दारिद्र्यका नष्ट होना आदि समस्त कार्य णमोकार मन्त्र और पञ्चपरमेष्ठीकी भक्तिके द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं।

इस महामन्त्रके एक एक पदका जाप करनेसे नवग्रहोंकी बाधा शान्त होती है। णमोकारादि मन्त्रसग्रहमें बताया गया है कि 'ओं णमो सिद्धाण' के दस हजार जापसे सूर्यग्रहकी पीड़ा, 'ओं णमो अरिहंताणं' के दस हजार जापसे चन्द्रग्रह पीड़ा, 'ओ णमो सिद्धाणं' के दस हजार जापसे मंगलग्रह पीड़ा, 'ओं णमो उवज्झायाणं' के दस हजार जापसे बुधग्रहकी पीड़ा, 'ओं णमो आइरियाणं' के दस हजार जापसे गुरुग्रह पीडा, 'ओं णमो अरिहंताणं' के दस हजार जापसे शुक्रकी ग्रह पीड़ा और 'ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं' के दस हजार जापसे शनिग्रहकी पीड़ा दूर होती है। राहुकी पीडाकी शान्तिके लिए समस्त णमोकार मन्त्रका जाप 'ओं' छोड़कर अथवा 'ओं ह्री णमो अरिहंताणं' मन्त्रका ग्यारह हजार जाप तथा केतुकी पीड़ाकी शान्तिके लिए ओं जोड़कर समस्त णमोकार मन्त्रका जाप अथवा 'ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं' पदका ग्यारह हजार जाप करना चाहिए। भूत, पिशाच और व्यन्तर बाधा दूर करनेके लिए णमोकार मन्त्रका जाप निम्न प्रकारसे करना होता है। इक्कीस हजार जाप करनेके उपरान्त मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सिद्ध हो जाने पर ९ बार पढ़कर झाड़ देनेसे व्यन्तर बाधा दूर हो जाती है। मन्त्र यह है—

'ओं णमो अरिहंताणं, ओं णमो सिद्धाणं, ओं णमो आइरियाणं, ओ णमो उवज्झायाणं ओं णमो लोए सव्वसाहूणं। सर्वदुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय अन्धय अन्धय मूकवत्कारय कारय ह्रीं दुष्टान् ठः ठ. ठः।' इस मन्त्र-द्वारा एक ही हाथ-द्वारा खींचे गये जलको मन्त्र सिद्ध होने पर ९ बार और सिद्ध नहीं होने पर १०८ बार मन्त्रित करना होता है। पश्चात् णमोकार मन्त्र पढ़ते हुए इस जलसे व्यन्तराक्रान्त व्यक्तिको घोंट देनेसे व्यन्तर, भूत, प्रेत और पिशाचकी बाधा दूर हो जाती है।

इस मन्त्रका धर्मकार्य और मोक्ष प्राप्तिके लिए अगुष्ठ और तर्जनीसे, शान्तिके लिए अंगुष्ठ और मध्यमा अगुलीसे, सिद्धिके लिए अगुष्ठ और

अनामिकासे एवं सर्वसिद्धिके लिए अंगुष्ठ और कनिष्ठासे जाप करना होता है। सभी कार्योंकी सिद्धिके लिए पञ्चवर्ण पुष्पोंकी मालासे, दुष्ट और व्यन्तरोंके स्तम्भनके लिए मणियोंकी मालासे, रोग-शान्ति और पुत्र-प्राप्तिके लिए मोतियोंकी माला या कमलगट्टोंकी मालासे एव शत्रूच्चाटनके लिए रुद्राक्षकी मालासे णमोकार मन्त्रका जाप करना चाहिए। हाथकी अंगुलियों पर इस महामन्त्रका जाप करनेसे दसगुना पुण्य, रेखा खींचकर जाप करनेसे आठ-गुना पुण्य, मूँगाकी मालासे जाप करने पर हजार गुना पुण्य, लौंगोंकी मालासे जाप करनेसे पाँच हजार गुना पुण्य, स्फटिककी मालासे जाप करनेसे दस हजार गुना पुण्य, मोतीकी मालासे जाप करने पर लाख गुना पुण्य, कमलगट्टोंकी मालासे जाप करने पर दस लाख गुना पुण्य और सोनेकी मालासे जाप करने पर करोड़ गुना पुण्य होता है। मालाके साथ भावोंकी शुद्धि भी अपेक्षित है।

मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि सभी प्रकारके कार्य इस मन्त्रकी साधनाके द्वारा साधक कर सकता है। यह मन्त्र तो सभीका हितसाधक है, पर साधन करनेवाला अपने भावोंके अनुसार मारण, मोहनादि कार्योंको सिद्ध कर लेता है। मन्त्र साधनामें मन्त्रकी शक्तिके साथ साधककी शक्ति भी कार्य करती है। एक ही मन्त्रका फल विभिन्न साधकोंको उनकी योग्यता, परिणाम, स्थिरता आदिके अनुसार भिन्न-भिन्न मिलता है। अतः मन्त्रके साथ साधकका भी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। वास्तविक बात यह है कि यह मन्त्र ध्वनिरूप है और भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ अ से लेकर ज्ञ तक भिन्न शक्ति स्वरूप है। प्रत्येक अक्षरमें स्वतन्त्र शक्ति निहित है, भिन्न-भिन्न अक्षरोंके सयोगसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियाँ उत्पन्न की जाती हैं। जो व्यक्ति उन ध्वनियोंका मिश्रण करना जानता है, वह उन मिश्रित ध्वनियोंके प्रयोगसे उसी प्रकारके शक्तिशाली कार्यको सिद्ध कर लेता है। णमोकार मन्त्रका ध्वनि-समूह इस प्रकारका है, कि इसके प्रयोगसे भिन्न-भिन्न प्रकारके कार्य सिद्ध किये

जा सकते हैं। ध्वनियोंके घर्षणसे दो प्रकारकी विद्युत् उत्पन्न होती है—एक घनविद्युत् और दूसरी ऋण विद्युत्। घन विद्युत् शक्ति द्वारा बाह्य पदार्थों पर प्रभाव पडता है और ऋण विद्युत् शक्ति अन्तरगकी रक्षा करती है, आजका विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक पदार्थमें दोनों प्रकारकी शक्तियाँ निवास करती है। मन्त्रका उच्चारण और मनन इन शक्तियोका विकास करता है। जिस प्रकार जलमे छिपी हुई विद्युत्-शक्ति जलके मन्थनसे उत्पन्न होती है, उसी प्रकार मन्त्रके बार-बार उच्चारण करनेसे मन्त्रके ध्वनि-समूहमें छिपी शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। भिन्न-भिन्न मन्त्रोंमे यह शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है तथा शक्तिका विकास भी साधककी क्रिया और उसकी शक्तिपर निर्भर करता है। अतएव णमोकार मन्त्रकी साधना सभी प्रकारके अभीष्टोको सिद्ध करनेवाली और अनिष्टोंको दूर करनेवाली है। यह लेखकका अनुभव है कि किसी भी प्रकारका सिरदर्द हो, इक्कीस णमोकारमन्त्र द्वारा लोग मन्त्रित कर रोगीको खिला देनेसे सिर दर्द तत्काल बन्द हो जाता है। एक दिन बीच देकर आनेवाले बुखारमे केसर-द्वारा पीपलके पत्ते पर णमोकार मन्त्र लिखकर रोगीके हाथमें बाँध देनेसे बुखार नहीं आता है। पेट दर्दमें कपूरको णमोकार मन्त्र द्वारा मन्त्रित कर खिला देनेसे पेट दर्द तत्काल रुक जाता है। लक्ष्मी-प्राप्तिके लिए जो प्रतिदिन प्रातःकाल स्नानादि क्रियाओंके पवित्र होकर "ओं श्रीं क्लीं णमो अरिहंताणं ओं श्रीं क्लीं णमो सिद्धाणं ओं श्रीं क्लीं णमो आइरियाणं ओं श्रीं क्लीं णमो उवज्झायाणं ओं श्रीं क्लीं णमो लोए सव्वसाहूणं" इस मन्त्रका १०८ बार पवित्र शुद्ध धूप देते हुए जाप

जापाज्जयेत्क्षयमरोचकमग्निमान्द्यं,
कुष्ठोदरामकसनश्वसनादिरोगान् ।
प्राप्नोति चाऽप्रतिमवाग् महती महद्भ्यः
पूजां परत्र च गतिं पुरुषोत्तमाप्ताम् ॥
लोकद्विष्टप्रियावश्यघातकादेः स्मृतोऽपि य. ।
मोहनोच्चाटनाकृष्टि-कार्मणस्तम्भनादिकृत ॥
दूरयत्यापदः सर्वाः पूरयत्यत्र कामनाः ।
राज्यस्वर्गाऽपवर्गास्तु ध्यातो योऽमुत्र यच्छति ॥

विश्वके लिए वही आदर्श मान्य हो सकता है, जिसमें किसी सम्प्रदाय विशेषकी छाप न हो। अथवा जो आदर्श प्राणीमात्रके लिए उपादेय हो, वही विश्वको प्रभावित कर सकता है। णमोकार महामन्त्रका आदर्श किसी सम्प्रदायविशेषका आदर्श नहीं है। इसमे नमस्कार की गयी आत्माएँ अहिंसाकी विशुद्ध मूर्त्ति हैं। अहिंसा ऐसा धर्म है, जिसका पालन प्राणीमात्र कर सकता है और इस आदर्श द्वारा सबको सुखी बनाया जा सकता है। जब व्यक्तिमे अहिंसा धर्म पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो जाता है तब उसके दर्शन और स्मरणसे सभीका सर्वत्र कल्याण होता है। कहा भी गया है कि—"**अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग.**" अर्थात् अहिंसाकी प्रतिष्ठा हो जाने पर व्यक्तिके समक्ष क्रूर और दुष्टजीव भी अपनी वैरभावनाका त्याग कर देते हैं। जहाँ अहिंसक रहता है, वहाँ दुष्काल, महामारी, आकस्मिक विपत्तियाँ एव अन्य प्रकारके दुःख प्राणीमात्रको व्याप्त नहीं होते। अहिंसक व्यक्तिके सन्निधानसे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्ति मिलती है। अहिंसककी आत्मामे इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे उसके निकटवर्ती वातावरणमे पूर्ण शान्ति व्याप्त हो जाती है।

विश्व और णमोकार मन्त्र

जो प्रभाव अहिंसकके प्रत्यक्ष रहनेसे होता है, वही प्रभाव उसके नाम और गुणोंके स्मरणसे भी होता है। विशिष्ट व्यक्तियोंके गुणोंके चिन्तनसे

सामान्य व्यक्तियोंके हृदयमे अपूर्व उल्लास, आनन्द, तृप्ति एवं तद्रूप बननेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित विभूतियोंमे विश्वकल्याणकी भावना विशेष रूपसे अन्तर्निहित है। स्वय शुद्ध हो जानेके कारण ये आत्माएँ ससारके जीवोंको सत्यमार्गका प्ररूपण करनेमें समर्थ हैं तथा विश्वका प्राणीवर्ग उस कल्याणकारी पथका अनुसरण कर अपना हित साधन कर सकता है।

विश्वमे कीट-पतंगसे लेकर मानव तक जितने प्राणी हैं, सब सुख और आनन्द चाहते हैं। वे इस आनन्दकी प्राप्तिमें पर वस्तुओंको अपना समझते हैं। तृष्णा, मोह, राग, द्वेष आदि मनोवेगोंके कारण नाना प्रकारके कुआचरण कर भी सुख प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। परन्तु विश्वके प्राणियोंको सुख प्राप्त नहीं हो पाता है। अहिंसक स्वपर कल्याणकारक आत्माओंका आदर्श ऐसा ही है, जिसके द्वारा सभी अपना विश्वास और कल्याण कर सकते हैं। जिन परवस्तुओंको भ्रमवश अपना समझनेके कारण अशान्तिका अनुभव करना पड रहा है, उन सभी वस्तुओंसे मोह-बुद्धि दूर हो सकती है। अनात्मिक भावनाएँ निकल जाती हैं और आत्मिक प्रवृत्ति होने लगती है। जब तक व्यक्ति भौतिक वादकी ओर झुका रहता है, असत्यको सत्य समझता है, तब तक वह ससार-परिभ्रमणको दूर नहीं कर सकता। णमोकारमन्त्रकी भावना व्यक्तिमे समृद्धि जागृत करती है, उसमें आत्माके प्रति अटूट आस्था उत्पन्न करती है, तत्त्वज्ञानको उत्पन्न कर आत्मिक विकासके लिए प्रेरित करती है और बनाती है व्यक्तिको आत्मवादी।

यह मानी हुई बात है कि विश्वकल्याण उसी व्यक्तिसे हो सकता है, जो पहले अपनी भलाई कर चुका हो। जिसमे स्वयं दोष, गलती, बुराई एव दुर्गुण होंगे, वह अन्यके दोषोंका परिमार्जन कभी नहीं कर सकता है और न उनका आदर्श समाजके लिए कल्याणप्रद हो सकता है। कल्याणमयी प्रवृत्तियाँ तभी संभव हैं, जब आत्मा स्वच्छ और निर्मल हो जाय। अशुद्ध प्रवृत्तियोंके रहने पर कल्याणमयी प्रवृत्ति नहीं हो सकती और न व्यक्ति

त्यागमय जीवनको अपना सकता है। व्यक्ति, राष्ट्र, देश, समाज, परिवार और स्वय अपनी उन्नति स्वार्थ, मोह और अहकारके रहते हुए कभी नहीं हो सक्ती है। अतएव णमोकार मन्त्रका आदर्श विश्वके समस्त प्राणियोंके लिए उपादेय है। इस आदर्शके अपनानेसे सभी अपना हित-साधन कर सक्ते हैं।

इस महामन्त्रमे किसी दैवी शक्तिको नमस्कार नहीं किया गया है, किन्तु उन शुद्ध प्रवृत्तिवाले मानवोंको नमस्कार किया है, जिनके समस्त क्रिया-व्यापार मानव समाजके लिए किसी भी प्रकार पीड़ादायक नहीं होते हैं। दूसरे शब्दोंमे यो कहना चाहिए कि इस मन्त्रमे विकाररहित—सासारिक प्रपचसे दूर रहनेवाले मानवोंको नमस्कार किया गया है। इन विशुद्ध मानवोंने अपने पुरुपार्थ द्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारोंको जीत लिया है, जिससे इनमे स्वाभाविक गुण प्रकट हो गये हैं। प्रायः देखा जाता है कि साधारण मनुष्य अज्ञान और राग-द्वेषके कारण स्वय गलती करता है तथा गलत उपदेश देता है। जब मनुष्यकी उक्त दोनों कमजोरियाँ निकल जाती हैं तब व्यक्ति यथार्थ ज्ञाता द्रष्टा हो जाता है और अन्य लोगोंको भी यथार्थ बातें बतलाता है। पञ्चपरमेष्ठी इसी प्रकारके शुद्धात्मा हैं, उनमे रत्नत्रय गुण प्रकट हो गया है, अतः वे परमात्मा भी कहलाते हैं। इनका नैसर्गिक वेष वीतरागताका सूचक होता है। ये निर्विकारी आत्मा विश्वके समस्त प्राणियोंका हित साधन कर सकते हैं। यदि विश्वमें इस महामन्त्रके आदर्शका प्रचार हो जाय तो आज जो भौतिक सघर्ष हो रहा है, एक राष्ट्रका मानव समुदाय अपनी परिग्रह-पिपासाको शान्त करनेके लिए दूसरे देशके मानव समूहको परमाणु बमका निशाना बना रहा है, शीघ्र दूर हो जाय। मैत्री भावनाका प्रचार, अहकार और ममताका त्याग इस मन्त्र-द्वारा ही हो सकता है। अतः विश्वके प्राणियोंके लिए बिना किसी भेद-भावके यह महामन्त्र शान्ति और सुखदायक है। इसमे किसी मत, सम्प्रदाय या धर्मकी बात नहीं है। जो भी आत्मवादी हैं, उन सबके लिए यह मन्त्र उपादेय है।

जैन संस्कृति और णमोकार मन्त्र

मङ्गलवाक्यों, मूलमन्त्रों और जीवनके व्यापक सत्योंका सम्बन्ध संस्कृतिके साथ अनादि कालसे चला आ रहा है। संस्कृति मानव जीवनकी वह अवस्था है, जहाँ उसके प्राकृतिक राग-द्वेषोंका परिमार्जन हो जाता है। वास्तवमें सामाजिक और वैयक्तिक जीवनकी आन्तरिक मूल प्रवृत्तियोंका समन्वय ही संस्कृति है। संस्कृतिको प्राप्त करनेके लिए जीवनके अन्तस्तलमें प्रवेश करना पड़ता है। स्थूल शरीरके आवरणके पीछे जो आत्माका सच्चिदानन्द रूप छिपा है, संस्कृति उसे पहचाननेका प्रयत्न करती है। शरीरसे आत्माकी ओर, जड़से चैतन्यकी ओर, रूपसे भावकी ओर बढ़ना ही संस्कृतिका ध्येय है। यों तो संस्कृतिका व्यक्तरूप सभ्यता है, जिसमें आचार-विचार, विश्वास-परम्पराएँ, शिल्प-कौशल आदि शामिल हैं। जैन संस्कृतिका तात्पर्य है कि आत्माके रत्नत्रय गुणको उत्पन्न कर बाह्य जीवनको उसीके अनुकूल बनाना तथा अनात्मिक भावोंको छोड़ आत्मिक भावोंको ग्रहण करना। अतएव जैन संस्कृति में जीवनादर्श, धार्मिक आदर्श, सामाजिक आदर्श, पारिवारिक आदर्श, आस्था और विश्वास-परम्पराएँ साहित्यकला आदि चीजें अन्तर्भूत हैं। यों तो जैन संस्कृतिमें वे ही चीजें आती हैं, जो आत्मशोधनमें सहायक होती हैं, जिनसे रत्नत्रय गुणका विकास होता है। यही कारण है कि जैन संस्कृति अहिंसा, परिग्रह, त्याग, संयम, तप आदि पर जोर देती चली आ रही है।

आत्मसमत्व और वीतरागत्वकी भावनासे कोई भी प्राणी धर्मकी शीतल छायामें बैठ सकता है। वह अपना आत्मिक विकास कर अहिंसाकी प्रतिष्ठा कर सकता है। यों तो जैन संस्कृतिके अनेक तत्त्व हैं, पर णमोकार महामन्त्र ऐसा तत्त्व है, जिसके स्वरूपका परिज्ञान हो जानेपर इस संस्कृतिका रहस्य अवगत करनेमें अत्यन्त सरलता होती है। णमोकारमन्त्रमें रत्नत्रयगुण-विशिष्ट शुद्ध आत्माको नमस्कार किया है। जिन आत्माओंने अहिंसा-को अपने जीवनमें पूर्णतः उतार लिया है, जिनकी सभी क्रियाएँ अहिंसक

है, वे आत्माएँ जैन सस्कृतिकी साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। उनके नमस्कार-से आदर्श जीवनकी प्राप्ति होती है। पञ्च महाव्रतोंका पालन करनेवाले आत्मस्वरूपके ज्ञाता-द्रष्टा परमेष्ठियोंका वेष ससारके सभी वेषोंसे परे है। लाल-पीले तरह-तरहके वस्त्र धारण करना, डडा लाठी आदि रखना, जटाएँ धारण करना, शरीरमे भभूत लगाना आदि अनेक प्रकारके वेष हैं; किन्तु नग्नता वेषातीत है, इसमे किसी भी प्रकारके वेषको नहीं अपनाया गया है। पञ्चपरमेष्ठी निर्ग्रन्थ रहकर सत्यका मार्ग अन्वेषण करते हैं। उनकी समस्त क्रियाएँ—मन, वचन और शरीरकी क्रियाएँ पूर्ण अहिंसक होती हैं। राग-द्वेष, जिनके कारण जीवनमे हिंसाका प्रवेश होता है, इन आत्माओंमे नहीं पाये जाते।

विकार दूर होनेसे शरीरपर इनका इतना अधिकार हो जाता है कि पूर्ण अहिंसक हो जानेपर भोजनकी भी इन्हे आवश्यकता नहीं रहती। समदृष्टि हो जानेसे सासारिक प्रलोभन अपनी ओर खींच नहीं पाते है। द्रव्य और पर्याय उभय दृष्टिसे शुद्ध परमात्मस्वरूप ये आत्मा होते हैं। जैन सस्कृति-का मुख्य उद्देश्य निर्मल आत्मतत्त्वको प्राप्तकर शाश्वत सुख—निर्वाण-लाभ है। शुद्धात्माओंका आदर्श सामने रहनेसे तथा शुद्धात्माओंके आदर्शका स्मरण, चिन्तन और मनन करनेसे शुद्धत्वकी प्राप्ति होती है, जीवन पूर्ण अहिंसक बनता है। स्वामी समन्तभद्रने अपने बृहत्स्वयभूस्तोत्रमे शीतल-नाथ भगवान् की स्तुति करते हुए कहा है—

सुखाभिलाषानलदाहमूर्छितं मनो निजं ज्ञानमयामृताम्बुभिः।
व्यदिध्ययस्त्वं विपदाहमोहितं यथा भिषग्मन्त्रगुणै. स्वविग्रहम् ॥
स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजा।
त्वमार्य नक्तंदिवमप्रमत्तवानजागरेवात्मविशुद्धवर्त्मनि ॥

अर्थात्—जैसे वैद्य या मन्त्रवित् मन्त्रोंके उच्चारण मनन और ध्यानसे सर्पके विषसे संतप्त मूर्छाको प्राप्त अपने शरीरको विषरहित कर देता है, वैसे ही आपने इन्द्रिय-विषयसुखकी तृष्णारूपी अग्निकी जलनसे मोहित,

हेयोपादेयके विचारशून्य अपने मनको आत्मज्ञानमय अमृतकी वर्षासे शान्त कर दिया है। संसारके प्राणी अपने इस जीवनको बनाये रखने और इन्द्रिय-सुखको भोगनेकी तृष्णासे पीड़ित होकर दिनमें तो नाना प्रकारके परिश्रम कर थक जाते हैं और रात होनेपर विश्राम करते हैं। किन्तु हे प्रभो! आप तो रात-दिन प्रमादरहित होकर आत्माको शुद्ध करनेवाले मोक्षमार्गमें जागते ही रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि पञ्चपरमेष्ठीका स्वरूप शुद्धात्मामय है अथवा शुद्धात्माकी उपलब्धिके लिए प्रयत्नशील आत्माएँ हैं। इनकी समस्त क्रियाएँ आत्माधीन होती हैं, स्वावलम्बन इनके जीवनमें पूर्णतया आ जाता है क्योंकि कर्मादिमलसे छूटकर अनन्तज्ञानादि गुणोंके स्वामी होकर आत्मानन्दमें नित्य मग्न रहना, यही जीवका सच्चा प्रयोजन है। पञ्चपरमेष्ठीकी आत्माएँ इन प्रयोजनको सिद्ध कर लेती हैं या इनकी सिद्धिके लिए प्रयत्नशील हैं। आत्मा अनादि, स्वतः सिद्ध, उपाधिहीन एवं निर्दोष है। अस्त्र-शस्त्रोंसे इसका छेदन नहीं हो सकता, जल प्लावनसे यह भींग नहीं सकता, आगसे जल नहीं सकता, पवनसे सूख नहीं सकता और धूपसे कभी निस्तेज नहीं हो सकता है। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, सम्यक्त्व, अगुरुलघुत्व आदि आठ गुण इस आत्मामें विद्यमान हैं। ये गुण इस आत्माके स्वभाव हैं, आत्मासे अलग नहीं हो सकते हैं। णमोकार मन्त्रमें प्रतिपादित पञ्चपरमेष्ठी उक्त गुणोंको प्राप्त कर लेते हैं अथवा पञ्चपरमेष्ठियोंमेंसे जिन्होंने उन गुणोंको प्राप्त नहीं भी किया है, वे प्राप्त करनेका उपक्रम करते हैं। इस स्थूल शरीरके द्वारा वे अपनी आत्म-साधनामें सर्वदा संलग्न रहते हैं।

ये अहिंसाके साथ तप और त्यागकी भावनाका अनिवार्यरूपसे पालन करते हैं, जिससे राग द्वेष आदि मलिन वृत्तियोंपर सहजमें विजय पाते हैं। इनके आचार और विचार दोनों शुद्ध होते हैं। आचारकी शुद्धिके कारण

ये पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतग, चींटी आदि त्रस जीवोंकी रक्षाके साथ पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायवीय आदि सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणियो तककी हिंसासे आत्मौपम्यकी भावना-द्वारा पूर्णतया निवृत्त रहते हैं। विचार-शुद्धि होनेसे इनकी साम्यदृष्टि रहती है, पक्षपात, राग, द्वेष, संकीर्णता इनके पास फटकने भी नहीं पाती। प्रमाण और नयवादके द्वारा अपने विचारोंका परिष्कार कर ये सत्य दृष्टिको प्राप्त करते हैं।

णमोकारमन्त्रमें निरूपित आत्माओंका एकमात्र उद्देश्य मानवताका कल्याण करना है। ये पाँचों ही प्राणीमात्रके लिए परम उपकारी हैं। अपने जीवनके त्याग, तपश्चरण, तत्त्व ज्ञान और आचरण-द्वारा समस्त प्राणियोंका हित साधन करते हैं। उनकी कोई भी क्रिया किसी भी प्राणीके लिए बाधक नहीं हो सकती है। ये स्वयं संसार-भ्रमण—जन्म, मरणके चक्रसे छुटकारा प्राप्त करते हैं तथा अन्य जीवोंको भी अपने शारीरिक या वाचनिक प्रभाव-द्वारा इस संसार-चक्रसे छूट जानेका उपाय बतलाते हैं। अतएव णमोकारमन्त्रका जैन सस्कृतिका अतरग रूप भावशुद्धि—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् आचरण आदिके साथ है। इस मन्त्रके आदर्शसे तप और त्यागके मार्ग पर बढनेकी प्रेरणा, अहिंसा और अपरिग्रहको आचरणमें उतारनेकी शिक्षा, विश्वबन्धुत्व और आत्मकल्याणकी कामना उत्पन्न होती है। इस महामन्त्रमे व्यक्तिकी अपेक्षा गुणोंको महत्ता दी गयी है। अतः यह रत्नत्रयरूप सस्कृतिकी प्राप्तिके लिए साधकको आगे बढाता है। उसके सामने पञ्चपरमेष्ठियोंका आचरण प्रस्तुत करता है, जिससे कोई भी व्यक्ति आत्माको सस्कृत कर सकता है। आत्माका सच्चा सस्कार त्याग-द्वारा ही होता है, इससे राग-द्वेषोंका परिमार्जन होता है और सयमको प्रवृत्ति भी प्राप्त होती है। अन्तरग आत्माको रत्नत्रयके द्वारा ही सजाया जाता है, इसके विना आत्माका सस्कार कभी भी सम्भव नहीं। णमोकारमन्त्रका आदर्श अरूपी, अकर्मा, अभोक्ता, चैतन्यमय, ज्ञानादि परिणामोंका कर्ता और भोक्ताको अनुभूतिमे लाना है। जिस प्रशम गुण—कषायाभावसे आत्मामे

परमानन्द आया, वह भी इसीके आदर्शसे मिलता है। अतः जैन संस्कृतिका वास्तविक आदर्श इस महान् मन्त्र-द्वारा ही प्राप्त होता है।

बाह्य जैन संस्कृति सामाजिक एवं पारिवारिक विकास, उपासना-विधान, साहित्य, ललितकलाएँ, रहन-सहन, खान-पान आदि रूपमें हैं। इन बाह्य जैन संस्कृतिके अंगोंके साथ भी णमोकारमन्त्रका सम्बन्ध है। उक्त संस्कृतिके स्थूल अवयव भी इसके द्वारा अनुप्राणित है। निष्कर्ष यह है कि इस महामन्त्रके आदर्श मूल प्रवृत्तियो, वासनाओं और अनुभूतियोंको नियन्त्रित करनेमें समर्थ हैं। नैतिक जीवन—बुद्धि द्वारा नियन्त्रित इन्द्रिय-परता इस आदर्शका फल है। अतएव निवृत्ति-प्रधान जैन संस्कृतिकी प्राप्ति इस महामन्त्र-द्वारा होती है। अतः णमोकारमन्त्रका आदर्श, जिनके अनुकरण पर जीवनके आदर्शका निर्माण किया जाता है, त्याग और पूर्ण अहिंसकमय है। इस मन्त्रसे जैन संस्कृतिकी सारी रूप-रेखा सामने प्रस्तुत हो जाती है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी किस प्रकार अपने विकारोंके त्याग और जीवनके नियन्त्रणसे अपने आत्माको संस्कृत कर चुके हैं। संस्कृतिका एक स्पष्ट मानचित्र अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुका नाम स्मरण करते ही सामने प्रस्तुत हो जाता है। इस सत्यसे कोई इंकार नहीं कर सकता है कि व्यक्तिकी अन्तरंग और बहिरंग रूपाकृति ही उसका आदर्श है, यह आदर्श अन्य व्यक्तियोंके लिए जितना उपयोगी एवं प्रभावोत्पादक हो सकता है, उस व्यक्तिकी संस्कृतिको उतना ही प्रभावित कर सकता है। पञ्चपरमेष्ठी-द्वारा स्वावलम्बन और स्वातन्त्र्यके भाव जाग्रत होते हैं। कर्त्तापनेकी भावना, जिसके कारण व्यक्ति परमुखापेक्षी रहता है और अपने उद्धार एवं कल्याणके लिए अन्यकी सहायताकी अपेक्षा करता रहता है, जैन संस्कृतिके विपरीत है। इस महामन्त्रका आदर्श स्वयं ही अपने पुरुषार्थ-द्वारा साधु अवस्था धारण कर सिद्ध अवस्था प्राप्त करनेकी ओर संकेत करता है। अतएव णमोकारमन्त्र जैन संस्कृतिका सच्चा और स्पष्ट मानचित्र प्रस्तुत कर देता है।

णमोकारमन्त्र प्रत्येक व्यक्तिको सभी प्रकारसे सुखदायी है। इस महामन्त्र द्वारा व्यक्तिको तीनों प्रकारके कर्त्तव्यों—आत्माके प्रति, दूसरोंके प्रति और शुद्धात्माओं के प्रति, का परिज्ञान हो जाता है।

उपसंहार

आत्माके प्रति किये जानेवाले कर्त्तव्योंमें नैतिक कर्त्तव्य, सौन्दर्यविषयक कर्त्तव्य, बौद्धिक कर्त्तव्य, आर्थिक कर्त्तव्य और भौतिक कर्त्तव्य परिगणित हैं। इन समस्त कर्त्तव्यों पर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि इस महामन्त्रके आदर्शसे हमे अपनी प्रवृत्तियों, वासनाओं, इच्छाओं और इन्द्रिय वेगोंपर नियन्त्रण करनेकी प्रेरणा मिलती है। आत्मसंयम और आत्मसम्मानकी भावना जागृत होती है। दूसरोंके प्रति सम्पन्न किये जानेवाले कर्तव्योंमे कुटुम्बके प्रति, समाजके प्रति, देशके प्रति, नगरके प्रति, मनुष्योके प्रति, पशुओंके प्रति और पेड़-पौधेके प्रति कर्त्तव्योंका समावेश होता है। दूसरोंके प्रति कर्त्तव्य सम्पादन करनेमें तीन बातें प्रधानरूपसे आती हैं—सचाई, समानता और परोपकार। ये तीनों बातें णमोकार मन्त्रकी आराधनासे ही प्राप्त हो सकती हैं। इस महामन्त्रका आदर्श हमारे जीवनमे उक्त तीनों बातोंको उत्पन्न करता है। शुद्धात्मा—परमात्माके प्रति कर्त्तव्यमें भक्ति और ध्यानको स्थान प्राप्त होता है। हमे नित्य प्रति शुद्धात्माओंकी पूजा कर उनके आदर्श गुणोंको अपने भीतर उत्पन्न करनेका प्रयास करना होगा। केवल णमोकार मन्त्रका ध्यान, उच्चारण और स्मरण उपर्युक्त तीनों प्रकारके कर्त्तव्योंके सम्पादनमे परम सहायक है।

प्रायः लोग आशका किया करते हैं कि बार-बार एक ही मन्त्रके जापसे कोई नवीन अर्थ तो निकलता नहीं है, फिर ज्ञानमें विकास किस प्रकार होता है? आत्माके राग-द्वेष विचार एक ही मन्त्रके निरन्तर जपनेसे कैसे दूर हो जाते हैं? एक ही पद या श्लोक बार-बार अभ्यासमें लाया जाता है, तब उसका कोई विशेष प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ता है। अतः मगलमन्त्रोंके बार-बार जापकी क्या आवश्यकता है? विशेषतः णमोकार मन्त्रके सबधमें यह आशका और भी अधिक सबल हो जाती है, क्योंकि जिन मत्रोंके

स्वामी यक्ष, यक्षिणी या अन्य कोई शासक देव माने जाते हैं, उन मन्त्रोंके बार-बार उच्चारणका अभिप्राय उनके अधिकारी देवोंको बुलाना या सर्वदा उनके साथ अपना सम्पर्क बनाये रखना है। पर जिस मन्त्रका अधिकारी कोई शासक देव नहीं है, उस मन्त्रके बार-बार पठन और मननसे क्या लाभ ?

इस आशाकाका उत्तर एक गणितके विद्यार्थीकी दृष्टिसे बडे सुन्दर ढंगसे दिया जा सकता है। दशमलवके गणितमें आवर्त संख्या बार-बार एक ही आती है, पर प्रत्येक दशमलवका एक नवीन अर्थ एवं मूल्य होता है। इसी प्रकार णमोकार मन्त्रके बार-बार उच्चारण और मननका प्रत्येक बार नूतन ही अर्थ होगा। प्रत्येक उच्चारण रत्नत्रय गुण विशिष्ट आत्माओंके अधिक समीप ले जायगा। वह साधक जो निश्छल भावसे अटूट श्रद्धाके साथ इस महामन्त्रका स्मरण करता है, इसके जाप द्वारा उत्पन्न होनेवाली शक्तिको समझता है। विषयकषायको जीतनेके लिए इस महामन्त्रका जाप अमोघ अस्त्र है। पर इतनी बात सदा ध्यानमें रखने की है कि मन्त्र जाप करते हुए तल्लीनता आ जाय। जिसने साधनाकी प्रारम्भिक सीढ़ी पर पैर रखा है, मन्त्र जाप करते समय उसके मनमें दूसरे विकल्प आयेंगे, पर उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार आरम्भमें अग्नि जलाने पर नियमतः धुआँ निकलता है, पर अग्नि जब कुछ देर जलती रहती है, तो धुआँका निकलना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार प्रारम्भिक साधकके समक्ष नाना प्रकारके सकल्प-विकल्प आते हैं, पर साधना-पथमें कुछ आगे बढ़ जानेपर विकल्प रुक जाते हैं। अतः दृढ़ श्रद्धापूर्वक इस मन्त्रका जाप करना चाहिए। मुझे इसमें रत्ती भर भी शक नहीं है कि यह मंगलमन्त्र हमारी जीवन-डोर होगा और सङ्कटोंसे हमारी रक्षा करेगा। इस मन्त्रका चमत्कार है हमारे विचारोंके परिमार्जनमें। यह अनुभव प्रत्येक साधकको थोड़े ही दिनोंमें होने लगता है कि पञ्चमहाव्रत, मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ इन भावनाओंके साथ दान, शील, तप और ध्यानकी प्राप्ति इस मन्त्रकी दृढश्रद्धा-द्वारा ही सम्भव है। जैन बनाने-

वाला पहला साधक तो इस णमोकार मन्त्रका श्रद्धा सहित उच्चारण करता है। वासनाओंका जाल, क्रोध-लोभादि कषायोंकी कठोरता आदिको इसी मन्त्रकी साधनासे नष्ट किया जा सकता है। अतएव प्रत्येक व्यक्तिको सोते-जागते, उठते-बैठते सभी अवस्थाओंमें इस मन्त्रका स्मरण रखना चाहिए। अभ्यास हो जानेपर अन्य क्रियाओंमे सलग्न रहने पर भी णमोकार मन्त्रका प्रवाह अन्तश्चेतनामे निरन्तर चलता रहता है। जिस प्रकार हृदयकी गति निरन्तर होती रहती है, उसी प्रकार भीतर प्रविष्ट हो जाने पर इस मन्त्रकी साधना सतत चल सकती है।

इस मगलमन्त्रकी आराधनामें इस बातका ध्यान रखना होगा कि इसे एकमात्र तोतेकी तरह न रटें। बल्कि अवाछनीय विकारोंको मनसे निकालनेकी भावना रखकर और मन्त्रकी ऐसा करनेकी शक्तिपर विश्वास रखकर ही इसका जाप करें। जो साधक अपने परिणामोंको जितना अधिक लगायेगा, उसे उतना ही अधिक फल प्राप्त होगा। यह सत्य है कि इस मन्त्रकी साधनासे शनैः-शनैः आत्मा नीरोग—निर्विकार होता जाता है। आत्मबल बढ़ता जाता है। जहाँ तक सभव हो इस महामन्त्रका प्रयोग आत्माको शुद्ध करने के लिए ही करना चाहिए। लौकिक कार्योंकी सिद्धिके लिए इसके करनेका अर्थ है, मणि देकर शाक खरीदना। अतः मन्त्रकी सहायतासे काम-क्रोध-लोभ-मोहादि विकारोंको नष्ट करना चाहिए। यह मन्त्र मगलमन्त्र है, जीवनमें सभी प्रकारके मगलोंको उत्पन्न करनेवाला है। अमगल—विकार, पाप, असद् विचार आदि सभी इसकी आराधनासे नष्ट हो जाते हैं। नमस्कार माहात्म्य गाथा पच्चीसीमें बताया गया है—

जिण सासणस्स सारो चउद्दस पुव्वाण जो समुद्धारो।
जस्स मणे नवकारो संसारे तस्य किं कुणई॥
एसो मंगल-निलओ भयविलओ सयलसंवसुहजणओ।
नवकारपरममंतो चिंति अमित्त सुहं देई॥

नवकारओ अन्नो सारो मंतो न अत्थि तियलोए ।
तम्हाहु अणुदिणं चिय, पठियव्वो परमभत्तीए ॥
हरइ दुहं कुणइ सुहं जणइ जसं सोसए भवसमुद्दं ।
इहलोय-परलोइय-सुहाण मूलं नमोक्कारो ॥

अर्थात्—यह णमोकार मगल मन्त्र जिन-शासनका सार और चतुर्दश पूर्वोंका समुद्धार है। जिसके मनमे यह णमोकार महामन्त्र है, ससार उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। यह मन्त्र मंगलका आगार, भयको दूर करनेवाला, सम्पूर्व चतुर्विध सघको सुख देनेवाला और चिन्तन मात्र अपरिमित शुभ फल को देनेवाला है। तीनों लोकोंमें णमोकार मन्त्रसे बढ़कर कुछ भी सार नहीं है, इसलिए प्रतिदिन भक्तिभाव और श्रद्धा पूर्वक इस मन्त्रको पढ़ना चाहिए। यह दुःखोंका नाश करनेवाला, सुखोंको देनेवाला, यशको उत्पन्न करनेवाला और संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाला है। इस मन्त्रके समान इहलोक और परलोकमें अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं है।